विषयानुक्रमाणिका ।

साखी ग्रन्थ क्या है ?

'साखीग्रन्थ' इस शब्द के सुनते ही बहुतों के मन में तो यही आयगा कि क्या इस पुस्तक में गवाहों के बयान हैं ? । सचमुच उनकी यह धारणा किसी अंश में ठीक है; क्यों कि सद्गुरु कबीरने भी स्वयं गवाह बनकर जनता-जनार्दन के सामने बड़ी ही निर्भीकता से अनेकबार खुले बयान दिये हैं । उनके बयानों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखी ग्रन्थ है ।

साखी यह शब्द साक्षी का अपभ्रंश है । "ज्ञातृत्वे सति तटस्थत्वं साक्षित्वम्" अर्थात् झगडे के मूल को जानते हुए भी वादी और प्रतिवादियों के पक्षपात से जो रहित हो उसे साक्षी (साखी, गवाह) कहते हैं । सद्गुरु कबीर साम्प्रदायिक कलह के मूल (परस्पर की अज्ञानता) को जानते हुए भी साम्प्रदायिक पक्षपात की छूत से कोसों दूर थे । एक सर्वहितैषी तटस्थ व्यक्ति की तरह वे सबों को हितोपदेश दिया करते थे , यही कारण था कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर बन सके थे । अपनी इस तटस्थता और सर्वहितैषिता का वर्णन उन्होंने कई जगह किया है ।

कबिरा खड़ा बजार में, सबकी चाहै खैर ।
ना काहू से दोसती, ना काहू से बैर ॥

(बीजक)

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है। बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता। सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था। इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दीन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था। आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था। ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखते हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था। कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे–हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय–मिलन बना हुआ था। इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावें देहरा, मुसलमान मसीत।
दास कबीर तहाँ ध्यावही, जहाँ दोनों की परतीत।
(सा० पृ० ३१६–१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि केरा।
तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा॥'

पूरब दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।
दिल महँ खोजु, दिलहि में खोजो, यही करीमा रामा ॥
(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कदापि नहीं मिट सकता था।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाहियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी मिटाती हैं। साखी का अर्थ करते हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझु देखु मन मांहि ।
बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांहि ॥
(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं। संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती। जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन. संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है। जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है। बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता। सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था। इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दीन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था। आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था। ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखते हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था। कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे–हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय–मिलन बना हुआ था। इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

'हिन्दू ध्यावें देहरा, मुसलमान मसीत।
दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत।
(सा० पृ० ३१६–१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि केरा।
तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा॥'

पूरब दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।
दिल महँ खोजु, दिलहि में खोजो, यहीं करीमा रामा ॥'
(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के विना वह पुराना झगडा कदापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाहियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी मिटाती है। साखी का अर्थ करते हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझु देखु मन मांहि ।
बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांहि ॥
(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के विना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

सन्धयोऽखिलवृत्तीना ममावाश्चावभासिताः ।
निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते ॥

सम्पूर्ण वृत्तियों की सन्धि, और सुषुप्ति में उनका अभाव ये सब जिस निर्विकार चेतन से प्रकाशित होते हैं, उसको कूटस्थ कहते हैं । कूटस्थ की असंगता का विचार करनेवाला स्वयं उस पद को प्राप्त हो जाता है; इस लिये उसका विचार सदैव करना चाहिये ।

असङ्ग एव कूटस्थः सर्वदा नास्य किञ्चन ।
भवत्यतिशय स्तेन मनस्येवं विचार्यताम् ॥
(पं० कू० ७०)

कूटस्थ चेतन सदैव असंग है, इसके जन्मादिक अतिशय कुछ भी नहीं होते; अतः मुमुक्ष को सदैव ऐसा ही विचार करना चाहिये ।

इसी कूटस्थ का नाम अन्तर्यामी है; क्यों कि वह सबों के भीतर रह कर सदा स्फूर्ति देता है । जैसा कि बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में लिखा है ।

" अदृष्टो द्रष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता, नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टानान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैषत आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽतोन्यदार्तम्"।

जो किसीके देखने में नहीं आता हुआ भी स्वयं देखता है, किसी के सुनने में नहीं आता हुआ भी स्वयं

सुनता है, तथा मन और बुद्धि का विषय नहीं होता हुआ स्वयं उनको विषय करता है। इसके अतिरिक्त देखनेवाला सुननेवाला संकल्प करनेवाला और जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है। यही अविनाशी आत्मा तुम्हारा अन्तर्यामी है।

"असङ्गो नहि सज्जते" इत्यादिक श्रुतियों के अनुसार सबों से भिन्न होने के कारण साक्षीचेतन किसी म सक्त नहीं होता। साक्षी की भिन्नता का वर्णन सद्गुरु ने भी कई स्थलों पर किया है।

सबका साखी मेरा सांई।
ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लौं औ अव्याकृत नाहीं।
सुमति पचीस पांच से करले यह सब जग भरमाया।
अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया॥
जाग्रत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई।
राजस तामस सात्विक निर्गुन इनते आगे सोई।
सुछम थूल कारन महाकारन इन मिलि भोग बखाना॥
तैजस विश्व पराग आत्मा इनमें सार न जाना।
परा पसन्ती मधमा वैखरि चौवानी ना मानी।
पांच कोष नीचे कर देखो इनमें सार न जानी॥
पांच ज्ञान औ पांच कर्म की यह दश इन्द्री जानो।
चित्त सोइ अन्तःकरण बखानों इनमें सार न मानों॥
कुरम सेस किरकिला धनंजय, देवदत्त, कहँ देखो।
चौदह इंद्री चौदह इंद्रा, इनमें अलख न पेखो॥

तत् पद त्वंपद और असीपद, वाच लच्छ पहिचाने।
जहदलच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने॥
सद्गुरु मिल सत शब्द लखावै, सार शब्द बिलगावै।
कहै कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा करि गावै॥

साक्षीपद प्राप्त होने पर ही मनुष्य संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है; क्योंकि यह संसार काजल की कोठरी और काटों की बाड़ है, जरासा चूका और गया।

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन हार॥
काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट।
तोंदी कारी ना भई, रहा जो ओट हि ओट॥
(साखी ग्रंथ पृ० १०४)

असंग ही का नाम साक्षी है; अतः साक्षीपद की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार झगड़ों का अन्त नहीं हो सकता, और झगड़ों के निपटाये बिना निर्वाणपद भी नहीं मिल सकता, इस बात का भी सद्गुरु ने विशद रूप से वर्णन किया है।

झगरा एक बड़ो राजाराम, जो निरुवारै सो निरबान।
ब्रह्म बड़ा की जहां से आया, वेद बड़ा की जिनि उपजाया।
ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा की रामहिं जाना।
भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास, तीरथ बड़ा कि तीरथ-दास
(बीजक)

सद्गुरु ने अपनी वाणी में साक्षी के लिये कहीं २ गबी शब्द का भी प्रयोग किया है

हिन्दू कहूं तो हूं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पांच तत्त्व का पूतला, गैबी खेले माहिं।
गैबी आया गैब से, यहां लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, छूटि गया सब ऐब॥
(साखी ग्र० पृ० ३१६)

स्वरूप (साक्षी) को प्राप्त होना ही गैब में उलट के समाना है।

निजरूप की विशेषता।

साक्षी का निजरूप इससे भी आगे है; क्योंकि साक्षी तो किसी साक्ष्य की अपेक्षा से है, इस लिये साक्ष्य (संसार) के अभाव में साक्षीपन भी नहीं रहता। साक्ष्य (संसार) हद है और साक्षी (द्रष्टा, चेतन) बेहद है; परन्तु परमतत्व कुछ और ही है, जिसका सद्गुरु ने इस प्रकार वर्णन किया है।

हद बेहद दोनों तजी, अबरन किया मिलान।
कहँहिं कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान॥
(सा० पृ० ३३७)

हद और बेहद से परे होने पर परमपद की प्राप्ति से अवर्णनीय आनन्द और प्रकाश का मिलन इस साखी से बोधित होता है। इसी भाव-सुधांशु को पकड़ने के लिये

उर्दू के एक कवि ने भी बड़ी लम्बी उड़ान मारी थी; परन्तु अन्त में विफल होकर आप अन्धेरे के खन्दक में गिरे गये । सुनिये—

"न तो मैं रहा न तो तू रहा, रही सो बेखबरी रही"

सत्यतः वह जीव और ईश्वर से परे का पद है; किन्तु प्रज्ञानघन होने के कारण अन्धकार नहीं प्रकाश है ।

उसी अवर्णनीय निजरूप को प्राप्त करनेवाले महात्मा भी दयालु होने के कारण साक्षी बनकर अपने निर्णायक वचनों के द्वारा अनेक जटिल समस्याओं को सुरझाया करते हैं। स्वरूप साक्षी के बोधक और निर्णायक होने के कारण सद्गुरु के वचन भी साक्षीवचन हैं। ऐसे ही साखी वचनों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखीग्रन्थ है ।

साक्षी सुचेताश्चितिमात्ररूपः संवर्णितो येन निजात्मदेवः ।
अन्वर्थसंज्ञा गुणतस्ततोऽभूत्"साखी"ति विज्ञानि गुरुं भजे तम् ।

महन्त विचारदास शास्त्री ।

॥ सत्-कबीर ॥

साहेब कबीर
के
साखी-ग्रंथ
की
अवतरणिका।

लेखक —

श्रीमान् पूज्य सा० वनमाली गुरुश्री अरविंद।
बी ए. एल्‌एल्., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट.

। सत्-नाम ॥

॥ अवतरणिका ॥

॥ खंड-पहला ॥

साधकों की इस अवस्था में ऐसा महत्व तथा सत्वपूर्ण विशाल-काय साखी—ग्रन्थ की अवतरणिका अंकित करना मेरे लिये एक अत्यन्त कठिन तथा सुदुस्तर समस्या है। पर श्रीमान् पंडित मोती-दासजी साहेब, सम्पादक वो दीवान, कबीर मंदिर, सियाबाग, बडोदा की ऐसी प्रेम-प्रेरणा है कि बिना कुछ लिखे छुटका भी नहीं प्रतीत होता। उक्त पंडित साहेब को उचित था कि किसी सुयोग्य तथा विशिष्ट व्यक्ति को खोज ढूंढकर और उन पर इसका भार सौंप कर सर्वांग-सुन्दर तथा पूर्ण मर्मभेदी अवतरणिका तैयार करवाते। परन्तु जो ढूंढने का कष्ट न उठावें, घर बैठे बैठे खाना खाना चाहें, तो उनको तथा उनके पाठकगण को सहज में जो कुछ रूखा सूखा मिल जाय, उसी पर निर्वाह तथा संतोष कर लेने के लिये भी सदा तैयार रहना चाहिये। क्योंकि,

" जब आवे संतोष-धन, सब धन धूलि समान। "

(देखो साखी-ग्रंथ, पृष्ठ ४२५)

"प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया"

संसार में जितने पदार्थ—चेतन अथवा जड़ (The conscious or the unconscious),जंगम वा स्थावर (The movables or the immovables),—विराजमान हैं, उनमें से प्रत्येक के बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग कई गुणा अधिक हैं। उसका प्रकटरूप, उसके गुप्तरूपों का केवल अंशमात्र है। उसका अव्यक्त, उसके व्यक्त से असंख्यगुणा भी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं। क्योंकि, व्यक्त सदा सान्त होता है और अव्यक्त सदा से अनन्त होता आया है। उदाहरणार्थ, सिनेमा (Cinematograph) के चित्र-पट (Screen) और फिल्म ((Film) को ले लो। पट के ऊपर फिल्म का जितना भाग एक समय में दृष्टि-गोचर होता है, उसका अनेकगुणा भाग रील (Reel) में अदृश्यरूप से लिपटा पड़ा है, जो क्रम से उघड़ कर, पट पर अपना चित्र फेंकता जाता है। मानो, अव्यक्त क्रमशः व्यक्त होता हुआ भूतकाल के गाल में समाता जाता है। इसी प्रकार आत्मारूपी अनन्त रील (The infinite reel of the soul) में चोलारूपी अपरिमित फिल्म (The infinite film of the surface personalities) लपेटा पड़ा है, जो अपने समयानुकूल संसार पट पर अवतरण होता रहता है। यही बात कबीर साहेब की वाणी में इस प्रकार कही जा सक्ती है कि आत्मारूपी अनन्त फिरकी (The infinite shuttle of the soul) में भरनीरूपी अनन्त सूत (The infinite thread of the woof) लिपटा है, जो समय पाकर संसार रूपी तानी (Warp) पर अवतरण करता हुआ नाना प्रकार के शरीर रूपी वस्त्र बुनता रहता है। इसी बात को भगवान कृष्ण ने गीता में इस प्रकार से गाया है:—

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।"
(गी० अ० २ श्लो० २२)

' जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है। वैसे जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त करता है। "

जिसको अपना पेहरन (Coat etc.) अपनी इच्छा के अनुसार बनाने की युक्ति नहीं मालूम है, उसको दर्जी के फेरे में जाने की आवश्यकता बराबर बनी रहती है। पर जिसको स्वयं ज्ञान हो गया है, वह अपना कार्य्य आपसे ही करके स्वावलम्बन (Self-reliance) का पाठ संसार को सिखाता है। इसी प्रकार जिसको आत्म-अनुभव सम्यक् रीति से हो गया है, वह जिस प्रकार का शरीर जिस समय जिस रीति से ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है। यथा,

" आत्मानं सृजामि अहम् " (गीता अ० ४ श्लो० ७)

" अपने रूप को रचता हूं अर्थात् प्रकट करता हूं। " अन्यथा दर्जी रूपी काल वा कर्म, भाग्य (Fate) वा प्रारब्ध के चक्र में पड़कर, उनके बनाये शरीर को विवश होकर धारण करना पड़ता है। अज्ञानी सदा अशक्त रहता है और सज्ञानी अनुभवी सदा सशक्त है। वह काल के वश में रहता है और यह काल से ऊपर हो जाता है, जिसको कालातीत के नाम से पुकारते हैं। वह कर्मजन्य प्रारब्ध, संचित अथवा भाग्य की ठोकरें खाता रहता है औ यह कर्मों के बीच में रह कर भी इन मर्मों से छू तक नहीं जाता —" पद्मपत्रमिवाम्भसा " (गी० अ० ५ श्लो० १०)

"जल से कमल के पत्ते की सदृश"। वह जन्म और मरण के फन्दे में पुनः पुनः आता रहता है, "पुनः पुनः वशमापद्यते मे" (कठोपनिषद्), और यह फन्दे से एकदम बाहर हो जाता है। इसकी नहीं इच्छा हो तो, नहीं शरीर धारण करे और यदि इच्छा हो तो, वर्तमान शरीर को कायाकल्प कर दे अथवा जैसा शरीर जिस रीति से धारण करना चाहे, कर सके। गर्भ में प्रवेश करके भी जन्म ले सके, यथा, राम, कृष्ण आदि और गर्भ में बिना प्रवेश किये भी, जैसे, ब्रह्मा, महादेव आदि। यह दोनों प्रकार से, योनिज औ अयोनिज, (Sexual & Asexual) जन्म लेने में समर्थ हो जाता है। जो प्राणी-विद्या (Biology) से अभिज्ञ हैं, वे जानते हैं कि संसार में मैथुनी तथा अमैथुनी, दोनों तरह की सृष्टि नित्यप्रति हो रही है। वर्षाकाल में असंख्य छोटे २ मेढकों (Toads, amphibia) की उत्पत्ति, जमे हुये जल में अगणित कीटिया, अन्नफलादि में नाना-प्रकार के कोटानुकोटि प्राणिया प्रतिक्षण जन्म धारण करती हैं। अंडज, पिंडज, ऊष्मज, जलज, अन्नज प्राणियों की उत्पत्ति अहर्निश हो रही है। यह युक्तियुक्त नहीं कि अयोनिज सब के सब मुक्त होते हैं और योनिज सब के सब बद्ध होते हैं। अन्तर इतना ही है कि आत्म-अनुभवी जिस प्रकार चाहे उसी प्रकार से संसार में व्यक्त अर्थात् प्रकटरूप ले सक्ता है और अज्ञानी को विवश होकर प्रेरित प्रकार से संसार में जन्म लेना पड़ता है। भगवान् विष्णु क्षीर-समुद्र में अव्यक्तरूप से पड़े हैं, उनकी नाभि से कमल निकलता है और कमल में ब्रह्माजी प्रकट होते हैं, और उनसे सृष्टि की रचना आरम्भ हो जाती है। जब यह सम्भव है, तो साहेब कबीर को क्षीर समुद्ररूप लहर तालाब के कमलोपर कमल में प्रकट होने तथा संतों का सृष्टि करने में कौन सी बड़ी विस्मयास्पद तथा विवादास्पद की बात है? जब महादेवजी

विना मा-बाप के संसार में व्यक्तरूप ले सके हैं तो, यदि कबीर साहेब ने भी विना मा-बाप के संसार में प्रकट होकर, उनका अनुसरण कर, गीता के नीचे लिखे वचन को प्रमाणित कर दिखाया, तो इसमें आशंका ही क्या है ? —

" प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवामि आत्ममायया । "

(गी० अ० ४ श्लो० ६)

"अपनी प्रकृति को आधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूं।" " Brooding over nature, which is mine own, yet I am born through My own Power, *Maya*, the power of thought that produces form " (The Bhagwad-Gita by Annie Besant & Bhagwandas. P. 74)

माया का अर्थ यहां पर वह विचार-शक्ति या तपो-बल है जो रूप प्रकट करती है। जब अयोनिज जन्म-घटनायें भूतकाल में हुई और नित्यप्रति होती रहती हैं, तो ऐसी घटना यदि साहेब कबीर ने भी स्वसामर्थ्य से (By the form-producing power of thought or meditation) संसार में उपस्थित करी तो, इससे चकित होकर, असंभव ! असंभव !! महा असंभव !!! कहकर चिल्लाने से क्या मतलब ?

पक्षपात-रहित सनातनी भाइयों को तो स्पष्ट हो ही गया होगा, परं दलील की खोज निकालनेवाले आर्य भाई हास्यपूर्ण कटाक्ष करते ही जायेंगे कि, " क्या कबीर साहेब भुनुगा (Insect) था जो फलों में उत्पन्न हुआ ? " कबीर साहेब क्या थे वह तो आगे मालूम होगा, पर अपने यहां की मनुष्य वर्षा देखो है ? उठाओ यथार्थ प्रकाश, निकालो सृष्टि प्रकरण, खोलो पत्र १४३ और पढ़ो प्रश्नोत्तरों को:—

"(प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये थे वा क्या ? (उत्तर) अनेक; क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता, क्योंकि

"मनुष्या ऋषयश्च ये। ततो मनुष्या अजायन्त।"

यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है। इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माबाप के सन्तान हैं। (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? (उत्तर) युवावस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इस लिये युवावस्था में सृष्टि की है। (प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ है वा नहीं? (उत्तर) नहीं।" (सत्यार्थ-प्रकाश पत्र१४३)

देखा न, एक ही बार सैंकडों सहस्रों मनुष्य, युवा और युवतियां धड़ाधड़ आकाश से वर्षा-बिन्दु की सदृश गिरे और फिर उन लोगों ने मैथुनी सृष्टि की। एक पुरुष को कमल में व्यक्त होने में कटाक्षपूर्ण हंसी उड़ाते हैं और अपने यहां के निराधार सहस्रों मनुष्यों की अमैथुनी उत्पत्ति को युक्तियुक्त बताते हैं! विकाशवादियों तथा मानवसृष्टिवादियों (Evolutionists & Anthropoligists) से पूछ कर देखो कि वे युक्तियुक्त बताते हैं या हंसी उड़ाते हैं। दूसरों की छोटी फुल्ली निहारनी और अपनी मोटी ढेंदर की बात तक नहीं करनी, कहां तक न्यायसंगत है! चलन दूसे बहनी को जिसे बहत्तर छेद।

इनके अतिरिक्त, ईसाई, मुसलमान आदि अन्य धर्म-बन्धु ऐसे चमत्कारों को तो, अपने यहा अवश्य मानते हैं। यदि दूसरों के यहा न माने तो, कोरा दुराग्रह के सिवाय और कुछ नहीं कहा जा सकता है। भाइ, सम्यक् आत्म-अनुभवी तो, इसी शरीर को ऐसी काया-कल्प कर सकता है कि पूर्व और पर शरीर के रूप, वर्ण, आकृति आदि सब के सब में ऐसी भिन्नता आ जाती है कि पहचान तक में न आवे। दोनों समय के फोटो (चित्र) तक न मिले। और एक शरीर छोड कर दूसरा नया वाछित शरीर लेना या अलग से खडा कर देना उनके लिये सरल वो सहज है। पुराने कोट (Coat) को नया बनाना, उसके प्रत्येक सूत्र को केवल स्वच्छ नहीं, बलके नये सूत्रवत दृढ बनाना अधिक कठिन है। दूसरा नया कपडा लेकर नया कोट बनाना आसान है। पर ये सब बाते मन से ऊपर की हैं। कैसे कहा जाय और कौन समझे! यथा,

"क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझनेवाला है!"

स्वय अनुभव करने की वस्तु की प्रतीति दूसरों की कथनी से क्यो कर हो सकती है? हा, उसकी धुधली झलक (Shadowy reflection) कराने की चेष्टा की जा सकती है। इसमें सफलता की बात दूर रहती है। यह विषय इतना सूक्ष्म तथा गहन है कि, लिखने पढने से यदि दूरस्थ झाकि (Distint flash) का भी अनुमान हो जाय, तो बहुत समझना चाहिये। क्योंकि, इसका कहना सुनना, समझना समझाना, दोनों ही अत्यन्त कठिन तथा अति दु साध्य हैं। कहने सुनने में थोडा भी फेर पडा कि, कुछ का कुछ परिणाम निकल पडता है। माखन ऐसा सरल पदार्थ बगला (बक Crane) जैसा टेढा बन जाता है। सुनो,

एक था भिखमंगा (Beggar) जो जन्म का अंधा था। उस बेचारे ने अपनी जीवनी भर में कभी भी माखन (Butter) नहीं खाया था। मांगता मांगता किसी ऐसे सद्-गृहस्थ के द्वार पर पहुचा जो दयालु तथा उदारहृदय का था। जिस समय भिखमंगे ने उसके द्वार पर आवाज़ मारी उस समय उस गृहस्थ ने माखन खाने को हाथ में लिया ही था। उसने समझा कि अपने खाने के पहिले यदि इसमें से थोडा अपने अतिथि को खिला देवें, तो बहुत अच्छा हो। चलो, जरा उससे पूछ तो सही। बस, झट से घर के बाहर निकल कर, द्वार पर खडे भूखे भिखमंगे को पूछा—भाइ, माखन खाओगे?

भिखमंगा—माखन कैसा होता है, दयालो? मैंने तो जिन्दगी भर में कभी भी माखन नहीं खाया है।

गृहस्थ—एकदम सुफेद, बक जैसा।

भिखमंगा—बक कैसा होता है?

गृहस्थ—ऐसा, हाथ को टेढा करके बताया।

भिखमंगा—(चौंक कर) मैं ऐसी टेढी मेढी चीज़ कदापि नहीं खाऊंगा। यह तो मेरे गले में अटक कर मेरे प्राणों को अवश्य ले लेगी। आपकी चीज आप को ही मुबारक हो। मैं अपना रास्ता लेता हू। ऐसा कहता हुआ और उस गृहस्थ को उल्टा पुल्टा सुनाता हुआ आगे चलता बना। गृहस्थ के वारंवार पुकारने पर भी उसको तरफ मुख तक न फेरा।

देखो, ज़रासा सुनने समझाने में फरक पडा और माखन ऐसा कोमल, प्रिय, सुन्दर तथा प्राणवर्धक पदार्थ कठिन, कर्कश, भयंकर तथा प्राणनाशक प्रतीत होने लगा। जब ऐसे साधारण विषय में इस प्रकार की अड़चन समझने–समझाने में आ पड़ती है तो, जो सूक्ष्म विषय केवल स्वय अनुभव-सिद्ध है, उसका क्या पूछना? क्योंकि,

"आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धा" (कठोपनिषद्)

चेतना की साधारण स्थिति (Ordinary consciousness) में मनुष्य अपने आपको बहिष्करण तथा अन्तष्करण में लीन और आत्मसात् (Involved and identified) किये हुये इन्हीं पर निर्भर करता है। शरीर रूपी इस छोटे बाहरी व्यक्तित्व (This external bit of his personality or this outer little self) को ही सब कुछ समझे हुये है। उसको ऐसी मान्यता सदा बनी रहती है कि, " शरीर से वह जीता है, आख से वह देखता है, कान से वह सुनता है, मन से वह विचारता है, इत्यादि इत्यादि।" परन्तु यह भावना तथा अनुभव कि, " उस से शरीर जीवन धारण करता है, उससे आख देखती है (येन चक्षुंषि पश्यति केन–उपनिषद्), उससे कान सुनता है (येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्–के० उ०), उससे मन विचारता है (येन आहु. मनो मतम्–के०उ०) इत्यादि इत्यादि " कठिन साधना करने के उपरान्त साधक को कुछ कुछ प्रतीत होने लगते हैं। अभी तो साहेब कबीर की बानी में **' ओरी के पानी बरेड़िये जाय "** की दशा हो रही है। वर्षाकालमें खपडेपोश (नडियावाले tiled) मकान पर जब पानी बरसता है तो ढालू छावनी के नीचले भाग से, जहा टोटी सी लगी रहती है, ऊपर का सब पानी सिमट सिमट कर निकलता है। छावनी के इस निचले भाग को " ओरी " (Eaves) कहते हैं और छावनी के सब से ऊपरवाले भाग को ' बरेडी ' कहते हैं। नियम तो यह है कि, बरेडी का पानी ओरी द्वारा निकला करे, नकि ओरी का पानी बरेडी के ऊपर चढा करे। पर साहेब कबीर उक्त सरल पर मम्यस्पृ, ग्रामीण पर सारगर्भा वाणी द्वारा जन साधारण की चेतना–स्थिति का कैसा समुचित चित्र Photo) खींच कर बताते है ! वर्षा को सत्–ज्ञान सत्–आदेश अथवा ब्रह्म–ज्ञान ब्रह्म–आदेश समझो, बरेडी को आत्मा अथवा ब्रह्म समझो, ओरी को करण (अन्त-

तथा बहिः) समझो । पानी पड़ने की जगह संसार समझो । समुचित तो यह था कि, आत्मा स्वच्छ जलरूप सत्-ज्ञान वा सत्-आदेशों को मोरीरूप इन्द्रियों द्वारा संसार पट पर चरितार्थ करके इसको निर्मल करता । पर ऐसा न करके सांसारिक विषय-वासना रूपी दुर्गन्ध जल को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके, ऊपर को चढ़ाकर आत्मा को कलुषित तथा मलिन आवरणों से आच्छादित कर रहा है । यही जनसमुदाय की विपरीत-करणी है, जिसको सद्गुरु साहेब देख कर बोल उठे " मोरिया के पानी बरेड़िये जाय । " सीधी और शुद्ध स्थिति का सरस तथा मर्मभेदी वर्णन तो, नीचे लिखी साखी में है, जो मननीय और माननीय भी है—

" कबीर सीप समुद्र का, खारा जल नहि लेय ।
पानी पीवै स्वाति का, शोभा सागर देय ॥ "

सा० ग्र० पृ० २१८

जैसे सीप समुद्र में वास करते हुये भी समुद्र के खारे जल को न लेकर, स्वाति नक्षत्र के वर्षा-बून्द को अपने भीतर धारण कर, मोती तैयार करके सागर को शोभायुक्त करता है । वैसे ही सत्-पुरुष संसार में रहते हुये भी संसार के विषय वासना में लिप्त न होकर, अपने सत्-ज्ञान से संसार को शोभायमान करते हैं । कहा गये सिंह उपाध्याय जी, पोथाधारी शास्त्री जी, अभिमानी दलीलबाज जी जो साहेब कबीर को उटपटांग बोलनेवाले, भुनुगा आदि घृणित नामों से पुकारते हैं ? ऐसे सत्-गुरु, मम-उपदेष्टा वो दिव्य-द्रष्टा को जो उटपटांग बोले उनको जो कुछ कहा जाय वही थोड़ा है । क्या खूब-उलटे चोर कोतवाल को दंडे !

साधारण मानव-स्थिति में कर्ता-पुरुष (Crertive soul) सोआ (Sleep-bouud) रहता है, अथवा घर के झगड़ों के शान्त होने की बाट देखता रहता है, अथवा प्रकृति के मोहिनीरूप मे चकाचौंध होकर अपने आपको भूला हुआ रहता है। प्रकृति के स्वामी बनने के बदले इसीका दास बना हुआ रहता है। स्वामी होकर दासी का दास बना! कैसा मृगुपतन है!! इस पतित अवस्था में पड़ा हुआ जीव यदि वेदव्यास, मुनि वाल्मीकि, योगेश्वर कृष्ण, आचार्य्य शंकर, स्वामी रामानन्द, साहेब कबीर आदि स्वराटों (Self-mnsters) और सम्राटों (World-mnsters) की शक्तियों तथा चमत्कारों पर आशंका करे तो, इसमें कोई आश्चर्य की बात ही नहीं। जो गीदड़ सूखे पत्तों की खरखराहट मे भयभीत होता रहता हैं, वह वनराय केसरी के सामर्थ्य का अन्दाज़ा कैसे लगा सकता है? भारतवर्ष के नामी पहिलवान गामा की ताकत का पता संसार के नामी योद्धा (World-c mpion) जबिस्को को लगा, क्षयी-पीड़ित कंकालशेषों को क्या लगना है? सिंह के बल को भूधराकार वृक्ष उखाड़नेहार मदमस्त हस्ति ही जानता है, चूहा (उन्दर Mouce) नहीं। वसन्त के गुण को कोकिल जानकर मस्त हो जाता है, काक क्या समझे? " करी च सिंहस्य बलं न मूषकः, पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः। " इसी प्रकार साहेब कबीर की सचोट आध्यात्मिक कविता को (Where more is meant th n meets the e r-Milton) जग-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने K bir's Poem (कबीर साहेब की कविता) अंगरेजी भाषा में प्रकाशित कर साहेब के मस्तको तत्व प्रशंसक Undeshi l से मर्मभेदी भूमिका लिखाकर समुचित मान दिया। परन्तु चुगरे जो चपल

लेखक, पश्चिमीय साहित्य-सेवी माला(Men of Letters Series) के लकीर के फकीर लेखक, कविता के चोर वो कोर के रगड़नेवाले, पैसे पैसे पर कलम घसनेवाले (Peny-a-liner) कबीर साहेब की सहज कवित्व-शक्ति तथा रहस्यमय उक्तियों को क्या जाने, पहचानें और मान करें ! " गुणी गुण वेत्ति न च वेत्ति निर्गुणी " साहेब की सिद्धियों को बादशाह सिकंदर शाह लोदी और उनके गुरु शेखतकी शाह जानें। उनके आत्मबल का परिचय बलख बुखारे के बादशाह सुलतान अहमद शाहको मिला, जो " बन्दीछोड " का पद उन्हें दिया। जड़-मूर्तियों पर उनके प्रभाव के बारे में धर्मदासजी तथा गोलकान्डा के बादशाह, धानाशाह के मन्त्री के जमाई गोवाना, मद्र-चालम के राममन्दिर के पुजारी को पता चला। कर्तापुरुष की बातें कर्तापुरुष ही जानें या जिनको वो जनावें वे जानें।

" यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः । "

ऐसे कर्ता-पुरुषों (creative souls) के मनोमय कोष में भी कर्तृत्व-शक्ति (creative mind) भरी रहती है। ये महापुरुष संकल्पमात्र में कठिन से कठिन कार्य्य सम्पादन किये हैं और कर सकते हैं, जो निम्नस्थों के मस्तिष्क में समा नहीं सकते। इसमें इन विचारों का भी कुछ दोष नहीं। जैसी स्थिति, वैसा ज्ञान। जैसी समझ, वैसी वार्ता। आत्मा के ताजमहल की बूर्जियों (towers) पर से जो जमुना का विस्तृत और सुहावना दृश्य दिखाई देता है वो नीचे के कमरों में से बैठे बैठे कैसे मालूम पड़ेगा ! कुछ ऊपर चढ़े तो ऊपर चढ़ों की बात समझे। कुछ " गगन-मंडल " में उड़े तो उडेहुओं का तमाशा देखे। कुछ उन्नत कार्य्य करे तो, उन्नतों का कार्य्य समझ में आवे। ध्यान धर के सुनो जो एक महान तत्ववेत्ता (जिन्होने अपने

जीर्ण, शीर्ण, काले कुचैले, शरीर के अंग प्रत्यंग को तपोबल द्वारा परिवर्तन कर—transforming the minutest cells of his body by tapas Shakti हृष्टपुष्ट, स्वस्थ रोगमुक्त—immunl from diseases—सर्वांग-सुन्दर, काया-कल्प यो काया-कंचन बना चुके है) बल पूर्वक आत्म-अनुभव की बात कहते है :—

"All these things we observe and reason of in terms of this embodiment of mind in matter; for these sheaths or koshas (कोष) are formations in a more and more subtle substance reposing on gross matter as their base. Let us imagine that there is a mental world in which mind and not matter is the base. There sense would be a quite different thing in its operation. It would feel mentally an image in mind and throw it out into form in more and more gross substance; and whatever physical formations there might already be in that world, would respond rapidly to the mind and obey its modifying suggestions. Mind would be masterful, creative, originative, not as either obedient to matter and merely reproductive or else in struggle with it."

(Arya by Sri Aurobindo)

"In more detail, particular forces, movements, powers, beings of a higher world can throw themselves on the lower to establish appropriate and corresponding forms which will connect them with the material domain and, as it were, *reproduce* or project their action here."

(The Riddle of this world by Sri Aurobindo).

महान तत्वॉवेत्ता श्री अरविन्द के उक्त कथन का सारांश यह ज्ञातव्य कि, साधारण मानव-स्थिति में मनोमय-कोष का आधारभूत

जड प्रकृति है । उच्च चेतना के संसर्ग से जब यह मन शुद्ध तथा (Spiritualised) हो जाता है, तब यह निज कल्पित रूप या अपने में गढ़ा कर जड जगत में फंसाता है उस रूप को जड प्रकृति स्थूल रूप से धारण कर जगत में चरितार्थ करती है। ऐसा स्थिति के मनोमय कोष में स्थापित, कर्तृत्व तथा सूक्ष्मत्व सदा निगलत हैं। अन्यथा यह प्रकृति का दास बना रहता है । सिंह होकर, अज्ञान में गीदड को अपना बराबर समझ कर, उसी से लडता भींचता रहता है । इस रहस्य को सब कोई कभी जान ना समझे ' यथा—

" नित उठ सिंह सियार (Jackal) से जूझे ।
कबीर के पद जन निरला बूझे ॥ "

(साहेब कबीर)

आगे चलकर उक्त तत्ववेत्ताओं और भी स्पष्ट कर देते हैं कि, उच्च आत्मा या कर्तापुरुष अपने सूक्ष्म या सत्-लोक से अपने तन को इस प्रकार से स्थूल जगत अथवा भूलोक पर फेंक सकता है कि उसका एक प्रतिरूप जगत में मालूम पड़े जो उसका कार्य्य यहा पर किया करे । ऐसी अवस्था में वह अपने दोनों, व्यक्त तथा अव्यक्त, क्षर तथा अक्षर, (Mutable and immutable personal impersonal selves) रूपों में सचेत विराजमान रहता है । एक दूसरे से सम्बन्ध बेतार के तार (Radio Transmitter and Radio Receiver) की तरह अदृश्यरूप में सदा लगा रहता है, जैसा के साहब कबीर ने अपने ग्रंथ में सुक्ष्मरूप से सकेत किया है —

•रहता (Immutable), पुरुष कबीर है,
चहता (Projected mutable personality)हैमो भेख।

कहीं कहीं खोलकर स्पष्ट कर दिया है। यथा—

"अब हम अविगतसे चलि आये, काहू भेद मरम नहिं पायें।
ना हम जन्मे गर्भ बसेरा, बालक होय दिखलाये।
काशी शहर जंगल बिच डेरा, तहां जुलाहा पाये।
थे विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये।"

साहेब कबीर के इसी विलक्षण अवतरण तथा उनकी अनादि योग-माया को कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर इस प्रकार अंगरेजी में लिखते हैं:—

"Brahma did not hold the crown; the God Vishnu was not anointed as king; the power of Shiva was still unborn; when I was instructed in yoga. I became suddenly revealed in Benares."

(Kabir's Poem by Ravindranath Tagore).

इस विषय को और विस्तार रूप दिया जा सकता है। पर समझदार के लिये काफी है। नासमझ को कहां तक समझाना! अन्त में, गरीब साहेब के सत्य वचन को सामने रख कर, इस प्रकरण को यहीं छोडकर, आगे बढ़ना ही उचित प्रतीत होता है:—

"गगन मंडल से ऊतरे, सतगुरु, पुरुष कबीर।
जलज मांहि पोढन कियें, सब पीरन के पीर॥"

[ग्रंथ साहेब]

अर्थात् सत्-गुरु, सत्-पुरुष, सब पीरों के पीर, साहेब कबीर, (सम्वत् १४५५ के जेठ की पूर्णिमा के ब्राह्म मुहूर्त में) गगन मंडल से उतर कर, (काशी के लहर तालाब में) कमल पुष्प पर प्रकट हुये।

॥ खंड–दूसरा ॥

" गुणाः पूजास्थान न च लिंगं न च वयः । "
(भवभूति)

" गुण पूज्य हैं, नकि, वर्ण, आश्रम अथवा उमर । "

जो कोई अपने को कुलीन मान कर, दूसरों को कुलहीन समझ कर, घृणा की दृष्टि से देखता है, और जो कोई अपने को कुलहीन मानकर, दूसरों को कुलवान समझकर, आदर की दृष्टि से देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ (Deluded) हैं। एवं जो कोई अपने को उच्च वर्ण का समझ कर दूसरों को नीचा देखता है, और जो कोई अपने को नीच वर्ण का समझकर दूसरों को उच्चा देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। तथा जो कोई गेरुआ या भगवा वस्त्र धारण करने से अथवा चौला कपडा वो तिलक छाप (Trade-mark, व्यापार-चिन्ह) केवल लगाने से अपने आपको ब्रह्मनिष्ठ अथवा भक्तराज समझ कर, दूसरों को विषय--लिप्त अथवा समझता है, और जो कोई गृहस्थ मात्र शरीर पर सादा कपडे रखने से अपने को उनसे भावा की अपेक्षा निकृष्ट मानता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। इसी प्रकार जो कोई अपने को केवल बडी उमरवाला (Older in age) समझ कर, दूसरों को अपने से कमअक्ल समझता है, और जो कोई अपने को फक्त छोटी उमरवाला समझ कर, दूसरों को अपने से अक्लमंद समझता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। क्योंकि,

" यत् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः । " (श्रुति)

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजः।" (स्मृति)

" जन्माद्यस्य यतः । " (वेदान्त)

" ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।" (गीता)

सारांश यह निकला कि धीर, स्थिर बुद्धिवाले धीमान लोग उस शुक्र निन्य विभु के गर्भ से निकले हुये सभों को जानते है। जन्म से सब कोई शूद्र पैदा होता है, संस्कार से श्रेष्ठ बनता है। इस जीवलोक मे यह जीवात्मा उसी भगवान का ही सनातन अंश है। पुराण कुरान अथवा बाईबिल (Bible) के अनुसार भी सब मनुष्य व आदमी एक मनु अथवा आदम से पैदा हुये हैं। सब के कुल के मूल पुरुष तो, वही एक ही निकलता है। फिर कुलीन कौन और कुलहीन कौन, ऊंचा कौन और नीचा कौन ? ऐसे गम्भीर ज्ञान माननीय प्रमाण तथा सार्वभौम इतिहास के सामने रहते हुये भी किसी के गुण की तरफ न देख कर, केवल "जोलाहा" "जोलाहा" पुकार कर, अपमानित करते जाना, कहा तक न्याय-संगत है ? पूजा गुण की करनी चाहिये, न कि, कुल और कपडों की। पिछले खंड में बताया जा चुका है कि साहेब कबीर कहा से आये। उनका कुल या मूल अक्षर पुरुष है। वह गीता की भाषा में साक्षात् ऊर्ध्वमूलः अधःशाखः थे। परन्तु थोडी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि साहेब कबीर जोलाहे के घर में हुये या पले तो इसमें घृणा से नाक सिकोरने की कोनसी बात है ? सिलसिले वार घर बाहर दोनों की सुनो, —

वाल्मीकि किरात के घर पैदा होकर, राहगीर, बटमार और हत्यारा के जीवन व्यतीत कर, पीछे सत्-संग से मुनि-पद को पाये। वशिष्ठ जी वेश्या के पुत्र होकर, अपने तपोबल से भगवान रामचन्द्र के गुरु बने। नारद दासी-पुत्र होकर, भक्ति के प्रभाव से देवर्षि कहाये। हजरत ईसा (Christ) बिना बाप के पैदा होकर भी एक महान धर्म (Christianity) का प्रवर्तक बने। अगस्त्य बिना मा

के घट से उत्पन्न होकर भी ऋषि पद को पाये। कृष्ण अहार (जिस की सामाजिक स्थिति जोलाहे की ऐसी है) के घर में होकर अथवा पल कर जगत्-गुरु बने। फिर साहेब कबीर के प्रति इतना रगडा झगडा क्यों ? उन पर आश्चर्य से आख फाड़ने से क्या मतलब ? संत तुलसी दासजी ने भी गुणग्राहकता की ओर ध्यान खींचते हुये, अपनी रामायण में इस प्रकार अंकित कर, प्रशंसनीय उदारता का परिचय दिया है —

"मज्जन फल देखिय ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करइ जनि कोई। संत-संगति-महिमा नहिं गोई।
बाल्मीकि नारद घटयोनि। निज निज मुखन कही निज होनी॥"

"सत्-संगरूपी तीर्थ में स्नान करने का फल तत्काल दिखाई देता है कि कौए कोयल और बगुले हंस हो जाते हैं। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्यों कि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है। वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपनी उत्पत्ति अपने मुखों से कही है।"

जब नीच से नीच कुल में उत्पन्न होकर तथा घृणित से घृणित तरीके से जन्म लेकर भी सत् के संग से उच्च से उच्च पद तथा मान को मनुष्य प्राप्त कर लेता है, तो जो स्वयं सत् के अवतार साहब कबीर थे उनका क्या पूछना ? विस्तार के भय से पुंश्चली-पुत्र ऋषि जाबाली, नियोग से उत्पन्न धर्मराज युधिष्ठिर आदि का उल्लेख करना ठीक नहीं प्रतीत होता। पर ऊपरी आडम्बर को छोड़कर सदा भीतरी गुण पर ध्यान देना चाहिये। व्यक्तित्व की कीमत होती है, न कि, जातीयता की। क्योंकि,

' जातिमात्रेण न कश्चित् हन्यते पूज्यते क्वचित् ।"

राम क्षत्रिय वंश अथवा जाति के थे और रावण ब्राह्मण कुल अथवा जाति का था। पर राम भगवान कहाये कि जिनका नाम आज

लाखों वर्ष के बाद भी सब वर्णो के लोगों की जिह्वा से आदरपूर्वक निकलता है। और रावण राक्षस कहाया जो कि अब तक घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। फिर वही राम के कुल में लव कुश हुये। उनका कौन जाप करता है? फिर लव कुश के वंश में जो जो हुये उनके नाम तक लोग नहीं जानते। सदा तत्व की तरफ दृष्टि रखनी चाहिये, न कि ऊपर के आवरण के ऊपर। साहेब ने कैसा सचोट उपमा-सहित साखी कही है।

" जात न पूछो साध की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार की, पड़ी रहन दो म्यान॥"

साधु की जाति पाति की कीमत नहीं, उसके ज्ञान की कीमत है। तलवार के चमकीले म्यान (Sword-case) को बाहर हटा कर, तलवार की कीमत करनी चाहिये। भगवत-भक्त तथा तन्मयता प्राप्त हुये में जाति पाति का प्रश्न रहता ही नहीं। वह भगवान का एक स्वरूप बन जाता अथवा बना रहता है। यथा,

" वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावम् आगताः॥ "

(गीता)

'राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थितिवाले मेरे शरण हुए बहुत से पुरुष ज्ञानरूप तप से पवित्र हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होचुके हैं।" जब बलख बुखारे के बादशाह सुलतान अहमदशाह का साहब कबीर के आगमन का परिचय मिला तब बधे साधुलोग साहब को ' बन्दीछोड़ ' कह कर चिल्ला उठे और खुद ' सुल्तान, साहब के पैरों पर गिर कर कातर स्वर से विनति करने लगा —

" हमारी जान बख़्शो, आप तो खुद खुदा की जात, पाक थो साफ हो "

कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने भी इसी अभेद भाव को अंगरेजी में निम्न प्रकार दर्शाया है।

" It is needless to ask of a saint the caste to which he belongs

For the priest, the warrior, the tradesman, and all the thirty-six castes alike are seeking for God

It is but folly to ask what the caste of a saint may be.

The barber has sought God, the washerwoman, and the carpenter Even Raidas was a seeker after God The Rishi Swapacha was a tanner by caste Hindus & Moslems alike have achieved that End where remains no mark of distinction

(Kabir's Poems by Ravindranath Tagore)

किसीने क्या ही सच कहा है !

" जाति पांति न पूछे कोई, हरि को भजे सो हर को होई। "

॥ खंड–तीसरा ॥

" ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पंडितं बुधा "
(गीता)

" उस ज्ञानरूप अग्नि–द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले पुरुष को बुद्धिमान जन पंडित कहते हैं । "

बुद्धिमानों के पंडित और मूर्खों के पंडित में भेद है। बुद्धिमानों की दृष्टि में वह पंडित है जिसने अपने ज्ञान के प्रभाव से कर्म के बन्धन को छिन्न भिन्न कर डाला है। और मूर्खों की नजर में वह पंडित है जो मोटी मोटी प्रख्यात पुस्तकों (वेद, कितेब–The Vedas, the Bible, the Koran, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, रामायण, भागवत, महाभारत, गीता आदि) की पाठ तथा कथा मनोहर रूप से किया करे। पाठ तथा कथा के ज्ञान से परे रहने अथवा विपरीत आचरण करने से भी पंडित नाम ज्यों का त्यों बना रहता है। फोनोग्राफ के रेकर्ड (Phonographic Record) की तरह दूसरों के मन को खुश किया करे, पर अपने तो अशान्त होकर उक्त रेकर्ड की सदृश चक्र में फिरा करे। तोते (पोपट) की तरह मीठी स्वर से "सोऽहं" का जाप सिखाया तथा किया भी करे, पर अपने सत्य–रूप से सदा भिन्न रह कर, विपरीत करनी करता हुआ, कर्म के बन्धन–रूप पंजरे में उक्त तोते की तरह जकड़ा भी रहे। **ज्ञानी पंडित** स्वकीय संकल्पों को किनारे करता हुआ, प्रभुप्रेरित कर्मों को निष्काम तथा निष्पृह भाव से संपादन करता हुआ भी कर्मों के फन्दे से सदैव अलग रहता है। पर मूर्ख–पंडित शास्त्र तथा ज्ञान

की बात चिल्ला चिल्ला कर पढ़ता अथवा सुनाता हुआ भी अपने को उससे सदैव वंचित रखता है। यथा,

"शास्त्राण्यधित्यापि भवन्ति मूर्खाः ।
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥" (नीति)

"शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते हैं। जो शास्त्रज्ञान के अनुकूल आचरण करता है वही विद्वान् है।"

एक-शास्त्री हो अथवा षट्शास्त्री हो, द्विवेदी हो वा चतुर्वेदी, पर यदि जो वेदों, शास्त्रों के ज्ञान को आत्मसात् नहीं किया, जो ज्ञान को धूर्त दूकानदार की तरह केवल दूसरों के मन को आकर्षण कर, पैसा आदि याचने के निमित्त दिखावा-गृह (Show-room) में रखे रहता है, जो शास्त्र-ज्ञान से तन्मयता न प्राप्त कर, अपने आचरण से उसको स्फुट नहीं करता है, वह **शास्त्र-मूर्ख** है। और जो वेदान्त आदि शास्त्रों की मारा-मारी (Intellectual fights disputes and quarrels) से निरकुंठ अनभिज्ञ रहकर भी, यदि अपने रूप में स्थित होकर अपना वर्ताव तथा आचरण को शुद्ध रूप में प्रगट करता रहता है, वह **अपठित-विद्वान** है। नीति के उक्त भाव को साहेब कबीर ने सरल ग्रामीण उपमा के साथ निम्न साखी में कैसा सचोट स्फुट किया है !

"करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात ।
कूकर ज्यों भूकत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥"
(सा० ग्र० पृ० ३६१ सं. ४)

उक्त अर्थ में हम कहा करते है कि साहेब कबीर "अपठित विद्वान" थे, और गीता के अनुसार "बुद्धिमानों के पंडित"

थे, अक्षर रूप में "ऊर्ध्वमूल" थे और शरीर रूप में "अधः-शाख" थे। यह बात बिल्कुल ठीक है कि साहेब व्याकरण, वेदान्त आदि ग्रन्थों के मूल, भाष्य अथवा महाभाष्य को रटे हुये नहीं थे, और न उनको ये सब रटने की जरूरत ही थी! वह न्याय के "अन्वय" "व्यतिरेक" आदि के प्रपञ्च की रगड़ से अलग थे, और न उनको ये सब रगड़ में पड़ने की कुछ आवश्यकता ही थी। द्रव्य में गुण है कि गुण में द्रव्य है ऐसे निरर्थक शास्त्रार्थों अथवा वाद-विवादों से परे थे, और न उनको ये सब वादविवादों की आवश्यकता ही थी। उनको तो "एके अनेके अनेके सो एके" (Unity in diversity) का प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct perception) था। फिर उनको बेकार झगड़ा से क्या मतलब? व्याकरण पढ़ा जाता है लौकिक तथा वैदिक साहित्यों को समझने के लिये, और साहित्य पढे जाते है प्रकृति वो पुरुष के ज्ञान के लिये। परन्तु पुस्तकों से सदा परोक्ष (indirect) ज्ञान हुआ करता है। फिर जिस साहेब कबीर को प्रकृति वो पुरुष का सहज तथा प्रत्यक्ष ज्ञान था, उनको उक्त पगथियों (steps) पर माथापची करके परोक्ष ज्ञान लेने से क्या मतलब? डूंगर (mountain) खोद कर उंदर (mouse) निकालने से क्या प्रयोजन? सुनो और समझो:—

एक था राजा जो पठित था। उसके कोष में कोटानुकोट रुपये, बहुत सोने वो बहुमूल्य रत्न आदि पडे रहते थे। उसकी आल्मारियों (Book-Shelves, almirahs) में वेद वेदान्त, इतिहास पुराण आदि अनेक ग्रन्थ भी विराजमान थे। राजकीय कार्य्य से अवकाश मिलने पर ग्रन्थों का रस अवलोकन भी किया करता था तथा कथको से इनकी कथा भी सुना करता था। उसकी रानी कुछ भी पढ़ी लिखी

नहीं थी। पर सांसारिक घटनाओं को विचार-पूर्वक देखा करती थी और आप ही आप कुछ मन्तव्य निकाल कर मनोमय कोष में एकत्रित किया करती थी। संसार के सब पदार्थों का एकमात्र स्वामी, भगवान को, दिल से समझती थी। राजा के पुरोहित तो खूब पढ़े लिखे थे और अच्छे कथक्कड़ भी थे। मोटी मोटी पोथियां वो थैलियां घर में तथा साथ भी रखा करते थे। कथा की पूर्णाहूतियों के समय पर पोथिया फलों से तर हो जातीं और सिकुड़ी हुई थैलियां रुपयों से भर कर फूल जातीं। कथा के आरम्भ करते ही पूर्णाहूति के दिन की तिथि उनके ध्यान में उपस्थित होजाती थी। भावी (Coming) पूर्णाहूति की आमदनी का हिसाब दिनरात में कई बार जोड़ लिया करते थे। अभिष्ट से कम की आशंका सदैव लगी रहती थी। फिर दूसरी जगह कथा करने का प्रोग्राम (Programme) आपही आप रचकर मन को समझाते बुझाते। इसी उधेड़-बुन में जीवन का अधिक समय बीता करता था। निन्नावे का फेरा ही ऐसा है। उमर तो साठ तक पहुंच कर शरीर को कुछ झुका चुकी थी पर तृष्णा तो वर्षाकाल के तरुण तरुवर के ऐसा दिन दूना वो रात चोगुना सीधी हीं बढ़ती जाती थी। जैसे राजा को दो तिन लड़के लड़कियां थीं वैसे पुरोहित जी को भी। एक दिन पुरोहित जी अपने घर के निकटवर्ती राजमहल में पधारे। राजा ने पुरोहित से कहा कि गीता का कुछ ज्ञान सुनाओ। पुरोहित ने एवमस्तु कहकर :-

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः—

के आधार पर शरीर को मरणशील, अन्तरात्मा तथा आत्मा को नित्य और अनन्त, अनेक प्रमाणों तथा रोचक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया। वार्ता के बीच बीच में राजा रानी को (जो पांसी

दूसरे विचार में मग्न थीं) पुकारा करते थे कि जिसमें वह भी इस ज्ञान को ग्रहण करे। वह एक वार आई और थोडी देर सुन कर चली गई। थोडी देर के बाद पुरोहित भी अपनी वक्तृता समाप्त कर राजा को खुश कर, दक्षिणा रूप नगद नारायण (Cash) पर हाथ फेरते हुये अपने घर को सिधारे। दैवयोग से दो ही दिन के बाद राजा तथा पुरोहित के बड़े लड़के महामारी (Cholera) रोग से ग्रस्त हुये ओ लाख दवादारू करने पर भी दोनों ही के शरीर का अंत होही गया। इधर राजा आर्तनाद से रोते थे और उधर पुरोहित भी छाती पीट पीट कर चिल्ला रहे थे। रानी शान्त तथा प्रसन्न चित्त मे बैठ रही थी। लोग विस्मय में आकर रानी से पूछने लगे। उसने यही कहा कि शरीर नाशमान है, ऐसा तो मुझे अनेक मृत्यु-घटनाओं मे प्रत्यक्ष ही था, पर आत्मा नित्य है यह पुरोहित के परसों के प्रवचन से सिद्ध ही होगया है। फिर रुदन करके शोर मचाने की कौन सी जगह है ? इसके अतिरिक्त सारा संसार का एकमात्र स्वामी भगवान है। वही न्यायानुसार सब को देता है और ले भी लेता है। वह देवे, न देवे, दिया हुआ भी ले लेवे, इसमे किसी का क्या चारा है ? थोडे ही सरल और सच्चे सब्दों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, समर्पण आदि के मूल मंत्र वता दो और उन पर वर्त कर दिखादो। विचारो, तीनों के सामने एक ही घटना समानरूप से उपस्थित है। अपठित अबला शान्त है और पठित राजा तथा पोथाधारी पुरोहित व्याकुल है। साहब ने कैसा ठीक कहा है —

नजर नहीं आवत आत्म-ज्योति।

कहत कबीर सुनो भाइ साधो, घर घर बांचत पोथी। न०

भाइ, आत्म-ज्योतिवाले को पोथा पोथी की आवश्यकता नहीं है। परम-हंस रामकृष्ण जी क्या पढे थे ? उन्होंने कौन सा पोथा लिखा

है ! परन्तु उच्च से उच्च कोटि के विद्वान् स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे भी उनको अपने गुरु के नाम से पुकारने में फख़र (Pride) समझते थे। उनके नाम पर सेवा-आश्रम आदि खोलने में कल्याण समझते थे। जगत में विख्यात फ्रेन्च लेखक रोमा रोलन्ड (Roman Rolland) ने उनका विस्मय-जनक जीवन लिखा है। हज़रत ईसा (Christ) अपना हस्ताक्षर (Signature) भी करना नहीं जानते थे। पर आज करीब दो हज़ार वर्ष के बाद भी उनकी उक्तिया प्रमाणरूप से कही जाती हैं। लोगों में उनकी प्रतिष्ठा ऐसी बढ़ी कि उनकी जन्मतिथि से ईस्वी सन् वा सम्वत का आविर्भाव हुआ, जो आजतक चालू है और आगे भी चालू रहेगा। पोथा पोथियों को बहुत पढ़ने से तो किसी को सत्य-ज्ञान न होकर उल्टा भ्रम बढ़ जाता है और कभी कभी घुंचवारा भी बन जाता है। अनेकों को तो मिथ्या अभिमान का ऐसा गाढा रंग चढ़ जाता है जो जीवन के अंत तक साफ होता ही नहीं। बल्के दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है। " पयःपानं भुजंगाना केवलं विष-वर्धनम् " की दशा होती जाती है। अमृतरूप दूधपान साप में विष ही उत्पन्न करने का निमित्त बनता जाता है। मन मे पांडित्य का अहंकाररूप मल ऐसा भर जाता है कि सत्-ज्ञानरूप ब्रह्म (सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म-उपनिषद्) में लीन होने की जगह भ्रम मे चक्कर मारते रहते है। अभी थोडे ही दिन की बात है कि गुजरात में एक प्रख्यात ब्रह्मनिष्ठ, गीता के ज्ञान के मन्दिर को रचानेवाले, अपने को विद्या के पंडित माननेवाले, भ्रमनिष्ठ सबूत हुये और इस प्रदेश से बाहर मुख छिपा कर भागे फिरते हैं। पहले बहुत दिन तक गुप्त रही। पर अब तो सर्व साधारण (Public) में एकदम प्रकट होगई। नतु नचं अगर मगर की जगह भी नहीं रही। यथाः—

अविद्यायां अन्तरे वर्तमाना : स्वयं धीरा : पंडितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ॥
(उपनिषद)

आत्मा असंग है (असंगोऽयं आत्मा) का उलटा पाठ पढ कर घार कुकर्म में रत होते हुये भी अपने को पंडित वो ब्रह्मनिष्ठ कहते ही जाते हैं। असत् पदार्थ वो विषयों से गला जोडते हैं और सत् ब्रह्म को अपना प्रीतम (Beloved) बनाना छोड बैठते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने साहेब के इसी भाव को अंग्रेजी में इस प्रकार व्यक्त किया है–

I have learned the Sanskrit language, so let all men call me wise; but where is the use of this, when I am floating adrift, and parched with thirst, and burning with the heat of desire ?

Kabir says : " To no purpose do you bear on your head this load of pride and vanity. Lay it down in the dust and go forth to meet the Beloved. Address Him as your Lord."

(Ravindranath Tagore).

केवल वेद किताब के पठन पाठन से, शास्त्र पुराण की कथा करने कराने से, अहंब्रह्म वो शिवोऽहं अथवा राम राम और श्याम श्याम के चिल्लाने से, तिलक छाप करने कराने से, साहेब की साखी शब्दों को ढोल मंजीरा पर गाने बजाने से भी (जैसा के साहेब स्वयं कहते हैं–

माला पहिरें टोपी पहिरें, छाप तिलक अनुमाना।
साखी–शब्दै गावत, भूले, आतम खबरि न जाना ॥

कबीर साहेब का बीजक, शब्द नं. ४

आत्मा की खबर नहीं पड़ती और कर्म के फास भी नहीं छूटते। हां, इनसे परोक्ष ज्ञान मिल सकता है। छिपी हुई अग्नि कुछ ऊपर खुली हो सकती है। उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है। परन्तु ये सब प्रत्येक को हो, यह निश्चय नहीं। और अभ्यासी को कुछ अधिक सहारा मिलता है। अनुभव मिलाने को जगह मिलती है (to compare spiritual experiences), दृढ़ता आती है। पर सचमुच में है यह गुरुगम्य बात। जब बाहरी अथवा भीतरी सत्-गुरु (External or internal true guide) से भेंट हो जाता है। तब इस सूक्ष्म आत्मज्ञान में कुछ गति भी होने लगती है और ज्ञानोदय से कर्म का फन्दा भी कट जाता है। यथा,

"कर्म फास छूटै नहीं, केतो करो उपाय।
सत्-गुरु मिलै तो ऊबरै, नहि तो यक्को खाय॥"
(सा० प्र० पृ० स०)

न नरेण अवरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधाः चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणीयान् हि अतर्क्यं अणुप्रमाणात्
(कठ-उपनिषद्)

·॥ खंड–चौथा ॥

" निवृत्त—रागस्य गृहं तपोवनं ।"

" वीतरागवाले का घर ही तपोवन है।"

स्थान की विशेषता उसके स्वामी की विशेषता पर निर्भर है। इसमें कोई संदेह नहीं कि कृत्रिम अथवा स्वाभाविक दृश्य (Artificial or natural scens) का प्रभाव सरल चित्त के ऊपर अवश्य पडता है। परयदि चित्त की कोई भी वृत्ति वेग से जाग उठी हो तो, इन दोनों के प्रभाव को दूर फेंक कर अपनी ही स्थापित रखती है। कभी कभी तो उनके माने हुये परिणाम से बिल्कुल विपरीत फल देखाती है। जैसे. लोगों में ऐसी मान्यता है कि एकान्त स्थल में मन शान्त होजाता है और शुद्धता को भी प्राप्त करता है। ठीक है, कितने मनुष्यों को एकान्त सेवन से उक्त दोनों तरह के लाभ मिले हैं और दूसरों को भी मिल सक्ते हैं। पर प्रत्येक को एकान्त से ऐसे लाभ मिले, यह कोई निश्चित नियम नहीं। क्योंकि घोर से घोर पाप की नींव एकान्त में ही डाली जाती है। हत्या भी निर्जन और नीरव स्थान में की जाती है। कामी को विषय–तृष्णा भी अकेले ही में अधिक सताती है। उठाओ कवि कालीदास के मेघदूत को। विचार के साथ अध्ययन करो एकान्त स्थित यक्ष की भीतरी दशा को और उसके कामातुर उद्गार को। किसीने कैसा ठीक कहा है!

" स्थानं विरिक्तं यतिनाम् विमुक्तये,
कामातुराणां अति कामकारणं।"

यतियों के लिये एकान्त स्थान मुक्ति का साधन होता है और कामातुरों के लिये काम के वेग को अत्यन्त बढ़ानेवाला बन जाता है।

अतः सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रहता है। दूसरी चीज या स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है। राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्य्यों को करते हुये, स्त्री के साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सबों के दूषणों से एकदम परे रहे। जीवन-मुक्त के पद को पाये। ऋषियों मुनियों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अन्तिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे। परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फूल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये विश्वामित्रजी कामातुर हो फंसे और शकुन्तला की उत्पत्ति करी। फिर युवती होने पर उसी शकुन्तला को कण्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया। विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को। महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड़ पदार्थ भी तीर्थ बन गये। उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चलती है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुंचते ही शान्ति मिलने लगती है। फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निवास में चले आने से पापरूप वेश्या-स्थान बन जाता है। हनुमान गढ़ी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर विदित हैं और महाराजा लायबल केस (Maharaja Libel case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड़ में शिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है। चन्द दिनों की बात है कि वल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पक्का गुलाम बन गये। जहा पर रामस्नेही रहा करते थे वहा पर राँड़स्नेही रहने लगे। जहा पर विरागी रहा करते थे वहा पर रागी तथा विषयी

अत सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रखता है। दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है। राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्य्यों को करते हुये, स्त्री के साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभों के दूषणों से एकदम परे रहे। जीवन-मुक्त के पद को पाये। ऋषियों मुनियों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अन्तिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे। परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फूल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये विश्वामित्रजी कामातुर हो फसे और शकुन्तला की उत्पत्ति करी। फिर युवती होने पर उसी शकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया। विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को। महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड़ पदार्थ भी तीर्थ बन गये। उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चलती है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुचते ही शान्ति मिलने लगती है। फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निवास में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है। हनुमान गढी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर विदित हैं और महाराजा लायबल केस (Maharaja Libel case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड में शिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है। चन्द दिनों की बात है कि वल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पक्का गुलाम बन गये। जहा पर रामस्नेही रहा करते थे वहां पर राडस्नेही रहने लगे। जहां पर विरागी रहा करते थे वहां पर रागी तथा विषया

जना का अड्डा बना। जहाँ धारणा, ध्यान का अभ्यास चलता था वहा गुरु शिष्य राग रग में मस्त हैं। व्यक्ति-गत आचरण से तपोभूमि रगभूमि बन जानी है और रगभूमि तपोभूमि बन जाती है, वैराग्य-आश्रम (Penance-house) रागभवन (Pleasure-house) बन जाता है और गृहस्थी का घर तपस्यास्थल बन जाता है। इसमें घर बाहर की, मकान मंदिर की कोई बात नहीं। कितने वैरागी ब्रह्मचारी वास्तव में घरबारी हैं। और कितने गृहस्थ घरबारी असल में ब्रह्मचारी हैं। बस, इसी प्रकार के घरबारी-ब्रह्मचारी, त्यागी-गृही, जीवन-मुक्त साहेब कबीर, राजा जनक के ऐसा विदेही-देही थे। उन्होंने आत्म-परिचय मे उद्घाटन भी किया है :—

" थे विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये। "

मान भी लिया जाय कि उनके घर में लोई और धोई नाम की दो स्त्रिया रहती थीं और कमाल वो कमाली नाम के लड़का वो लड़की भी रहा करती थी, तौभी साहेब के महत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ता, यदि राजा जनक रानी सहित घर में रहते हुये भी विदेही कहला सकते हैं, रामजी सती सीता के साथ सहवास करते हुये, लव कुश लड़कों को उत्पन्न करते हुये भी भगवान का अवतार बन सकते हैं, कृष्णजी अपनी प्रेमस्वरूपा स्वकीया महिला तथा भक्ति-परायणा परकीया गोपां-गनाओं के मध्य में विराजते हुये भी योगारूढ और योगेश्वर बने रह सकते हैं तो, साहेब कबीर को सत्-पुरुष कहने और मानने में कौन सी अड़चन आ पड़ती है? यहा पर साहेब की जीवन-घटनाओं से कुछ उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। इनको विचार-पूर्वक पढ़ कर अपनी राय कायम करनी चाहिये। हठ वश न मानने से साहेब की सत्-पुरुषता में जरि भी कमी कदापि नहीं आने पावेगी।

कुछ लोगों का ऐसा ख्याल है कि, कमाल तथा कमाली साहब कबीर के निज पुत्र तथा पुत्री था। पर नीचो लिखी घटनाओं से, कुछ अन्यथा ही बोध होता है। सुन लो, आगे जैसा मन में आवे वैसा समझा करना और कहा करना। कोई किसी का मुह थोडे ही रोक सक्ता है। किसीने ठीक कहा है—ससार का मुह भमार। तथा—जना विचित्रा अद्भुदभावभाञ्जी। अर्थात् खोपडी खोपडी की मति न्यारी।

शाहनशाह सिकन्दर लोदी (Emperor Sikunder Lodi) १५ वीं शताब्दी में दिल्ली के सम्राट्—सिंहासन पर शोभायमान थे। उनके पीर अथवा गुरु शेखतकी शाह थे। यह राजगुरु शेखजी का स्थान झूसी में इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गंगा—जमुना के सगम पर था। अभी भी शायद उनकी कब्र मौजूद है। उक्त शेखजी कबीर साहब के ज्वलन्त प्रभाव को देख सुन कर मन ही मन भून जलाभूना करते थे। कभी कभी यह भीतरी अग्नि हाल में बडोदा राजमहल के घेरे (Compound) में फूटे भूगड के समान ऊपर आ जाया करती थी। समय समय पर ऐसी द्वेषाग्नि से पीड़ित होकर शेखजी अपने शागिर्द (सेवक) उक्त सिकन्दर बादशाह का उत्तेजित कर साहेब कबीर को अनेक प्रकार की ऐसी क्रूर यातनायें दिलाया करते थे कि जिनको सुनकर कलेजा काप उठता है। पर चन्दन ज्यों ज्यों घिसा जाता है त्यों त्यों उसका सुगन्ध वो सुवास, फूटता वो फैलता जाता है, हेना (मेहदी) ज्यों ज्यों पीसी जाती है त्यों त्यों सूर्खी (लाली) निकलती आती है, सोना ज्यों ज्यों तपाया जाता है त्यो त्यों उसका रंग चढता जाता है। अन्त में एक घटना ऐसी आ बनी कि शेखजी को साहेब कबीर के सामने सर झुकाना पडा और हमेशे के लिये

मुक्तकण्ठ से 'पीरों के पीर' तथा 'गुरुओं के गुरु' कहना और मानना पड़ा।

निष्पक्षभाव से सुनो तो Rev F E Keay, D Litt of London (लन्दन के साहित्याचार्य माननीय एफ० ई० का य साहेब अपने Kabir & His Followers (कबीर एन्ड हिज फालोअर्स) नामक पुस्तक में लिखते हैं —

"One day, when Kabir was walking on the banks of the Ganges with a certain Shaikh Taqqui the corpse of a child was seen floating by, Shaikh Taqqui challenged Kabir to raise it to life This he did, and taking it home he adopted it as his own son The Shaikh said, 'you have indeed shown great perfection (Kamal)' So the boy was named Kamal The story of the coming of Kamali is similar According to some accounts she was a child who had died in the house of a neighbour and Kabir raised her to life according to others, the daughter of Shaikh Taqqui, who had already been eight days in the grave"

अर्थात् एक दिन जब गंगा की तट पर साहेब कबीर शेखतकी के साथ टहल रहे थे एक बच्चे की लाश पानी में बहती हुई नजदीक नजर आई। शेखतकी ने साहेब कबीर को मुर्दे को जिन्दा कर देने को ललकारा। यह साहेब ने कर दिखाया, और बच्चे को घर पर ले जाकर अपना पुत्र बना लिया। इस पर शेख ने कहा, "आपने सचमुच में बड़ा कमाल (चमत्कार) दिखाई।" बस, उस बच्चे का नाम 'कमाल' रखा गया। इसी प्रकार 'कमाली' की भी कथा है।

कोई कोई कहते हैं कि साहब कबीर ने अपने किसी पडोसी की मरी लडकी को जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली और किसी के मतानुसार वह शखतकी हा की लडकी थी जो आठ दिन तक कबर म मरी पडी रही था। और साहेब ने उसको जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली।"

सभव है कि पिछली ही बात ठीक हो। वह शखतकी ही की लडकी होगी। क्योंकि, इन घटनाओं के पश्चात् शखतकी शाह साहेब कबीर का परम प्रशसक तथा भावुक भक्त बन गया। ठीक है—

"सच्चाई या हरेक आलम में शाहरा हो ही जाता है।
जो इसको देख पाता है वा शेदा हो ही जाता है॥"

मुर्दे को जिन्दा होना अथवा करना कोई अत्यन्त असम्भव बात नहीं है। जिसने इस सम्बध म मृत्यु-घटनाओं को विचार-पूर्वक अवलोकन किया है या प्रमाणिक पुरुषों से सुना है, अथवा जिसने शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy and Physiology) को ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया है, अथवा जिसने प्रत्याहार (Self-abstraction or self withdrawl) का थोडा भी अभ्यास किया है, उसको सभव अथवा असभव की बातें समय में आ सकी हैं। विचार-शून्य निरक्षर भट्टाचार्य, दुराग्रही, मूढ अथवा अनभ्यासी कदापि नहीं समझ सकता। अभी थोडे ही दिन की बात है कि बगाल के एक वैद्यराज की लडकी पन्द्रह सोलह घटा (Fifteen or Sixteen hours) तक मरी रही डाक्टर वैद्य सभों ने मृत बतलाया। लोग स्मशान भूमि पर ले गये। उसके मृत शरीर पर जलाने के लिये जब लकडी रखी गई तब उसने आखें खोलीं। कुछ लोग भयभीत होकर भाग गये। उसका पतिने डाक्टर को बोलाया। वह औषध आदि के प्रयोग से जी उठा और

अभी तक जीवित है। मेरे जानते में भी नौरंगी लाल पाटीदार की भी इसी प्रकार की दशा हुई थी। ऐसी अनेक घटनायें (Cases) होती हैं। जो विचारता है उसको कुछ पता चलता है। शरीर-शास्त्र (Physiology) के अनुसार मृत्यु की दो अवस्थायें (stages) हैं। एक का नाम व्यापारिक-मृत्यु (Somatic or Constitutional death) और दूसरे का नाम आण्विक-मृत्यु (molecular or cellular death) है। पहली अवस्था में प्राणी के बाहिरी व्यापार नष्ट-प्रायः हो जाते हैं और वह सर्वथा निश्चेष्ट बन जाता है। फेफसे तथा हृदय (Lungs and heart) की गति यन्त्रो (Stethoscope and pulsimeter) से भी नहीं मालूम पड़ती। पर पारदर्शी-प्रकाश (x rays) आदि के प्रयोग से हाल में एक हठयोगी पर अनुभव किया गया है कि इनमें अत्यन्त सूक्ष्म कंपन (Very slight vibrations) बने रहते हैं। दूसरी अवस्था में शरीर के अंग-प्रत्यंग के छोटे से छोटे अंश (Cells) जीवन-हीन हो जाते हैं और उनसे दुर्गंध (Putrifaction) निकलना आरम्भ हो जाता है। पहली अवस्था में कोई प्राणी अथवा मनुष्य चाहे कितने ही दिन पड़ा रहे फिर से जीवित हो सक्ता है। दूसरी अवस्था में कदापि नहीं। पहली अवस्था कभी कभी रोग के प्रभाव से अथवा साप आदि विषैले जन्तु के काटने से भी उपस्थित हो जाती है। इस अवस्था में पड़े मनुष्य को औषध अथवा आत्म-विद्युत् (Personal Magnetism) के प्रभाव से पुनः जीवित किया जा सकता है। इसी अवस्था में पड़े कमाल तथा कमाली को साहेब कबीर ने अपने आत्म-विद्युत् की धारा देकर, उनमें प्रसुप्त तथा प्रच्छन्न चेतना (Dormant and covered consciousness) को जागृत कर, पुनः जीवित किया। अपना पुत्र तथा पुत्री बनाई। इसमें शंका वा संदेह

घरने की कोई जगह नहीं है। साहेब में उच्च से उच्च कोटि का आत्म-बल विद्यमान था, इसका परिचय तो अनेकानक स्थानों में मिल चुका है। साधारण मनुष्यों के लिये ऐसा करना असमव है। साहेब के लिये यह सहज था। पर अभ्यासी इस मृत-प्राय अवस्था में अपने आपको स्वेच्छापूर्वक (Voluntarily bringing the state of human hybernation or yogic trance) ला सकता है और आपही आप पुन जीवित हो सकता है। जिसको इस विषय में अधिक जानने का इच्छा हो उसको उचित है कि आध्यात्मिक-अन्वेषणा (Psychological Researches) असमय-अन्त्येष्टि (Premature Burial) नाड़ी विचार (Pulsation), हठ-योग (yoga of self-abstraction or withdrawal) सम्बन्धी प्रमाणिक ग्रन्थों को अध्ययन कर अथवा अनुभवी का सग करें। विस्तार क भय म केवल दो प्रमाणिक उदाहरण एक माननीय वैज्ञानिक ग्रन्थ से दिये जाते हैं।

' In Delhi 1889, Dr H E Sen and his brother, Mr Chandra Sen Municipal Secretary, examined a well-known yogi devotee in a self-induced trance in which he appears to have been sealed cross-legged in Budha fashion They found that the pulse had ceased to beat altogether nor could the slightest heart-beat be detected by the stethescope The yogi was placed in a small sub-terraneous masonry cell and the door locked and sealed by the City-Magistrate At the expiration of thirtee-three days the cell was opened and the devotee found just where he was placed but with a death like appearance,

the limbs having become stiff as in rigor mortis. He was brought from the vault and the mouth rubbed with honey and milk and the body massaged with oil. In the evening manifestations of life returned. He was fed with a spoonful of milk, and in three days was able to eat his normal diet, and was alive seven years after."

(Lyon's Medical Jurisprudence for India, by L. A. Waddell, C. B., C. I. E. LL. D., M. B., F. L. S., Seventh Edition 1921, page 79).

"We all three felt the pulse of colonel Townshend first; it was distinct though small and thready, and his heart had its usual beating. He composed himself on his back, and lay in a still posture some time; which I held his right hand, Dr. Baynard laid his hand on his heart, and Mr. Skrine, held a clean looking-glass to his mouth. I found his pulse sink gradually, till at last I could not feel any by the most exact and nice touch. Dr Baynard could not feel the least motion in his heart, nor Mr. Skrine discern the least soil of breath on the bright mirror he held to his mouth Then each of us by turns examined his arm, heart and breath, but could not by the nicest scrutiny discover the least symptom of life in him. This continued about half an hour. As we were going away (thinking him dead),

we observed some motion about the body, and upon examination found his pulse and the motion of his heart gradually returning; he began to breath gently and speak softly."

(The said Medical Jurisprudence for India, page 81).

" दिल्ली में डाक्टर एच. सी. सेन और उनके भाई, महाराय चन्द्रसेन, म्युनीसीपल (सुपराई) मंत्री ने एक पद्मासन लगाये समाधिस्थ योगी की परीक्षा १८८९ ई. में की। उन लोगों ने देखा कि नाड़ी चलनी बिल्कुल बन्द हो गई और फेफसे तथा दिल की चाल जानने के यंत्र से भी दिल का जरासा भी धड़कना नहीं मालूम पड़ने लगा। योगी को एक पक्के तहखाने में रख दिया गया और नगर के मेजिस्ट्रेट साहेब ने दरवाजे बन्द करा दिये और ताले में मोहर लगा दिये। तेंतीस (३३) दिन के व्यतीत होने के उपरान्त यह तहखाना खोला गया और वह योगी वहीं पर विराजमान था जहाँ पर रखा गया था, परन्तु मुख पर मुर्दनी छाई हुई थी और हाथ पैर मृत पुरुष की भांति कड़े होगये थे। उसको तहखाने से बाहर लाया गया, मुख में दूध-और मद्य मले गये, और शरीर में तेल मालिश किया गया। सायंकाल में जीवन के चिन्ह लौटने दीख पड़े। उसको खाने के लिये एक चमचा दूध दिया गया, और वह तीन दिन में अपना नैत्यिक भोजन करने के योग्य हो गया। तदुपरान्त वह सात वर्ष तक जीवित रहा।"

(लॉयन-कृत मेडिकल जुरिसप्रुडेन्स १९२१, पृ. ७९)

" हम लोग तीनों ने कर्नल टौनशेन्ट की नाड़ी देखी; लघु और क्षीण होने पर भी, वह प्रकट थी, और उनका हृदय यथारीति

धड़क रहा था। वह अपने पीठ के बल पड़ गये, और थोड़ी देर तक बिलकुल चुपचाप लेटे रहे; मैंने उनका दहना हांथ धरा, डाक्टर बेनार्ड ने उनके हृदय-स्थल पर हांथ धरा, और महाशय स्काइन ने उनके मुख के पास एक स्वच्छ दर्पण (आरसी) रखा। मुझे उनकी नाड़ी शनैः शनैः डूबती मालूम पडी, अन्त में बहुत यत्न करने पर भी, उनकी नाडी बिलकुल ही नहीं मालूम पडने लगी। डा० बेनर्ड को उनके दिल की धडकन जरा भी नहीं मालूम पडने लगी, और न म० स्काइन ही को उनके मुख के पास रखे निर्मल दर्पण पर श्वास का दूषित धब्बा ही मालूम पडा। तब हम लोगों ने बारावारी उनके बांह, दिल और श्वास की परीक्षा की, परन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म परीक्षा करने पर भी, उनमें जीवन का जरा सा भी चिन्ह नहीं पाया। यह अवस्था आधे घंटे तक वर्तमान रही। ज्योंहि हम लोग उठे (यह जानकर कि वह मर गये), उनके शरीर पर कुछ गति दीख पडी, और परीक्षा करने पर पता चला कि उनकी नाडी तथा दिल की धडकन आहिस्ते आहिस्ते लौट रही है; वह धीरे धीरे श्वास लेने लगे और बोलने भी लगे।

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ८१)

उक्त कथनों का साराश यह निकला कि मनुष्य रोग या विष के प्रभाव से तथा आत्म-संकोचन-प्रक्रिया (Process of self-withdrawal) से मृतवत बन जा सकता है। पहले दोनों का प्रभाव समय पाकर आपही आप, अथवा औषध के प्रयोग से नष्ट हो सकता है। अथवा जैसा के साहेब कबीर ने कमाल कमाली को आत्म-विद्युत (Personal magnetism) द्वारा पुनः जीवित किया, वैसा किया जा सकता है। यह कोई असंभव बात नहीं है। पर ऐसा

आत्म-निष्ठुत् अपने में उपस्थित चाहिये। अन्यथा केवल ढोंग से काम नहीं चलेगा। अच्छा, अब लोई धोई की बात बाकी रही।

कुछ लोगों की ऐसी मति है कि लोई नाम की एक साधु-सेवी तथा धोई नाम की एक वेश्या दोनों की दोनों साहेब कबीर की स्त्रियां थीं और लोई से कमाल वो कमाली नामी सन्तान पैदा हुई। पर विचार कर देखने से मालूम होगा कि जैसे साहेब कबीर, कमाल और कमाली के धर्मपिता (Foster-father) थे, वैसे ही उक्त दोनों स्त्रियों के धर्म-गुरु तथा धर्मोद्धारक थे। पर जो लोग द्वेषाग्नि से पीड़ित हैं, अथवा विषय-वायु के झकोड़े से क्षण क्षण में क्षत वो क्षुब्ध, नष्ट वो भ्रष्ट होते रहते हैं, जो ऊपर में रामस्नेही और भीतर में राडस्नेही के मिक्सचर (Mixture) बने हैं, वे क्या समझें कि साहेब कबीर किस पद पर आरूढ थे, किस देश के वासी थे, किस धाम में उनका मोकाम रहता था। किसीने सच कहा है "पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः।" साहेब को समझने के लिये साधना की आवश्यकता है, और किताबों से तथा दन्तकथाओं से काम नहीं चलेगा। सुनो, जो एक माननीय अंगरेज ग्रन्थकार (An Englishman writer) लिखते हैं:—

"When Kabir was about thirty years of age, he was once wandering in the forest and reached the hut of a certain sadhu (Saint), where he rested He found there a girl of about twenty years of age who asked him who he was. He replied, 'Kabir'. She then asked his caste, to which question again he replied 'Kabir'. She asked his order, and again

received the answer, 'Kabir'. She then asked his name, and was told it was, 'Kabir' The girl was much surprised and said she had seen many sadhus but never one who answered in this fashion, Kabir replied that all others had name and caste and order, but he had none. Meanwhile six sadhus had arrived, and the girl brought seven cups of milk and set one before each. Kabir did not drink his milk, but said he was keeping it for another sadhu who was on the further bank of the Ganges. Before long, to the astonishment of all, this sadhu appeared. In further conversation, it came out that once a sadhu had lived in this hut, who one day saw something in the middle of the Ganges wrapped in a woollen cloth and carried along by the stream, on getting hold of it he found a girl-child, whom he brought to his hut and reared with milk. Because he had found her wrapped in woollen cloth (Loi) he named her Loi. On his death-bed he had told her that one day a saint would come and be her guide. The end of it was that Loi became a disciple of Kabir and followed him to Benares (Kashi)."

अर्थात् "जब साहेब कबीर की आयु लगभग तीस (३०) वर्ष की थी, वह जंगलों में घूमते हुए एक साधु की कुटि पर पहुंचे और वहां विश्राम किया। वहां पर प्रायः बीस (२०) वर्ष की एक लड़की रहती थी, जिसने पूछा, " आप कौन हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "कबीर" उसने

तब उनकी जाति पूछी, जिसके उत्तर में उन्होंने पुनः 'वही कहा " कबीर " उसने उनका सम्प्रदाय पूछा और उसको फिर वही जवाब मिला " कबीर " तब उसने उनका नाम पूछा, जिसका उत्तर भी वही मिला, " कबीर " । वह लड़की अत्यन्त चकित हुई और बोल उठी, " मैंने अनेक साधू देखे, परन्तु किसीने इस प्रकार से उत्तर नहीं दिये ।' इस पर साहेब कबीर ने कहा, 'अन्य साधुओं के नाम, जाति तथा सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु मुझको ये सब कुछ नहीं ।' इसी बीच में छ (६) साधु और पहुंचे और उस लड़की ने सात दूध के प्याले लाकर प्रत्येक के सामने एक एक रख दिया । साहेब कबीर ने अपने भाग का दूध नहीं पिया और कहा कि, इसे दूसरे साधू (जो गंगा की परली तट पर से इधर को आ रहा है) के लिये रख छोड़ा है । थोड़ि ही देर में वह साधु आ पहुंचा और सब के सब विस्मित हो गये । आगे बात चलने पर मालूम हुआ कि उक्त कुटि में पहले एक साधु रहा करते थे, जिन्होंने एक दिन गंगा की बीच धारा में बहती हुई तथा ऊनके कपड़े में लपेटी हुई किसी चीज़ को देखा । जब उन्होंने उसको बाहर निकाला, तो, देखा कि एक बच्ची है । उसको अपनी कुटि पर ले आये और दूध से पालन किया । क्यों कि वह ऊनी वस्त्र (लोई) में लपेटी हुई पाई गई थी, अतः उन्होंने उसका नाम लोई धरा । जब वह मृत्यु-शय्या पर हुए तब उन्होंने लड़की (लोई) को कहा, ' किसी दिन एक संत यहां आवेंगे और वही तुम्हारा मार्ग-दर्शक (गुरु) होंगे ' निदान वह लोई साहेब कबीर की शिष्या बनी और उनके साथ बनारस (काशी) चली आई ।"

साहेब कबीर की नीची लिखी जीवन-घटना को लेकर जगत्-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने बंगला भाषा में ' मालिक का

दान ' नाम की एक कविता करी है। उसका भावानुवाद "कल्याण' मासिक-पत्र के भक्तांक में प्रकाशित हुआ है। कहीं कहीं मूल को उद्धृत करते हुए उसीके आधार पर लिखा जाता है कि:—

जब साहेब कबीर का प्रभाव लोगों पर पूरे तौर से पडने लगा। उनकी ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। लोगों में उनकी पूजा चलने लगी और नामस्मरण भी होने लगा, जैसा कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है:—

फैल गई यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कबीर।
नर नारी लाखोंने आकर, घेरी उनकी वन्य-कुटीर॥
कोई कहता, ' मंत्र फूंक कर मेरा रोग दूर कर दो' ।
वांझ पुत्र के लिये बिलखती कहती ' संत गोद भर दो॥
कोई कहता 'इन आंखों से देव-शक्ति कुछ दिखलाओ।
जग में जग निर्माता की सत्ता प्रमाण कर समझाओ॥

जब छोटे बडे सभों में उनका मान-सत्कार बढने लगा इनके दर्शन के लिये लोग तरसने लगे। उनकी चरण-धूलि लोग अपने मस्तक पर धरने लगे, तब द्वेषाग्नि से वंचक ब्राह्मण, गुन्डे पन्डे, पाखंडी पुजारी, धर्मध्वजी मठधारी, साधु टीकाधारी, ब्रह्मचारी वेषधारी, अभिमानी पोथाधारी आदि लोग, साहेब कबीर की फैलती ख्याति को सहन न कर, दिल ही दिल खूब जलने लगे और अंत में एक ऐसा षटयन्त्र रचा कि जिससे लोगों का ध्यान उनसे खिंच जाय, उनका प्रभाव का तारतम्य टूट जाय और दुनिया में उनकी नेकनामी की जगह बदनामी फैल जाय, जैसा कि कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोरने उक्त कविता में लिखा है:—

" कहने लगे क्रोध भारी से भर नगरी के ब्राह्मण सब।
पूरे चारों चरण हुये कलियुग के पाप छा गये अब॥

चरण-धूलि के लिये. जुलाहे की सारी दुनिया मरती।
अब प्रतिहार नहीं होगा तो डूब जायगी सब धरती॥
कर सबने षडयन्त्र एक कुलटा स्त्री को तैयार किया।
रुपयों मे राजी कर उसको गुपचुप सब सिखलाय दिया॥''

मगर मनुष्य धारता है कुछ और होता है कुछ। क्योंकि,
" Man proposes and God disposes "

" हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ "।

अब कपट-प्रबन्ध की बात सुनो। धूर्त तथा द्वेषाग्नि मे पीडित उक्त लोगों ने एक बाजारी वेश्या (जो लोक परलोक के भय को तिलाञ्जलि देकर खुल्लमखुल्ला व्यभिचारवृत्ति में रत थी) को कुछ रुपये का लोभ देकर साहब कबीर की प्रतिष्ठा भंग करने पर उतारू किया। उसको सिखा पढा कर ठीक किया कि जब साहब कबीर कुछ कार्य्यवश बाजार मे आवें तो उनका पल्ला पकडकर, अपना पुराना सम्बन्ध का ढोंग रचकर, खूब रोना धोना, गाली गलौज करना और खाना-खोराक (Maintenance) के लिये दावा करना। फिर तो, हमलोग थपडिया लगावेंगे, ढोंगी कहकर उनको पुकारेंगे, उनको पाखंडी कहकर धुत्कारेंगे और भडतपस्वी की बात फैला फैला कर लोगों में मान-हानि करायेंगे। वेश्या को तो पैसा चाहिये, फिर तो जो चाहो करो या कराओ। बस, उस वेश्या ने एक दिन बीच बाज़ार में साहेब कबीर को पकड ही लिया। और वैसी ही बेइज़्ज़ती करने लगी जैसा कि उसको द्वेषी कपटी ब्राह्मणों ने सिखलाया पढ़ाया था। पर साहब ये सब को दृढ समता के साथ सहर्ष सहते रहे और अन्त में,

"'कबीर बोले, दोषी हूं मैं, मेरे साथ चलो घर पर।
घर में अनाज रहते क्यों, भूखी मरती, फिरती दर दर ॥"

उनकी धर्मपरायणता, सहनशीलता, समभाव, क्षमाभाव, नेक बर्ताव, प्रेमपुञ्जता, करुणाकुञ्जता आदि को देख परेख कर वेश्या
"रोकर बोल उठी वह, मनमें उपजा भय-लज्जा-प रताप।
मैंने पाप किया लालचवश, होगा मरण साधु के शाप ॥"

पर साहब ने उसको सान्त्वना दी और
"कहने लगे कबीर, जननि! मत डर, कुछ दोष नहीं तेरा।
तू निन्दा-अपमान रूप मम्मर-भूषण लाई मेरा ॥"

फिर तो साहेब ने उस शरणागत कुल्टा को अपनी ज्ञानाग्नि में उलटा पुल्टा (सेक) कर, पाप-पंक में मग्न गणिका को साफ सुथरा शुद्ध "घोई" (W hed) रूप में परिवर्तन कर कामपरायण से रामपरायण, हरिद्रोही से हरिदासी बना दी, जैसा कि उक्त जगत्-विख्यात कविसम्राट् रवीन्द्रनाथ टागोर ने अपनी निम्न कविता में स्पष्टतया दर्शाया है—
"दूर किया विकार मनका सब, उसको दिया ज्ञान का दान।
मधुर कंठ में भरा मनोहर उसके हरीनाम गुण-गान ॥"

सत् गुरु को नीजन सौंपने का फल देखा न? पापपंक को सतगुरु साहब कबीर ने धो धो कर स्वच्छ धर्मधुरन्धर बना दिया, मनमलीन को ब्रह्मलीन बना दिया, विष्टारूपी विषय में लग्न काक को हरिनाम के गुणगान में मग्न कटकोकिल बना दिया। द्वापर-त्रेता की बात-विगत्य, जीवन्तों की-दूर रही, कल्युग में सतयुग ला दिया। क्योंकि,

साहेब से सब होत है, बन्दे से कछु नांहि।
राई सों परबत करे, परबत राई मांहि ॥

उक्त दोनों घटनाओं से साफ विदित होता है कि साहेब कबीर ने एक को जननी कह कर पुकारी और दूसरी को पुत्रीवत 'शिष्या'। फिर तीसरी तरह के सम्बन्ध जोड़ने की जगह कहां रही ? स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु परमहंस रामकृष्णजी ने अपनी ब्याही स्त्री को मा (जननी) कह कर पुकारी और यही सम्बन्ध आजीवन निबाहते रहे। पर जो स्वयं पवित्र नहीं हैं, और न किसी पवित्र महात्मा के दर्शन ही किये है, जो विषयवासनाओं से कभी थोड़ा भी ऊपर नहीं उठे हैं, जो घर में रहते हुये वीतराग बनने की स्पृहा तक नहीं करते, जो संसर्गज भोग ही को सब कुछ जानते तथा मानते हैं, जो कनक और कामिनी पर दिन-रात गृद्ध-दृष्टि किये रहते हैं, जो कैवल्य आनन्द (Unconditional Delight) की झलक भी नहीं देखे हैं, जो गीता के इस वचन " आत्मनि एव आत्मना तुष्ट " अथवा साहेब की इस वाणी " योगी आप आप में बूझे " (Self-existent bliss) को विचार-पूर्वक न पढ़ते ही है और न अनुभव में उतारने का प्रयास अथवा साधन ही करते हैं, जो कभी भी आत्मप्रसाद नहीं चखे और सदैव दूसरों के जूठे खाते रहे हैं। जो सब से सुन्दर आत्मस्वरूप (The most beautiful unconditional soul) तथा आत्म-आनन्द (Self-existent delight) से अनभिज्ञ रह कर दूसरी जगह सुन्दरताई तथा आनन्द के लिये मारे मारे फिरते हैं, वे साहेब कबीर को उक्त स्त्रियों के साथ रहते हुए भी माता तथा पुत्री के सम्बन्ध रखने की बात " पद्मपत्रं इवाम्भसा " (कमलपत्र की तरह) समझ नहीं सकते और न उनके तथा अन्य द्वेषी वो दुराग्रहियों के लिये उक्त प्रामाणिक घटनायें उपस्थित ही की गई हैं। क्योंकि,

"न वेत्ति, यो यस्य गुणप्रकर्षम् । स तं सदा निन्दति नात्र संशयः

" जो दूसरे के प्रकर्ष तथा उच्च गुण को नहीं जानता है, वह उसकी निन्दा ही करता है, इसमें कुछ संदेह की बात नहीं है। "

॥ खंड–पांचवां ॥

" यथोर्णनाभि सृजते गृह्नते च । " (श्रुति).

" As the spider produces the thread and absorbs it again

" जैसे मकरा तन्तु को अपने भीतर से बाहर निकालता है और फिर अपने भीतर समेट लेता है

जो मनुष्य, प्रकृति तथा पुरुष को पूरी पूरी पहचान चुका है, जो दोनों के सम्बन्ध का केवल किताबी ज्ञान नहीं, पर अपने अनुभव में उतार चुका है, जो अपने अक्षर रूप को क्षर रूप में सचेतन (Consciously) लाता रहता है, जो अपने अचल सत् स्वरूप (Eternal self) में प्रतिष्ठित रहता हुआ भी असत् अथवा चल रूपों को (Mutable surface personalities) जान बूझ कर धारण करता रहता है; जो सत्–लोक से भूलोक पर स्वेच्छा से आता जाता रहता है; जो कुकर्म, अकर्म अथवा सुकर्म के बन्धनों से घसीटा जाकर भूलोक में जल्धार में पड़ा तृण के ऐसा मारा मारा फिरता (Like a helpless straw drifting in the current) नहीं है; जो ज्ञानाग्नि में कर्म–पाशों को भस्मीभूत कर चुका है, जो शरीर रूपी गाड़ी को निकालना समेटना, बनाना बिगाड़ना, चलाना ठहराना आदि सब कुछ भली भांति जानता है; जो अदृश्य वायवीय या वाष्प (In visible gaseous or ethereal stage) स्थिति से दृश्य तरल अथवा स्थूल (Visible Liquid or solid stage) में घन–क्रिया से (By Process of condensation) और दृश्य तरल अथवा स्थूल को अदृश्य वायवीय स्थिति में (By Process of evaporation

etc) लगा रहता है, वह कारण और सूक्ष्म शरीर को स्थूल में तथा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर में ले जाने को अवश्य समर्थ हैं। जो मकरा (Spider करोलिया) अपने भीतर से तन्तुओं को बाहर निकाल कर नाना प्रकार की रचनाओं को रचता है, वह मकरा उन तन्तुओं को भीतर समेट कर सब रचनाओं का समाप्त कर देने में भी समर्थ है। बस, इसी प्रकार साहब कबीर ने अपने स्थूल शरीर को फूल द्वारा प्रकट कर फिर फूल ही द्वारा सूक्ष्म में गुप्त भी कर दिया, इसमें कोई सन्देह की बात ही नहीं है।

इसके अतिरिक्त साहेब कबीर के दोनों प्रकार के शिष्य-वर्ग और सेवक-जन हिन्दू तथा मुसलमान-थे। एक उनको सद्गुरु मानते थे, तो दूसरा पीरन को पीर। दोनों ही को पूजा के अन्तिम चिन्ह कुछ न कुछ मिलना चाहिये था। ज्योंही उन्होंने अपना स्थूल शरीर १५७५ सम्वत के मार्गसर मास के शुक्ल पक्ष की ११ वीं तिथि को सगलन करने का विचार प्रकट किया और उस निमित्त गोरखपुर के पास बस्ती जिला में मगहर ग्राम की ओर 'काशी-मरण स्वर्गआरोहण' की अन्ध-परम्परा झूठी रूढ़ी को भगकरणार्थ

"का कासी का मगहर ऊसर, हृदय राम बस मोरा।
जो कासी तन तजइ कबीरा, रामहिं कवन निहोरा॥"
(सा० क० ग्रजक शब्द १०३.)

प्रस्थान किया त्यों ही दोनों दलों के शिष्य-सेवक-वर्ग हजारों की संख्या में इकट्ठा होने लगे। उनमें राजा वीरसिंह बाघेला और नवाब बिजलीखां पठान प्रमुख थे। राजा जो हिंदू-रीति के अनुसार दाह-क्रिया करने का और नवाबजी मुसलमान रीति से दफन करने का आग्रह साहेब से प्रमोत्कर्षरूप-में करने लगे। दोनों में झगड़ने की

नैयारी सी भी मालूम पड़नें लगी। फिर साहेब ने झगडा मिटाने के लिये दोनों वर्गों के शिष्य-सेवकों को बाहर खडे रहने को कहा और आप स्वयं एक कमरे मे जाकर, चादर बिछान कर सो गये, जैसा के एक साहित्याचार्य अंग्रेज (An Englishman) लिखता है —

"After this, Kabir lay down and spread the sheets over himself. He then told the people to close the door and leave him inside, which they did. When the door was closed, a sound came from the room; on hearing which all who were present were deeply moved, and shouted Jayjaykar (a cry of rejoicing and victory)! because their guru had gone to the Satya-Loka"

"When the room was opened, nothing was to be seen except two sheets and some flowers in them. One sheet and half the flowers, Raja Bir Sinha took, and the other sheet and the remainder of the flowers, were taken by Nawab Bijli Khan. The body of Kabir was not seen. In fact, his followers say he never had a body but was only a manifestation of glory. Raja Bir Sinha took his portion to Benares, where he cremated it and buried the ashes at what is now the Kabir Chaura. Nawab Bijli Khan buried his portion at Maghar. Both Hindus and Muhammadans afterwards built a Shrine at Maghar"

" तत् पश्चात् साहब कबीर लेट गये और अपने ऊपर चादरों को तान लिये। तब उन्होंने अपने शिष्य-सेवक गों को द्वार बन्द करने तथा उनको भीतर एकत्र रहने देने की आज्ञा दी। उन लोगोंने वैसा ही किया। जब द्वार बन्द हो गया, कमरे में से एक आवाज़ आई, जिसको सुनकर उपस्थित जनता अत्यन्त विचलित हुई और जयजयकार की ध्वनि उठाई, क्योंकि उनके गुरु सत्यलोक को पधार गये।"

" जब द्वार खोला गया, सिवाय दो चादरों तथा उनमें कुछ फूलों के और कुछ न मिला। राजा बीरसिंह ने एक चादर और फूलों का आधा भाग ले लिये और नवाब बिजलीखां ने दूसरी चादर तथा बचे फूलों को ले लिया। साहेब कबीर का शरीर अदृश्य हो गया। सचमुच में, उनको शरीर न था, केवल एक ज्योति-का प्राकट्य था जैसा कि उनके अनुयायी कहते हैं। राजा बीरसिंह ने अपने भाग को बनारस ले जाकर दहन-क्रिया की और उसकी राख एक जगह गाड़ी जो कबीर चौरा के नाम से आजकाल प्रसिद्ध है। नवाब बिजलीखां ने अपने भाग को मगहर में गाड़ दिया। तदुपरान्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के दोनों, मगहर में मंदिर बनाये।"

जिसके आदि में पुष्प उसके अन्त में पुष्प, जिसके अवरोहण में फल उसके आरोहण में फल, जिसके आविर्भाव में सुगन्ध उसके तिरोभाव में सुगन्ध, जिसके आगमन में सुवास उसके अन्तर्धान में सुवास क्यों न हो? भक्त मीरा ने मैले तन को भगवत् प्रेम में मग्न करके शुद्ध किया और अंत में सदेह भगवान में लीन होगई, राजा परिक्षित तथा सुखदे-

ज्ञानाग्नि से शरीर को निमल कर सदेह स्वर्गारोहण किये, पर साहेब कबीर तो ज्योतिमय उतरे थो ज्योति में लीन हो गये, इसमें शंका तथा अकचकाने की कौन सी बात है ? कैसा ठीक कहा है !

झीनी झीनी चदरिया बीनी ।

साहेब कबीर जतन से ओढ़ो, जमके नस धरदीनी चदरिया। झी०

कैसा निर्मल, पूर्ण तथा सचेतन देहावसान (Pure, perfect and conscious withdrawal) है ! ज्योतिमय शरीर (Spiritualised body) का गुण महान है ! ! अन्त अन्त तक सद् शिक्षण का विधान है ! ! !

" All is well that ends well, "

" अन्त भले का भला । "

॥ खंड–छट्ठा ॥

" नहि सत्यात् परो धर्मः । '
" सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं।"

साहेब कबीर के जन्म-जाति-जीवन के थोड़ा कुछ वृत्तान्त के उपरान्त उनके सत्-उपदेशों का दिग्दर्शन कराना अब समुचित प्रतीत होता है, क्यों कि, किसी व्यक्ति के आचार पर उसका विचार निर्भर रहता है। करनी और कथनी (Theory and practice) में घनिष्ठ सम्बन्ध है । महात्माओं में दोनों में एकता रहती है। और दुरात्माओं म दोनों में विपरीतता रहती है । एक जो कहेगा सो करेगा। दूसरा कहेगा कुछ और करेगा कुछ दूसरा ही। सदाचारी के वचन हृदय से निकलते हैं, अत सुननेवाले के हृदय तक पहुँचते हैं, और ढोंगी या मिथ्याचारी (Hypocrites) के वचन केवल मुख से निकलते हैं अत सुननेवाले के कान ही तक पहुँच कर रह जाते हैं। जो वाणी रूप बाण (Arrow), हृदयकी तांत (Cord) पर खींच कर छोड़ा जाता है, वही दूसरे के हृदय तक को खींच लेता है। मीरा के हृदय से निकला हुआ अनन्य प्रेम तथा समर्पण के भजन—" मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई–का प्रभाव हृदय पट पर विलक्षण ही पड़ता है। और उसी भजन को दूसरे के मुख से अथवा नाटक या सिनेमा (Drama or Cinema) के नकली मीरा के मुख मे सुनने से कुछ प्रभाव ही नहीं होता। जो अपनी वाणी से आप नहीं पसीजता, वह दूसरे को कैसे पसीजा सकता है ? जिसकी वाणी भावान्वित होकर नहीं निकलती, वह दूसरों में उचित भाव कैसे उत्पन्न कर सकेगी ? जो अपना

कहा आप ही नहीं मानता, जो अपना उपदेश आप ही नहीं सुनता तथा आचरता, वह दूसरे को क्या कहे और क्या सुनावे ? उसको अधिकार ही क्या है कि दूसरे को उपदेश करे ? जो सत्य को आचरता नहीं, उसको अधिकार ही नहीं है कि वह सत्य का उपदेश करे। सत्पुरुष ही सत्य के उपदेश करने की योग्यता तथा अधिकार रखते हैं, अन्यों के लिये केवल अनधिकार-चेष्टा है तथा विडम्बना-मात्र है। सत्-पुरुष ही को सत्य सदैव प्यारी रहती है। यही कारण है कि साहेब कबीर को जितना सत् शब्द सत् तत्व प्यारा है उतना कोई पद-पदार्थ नहीं।

सत्-नाम, सत्-धाम, सत्-पुरुष, सत्य-लोक, सत्-गुरु, सत्-शब्द, सार-शब्द, सत्-सग, सत्-विचार आदि उनकी वाणी में बहुधा पाये जाते हैं। सत् पर ही उनका सब कुछ आधार रखता है। सत्-नाम ही उनका बीज-मंत्र है। यथा,

> "सब मंत्रन का बीज है, सत्-नाम ततसार।
> जो को जन हिरदै धरै, सो जन उतरे पार॥
> कबीर मन निश्चल करो, सत्-नाम गुण गाय।
> निश्चल बिना न पाइये, कोटिन करो उपाय॥"

(देखो साखी-ग्रन्थ पृष्ठ १३२-१३३ संख्या १६०-१६६)

आत्मा अथवा परम-आत्मा के जितने सार्थक अथवा सगुण नाम हैं, उनमें सब से श्रेष्ठ 'सच्चिदानन्द' समझा गया है। यह बात ठीक है कि,

'अविगति की गति काहु न जानी। एक जीभ कित कहौं बखानी॥
जो मुख होय जीभ दस-लाखा। तो कोई आय महन्तो भाखा॥
(बीजक-रमैनी नम्बर १)

क्योंकि, जो आत्म–तत्त्व अथवा ब्रह्म–तत्त्व अनन्त है, उसके गुण भी अनन्त हैं, उसके नाम भी अनन्त अथवा असंख्य हैं, उसके वर्णन भी अनन्त हैं — 'नास्ति अंतो विस्तरस्य मे।' (गीता) अनन्त सान्त शब्दों के घेरे में कदापि नहीं आ सका। तथापि सत्, चित् और आनन्द मिलकर "सच्चिदानन्द" नाम उत्तम बोधक है, जैसा के "सच्चिदानन्दरूपोऽहं" तेजोबिन्दु उपनिषद् में आता है। इसमें भी सत् पहले आया है। अतः सत्–नाम सब से श्रेष्ठ है। वेदोपनिषद् में भी "तत् सत्" "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" आते हैं।

सत्–नाम की श्रेष्ठता मानते हुये भी यह लिखना अनुचित या अयुक्त नहीं होगा कि सत्, चित्, और आनंद एकही सत्ता (Existence) के तीन पहलू बाजू (Aspects) हैं। एक ही त्रिकोण के तीन भुजायें (Three sides of the one and the same triangle) हैं। एक ही प्रिज्म (Prism काच का तिपहला टुकड़ा) के तीन सतह (Surfaces) हैं। एक ही हीरा के तीन रुख (Three facets of the same diamond) हैं। एक ही सागर के तीन तरंगें (Three waves of the same ocean) हैं, जो ऊपर भिन्न भिन्न दिखाते पर भीतर मिले हैं। एक ही देव के तीन मस्तक हैं। इनमें किसको छोटा और किसको बड़ा, किसको श्रेष्ठ और किसको निकृष्ट कहा जाय। पर विचार कर देखने से मालूम होगा कि जहां सत् है वहां पर शुद्ध चेतना (Pure consciousness) है, और वहीं पर पवित्र आनंद (Unmixed or unadulterated bliss) है। चेतना से सत् को हटा दो, मूढ़ा अवस्था आ जायगी। पेड़ वृक्ष, पशु पक्षी, अनेक नर नारियों में चेतना तो विराजमान है, पर वे सत्य चेतना से विहीन होने ही से मूढ़ा (Sub-conscious or deluded)

अवस्था में पड़े हैं। इसी प्रकार आनंद से सत्य को अलग कर दो, फिर मिथ्या-आनन्द, आनन्द-आभास, क्षणिक सुख, दुःखान्वित-सुख (Stress of transitory satisfaction besieged with physical pain and emotional suffering and sometimes mental derangement) आन उपस्थित होंगे। जो सत्-पुरुष है वही सम्यक् चेतन है और यही सच्चा वो सहज सुखी है। इसलिये साहेब ने सत्-नाम को तत्व का भी सार बताया, सब मंत्रों का बीज फरमाया। इसीके गुण-गान तथा जाप से मन को निश्चल तथा शान्त करके मन-सागर से पार उतरने की शिक्षा प्रदान की। जाप से अभिप्राय केवल सत्-नाम सत्-नाम बहुत चिल्ला चिल्ला कर अथवा धीरे धीरे अथवा मन ही मन उच्चारण करने अथवा लेने का नहीं है। जैसा के पातञ्जल योग-सूत्र-तज्जपः तदर्थभावनम्—में बताया है कि नाम लेने के साथ साथ उसकी प्राप्ति की भावना लगी रहनी चाहिये। उक्त साखी में साहेब ने भी हृदय में धारण करने की शिक्षा दी है। सत्-नाम के जाप के साथ साथ सत्—प्राप्ति की भावना बनी रहनी चाहिये। सत्य को हृदय में धारन करने का ध्यान बंधा रहना चाहिये। सत्य को आत्म-सात् करने का लक्ष्य सदैव सामने रहना चाहिये। तब अंत में ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकता हो जाने से पुरुष सत्-पुरुष में परिवर्तन हो जाता है। हरदम सत्य चेतना में प्रतिष्ठित (Established in truth consciousness) सत्य-लोक का वास बन जाता है। सत्-धाम में पहुंच जाता है।

सत्-धाम अथवा सत्-लोक कोई स्थान विशेष का नाम नहीं है। यह आत्म-चेतना की अन्तिम अथवा उच्चतम अवस्था (The last or the highest stage of the soul's consciousness or

enlightenment) है। वस्तुत चेतना की दो ही अवस्थाय—सत् और असत्, अथवा शुद्ध और मिश्रित (Pure and mixed) —हैं। इसी मिश्रित अवस्था को भिन्न भिन्न भागों में और नामों में विभक्त किया गया है। कहीं पर ७ (६) भाग है, तो कहीं पर नौ। यदि कोई चाहे तो सौ (१००) भागों में भी विभक्त हो सकता है। वेद-पुराण में—भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक तपलोक और सातवां शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्यलोक है। ७ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन अवस्था मिलकर सप्तलोक (Seven planes of consciousness) के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहब के घर में—नासूत, मलकूत, जीबरूत, लाहूत, अचिन्त्यद्वीप, मोहद्वीप, ईच्छाद्वीप, औंकारद्वीप, सहजद्वीप और दसवां शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्-लोक धरे गये हैं। नौ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन-अवस्था मिलकर जीव के दस अवस्थायें (Ten stages of the soul's Enlightenment) बनती हैं। यदि दूसरा कोई चाहे तो इसी मिश्रित अवस्था को सौ भागों अथवा असंख्य भागों में विभक्त कर सकता है। घी, शुद्ध अवस्था में, एक ही तरह का है। अशुद्ध अवस्था (Adulterated condition) में अनेक अथवा असंख्य तरह से रह सकता है। सौ भाग में ९९ भाग घी और एक भाग तेल अथवा वनिटेबिल घी (Vegetable ghee) का मिश्रण (99 per cent ghee and one per cent vegetable ghee) तैयार हो सकता है। इसी प्रकार ९८ भाग घी और २ भाग तेल, ९७ भाग घी और ३ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनेकानेक मिश्रण बन सकते हैं। फिर हजार भाग में ९९९ भाग घी और १ भाग तेल, ९९८ भाग घी और २ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनेकानेक अलग अलग मिश्रण बन सकते हैं। नौ

बीज-गणित (Algebra) मे Permutation and combination (माथ-सगात) के अध्याय का पढ चुके हैं, वे समझ सकते हैं कि भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण असंख्य (Innumerable varieties of different adulterations) रूप में तैयार किये जा सकते हैं । तापमान-यन्त्र (Thermometer) में किसीने दहन और जमन अवस्था Boiling and Freezing points) के अन्तराय को १०० भाग (Centigrade thermometer) में और किसीने १८० (Fahrenheit thermometer) भाग में इसी अन्तराय को विभक्त किया है। यदि कोई चाहे तो इसे १००० अथवा ११८० भागों में भी बांट सकता है। अत मिश्रित चेतना के इन कल्पित विभागों के फेर में न पडना चाहिये। शुद्ध सत्य-चेतना को मदैव लक्ष्य में रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिये।

पर एक मत अथवा सम्प्रदाय (A sect) ऐसा निकाला गया है,,जो सत्य-लोक के भी ऊपर दो डिग्री (Degree) और-अनामी तथा राधा-सोआमी-धाम मानता है। भाइ, सत्य के ऊपर अथवा नीचे दोनों असत्य हैं। आठ दूना सोलह ($8 \times 2 = 16$) एक सत्य है। इससे कोई ऊपर आठ दूना १७,१८,१९ इत्यादि अथवा इससे नीचे १५,१४,१३ इत्यादि बताये, तो वे सब के सब असत्य हैं। किसी फल की पक्व (Ripe) अवस्था एक होती है। उस अवस्था के नीचे कच्ची और ऊपर सडी (Raw or over-ripe) अवस्थायें होती हैं। मनुष्य शरीर का नियमित ताप (Normal temperature) पोने निन्नाने डिग्री के करीब रहता है। उसके दो, तीन...डिग्री ऊपर अथवा दो, तीन......डिग्री नीचे, सब के सब अशुद्ध तथा रुग्ण अवस्थायें (Diseased states) समझी जाती हैं। जितने

इसमें ज्ञान की बातें हैं व सब इस मतवाले के प्रवर्तक ने कबीर साहब की वाणियों से ली हैं। पीछे से राधा-स्वामी धाम का ढकोसला जोड़कर लोगों में अपना बड़प्पन दिखलाने के लिये, कबीर साहब के सत्य-लोक की कुटिया अलग मनमाना धाम में नाम बतलाने का अनर्गल तथा अनुचित प्रयास कर रहे हैं। सुना, जो एक पक्षपात-रहित माननीय एफ़० ई० क्रिये, साहित्याचार्य, लन्दन-निवासी ((Rev F E Keay, D Litt, London) लिखते हैं —

"The Radha Swami Satsang is a modern sect which was founded about 1861 by Tulsi Rama (1818-1878), an Agra banker, known as Siva Dayal Sahib, and has its head-quarters at Agra It seems to owe a great deal of its inspiration to Kabir In the daily meetings of the sect, portions of their own sacred books or of the writings of Kabir and other Hindu devotees are read A Hindu couplet of Kabir (though evidently a forgery) is quoted by them to show that Kabir called God by the name of Radha Swami"

"राधास्वामी सत्-संग एक नवीन सम्प्रदाय है, जिसको १८६१ ई० सन् के लगभग आगरा नगर का एक बनिया तुलसीराम (१८१८ -७८) ने चलाया है। पीछे से शिवदयाल साहिब कहाया और मुख्य स्थान आगरा में बनाया। इसमें ज्ञान की बातें बहुधा कबीर से ली गई है। दैनिक बैठक में अपने धर्म-पुस्तक का कुछ भाग अथवा कबीर तथा अन्य हिन्दू भक्तों की वाणियाँ पाठ करते हैं। कबीर की

'एक " हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात को समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है।"

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा। यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य्य है। जिसमें नींव झूठ फरेब पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजूर साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध है) निकल पड़े, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों(Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़ें झगड़ें, मोकदमेबाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हां, जहां कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्पर यत् (गी० ११-३७)-पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर 'सत्' का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और 'असत्' का अवर्तमान (Non-being i.e., past and

---

कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय।
नाहिं उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता। साहेब ने ठीक ही कहा है—

साखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट।
कहैं कबीर कबलक जिये, झूठी पत्तल चाट॥

—[पं० मोतीदास]

future) अर्थात् भूत और भविष्य है। अत पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों काल स परे कालातीत, अक्षर, अनन्त (Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) हैं। सत्य से ऊंचा या ऊपर उस परम तत्व परमात्मा का नाम ही नहा हो सक्ता। और न चेतना की अवस्था ही बन सक्ती। अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October 1933) प्रमुख न कबीर साहब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा–

' There is no God higher than Truth '

" सत् से बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहा। "

इसी सनातन सत्य तत्वसार सत्–नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है –

" Each soul is potentially divine

The goal is to manifest this divine within by controlling nature, external and internal

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one or more, or all of these —— and be free

This is the whole of religion Doctrines or dogmas or rituals, or books, or temples or forms, are but secondary details "

'एक *हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात का समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है।"

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा। यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य्य है। जिसमें नींव झूठ फरेब पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजूर साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध हैं) निकल पड़ें, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों(Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़ें झगड़ें, मोकदमेबाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हां, जहा कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्परं यत् (गी०११-३७)-पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर 'सत्' का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और 'असत्' का अवर्तमान (Non-being i.e., past and

---

* कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय।
ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता। साहेब ने ठीक ही कहा है—

साखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट।
कहैं कबीर कबलक जिये, झूठी पत्तल चाट॥

—[पं० मोतीदास]

future) अर्थात् भूत और भविष्य है। अतः पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों कालों में परे कालातीत, अक्षर, अनन्त (Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है। सत्य से ऊंचा या ऊपर उस परम तत्त्व परमात्मा का नाम ही नहीं हो सक्ता। और न चेतना की अवस्था हो बन सक्ती। अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October, 1933) प्रमुख ने कबीर साहेब की मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा–

" There is no God higher than Truth."

" सत् से बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं। "

इसी सनातन सत्य तत्त्वसार सत्–नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहेब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते है, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है:–

" Each soul is potentially divine.

The goal is to manifest this divine within, by controlling nature, external and internal.

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one, or more, or all of these —— and be free

This is the whole of religion. Doctrines, or dogmas, or rituals, or books, or temples, or forms, are but secondary details."

is one of the most interesting personalities in the history of Indian mysticism."

अर्थात् "कवि कबीर, जिनके भजनों में से कुछ चुन कर यहां पर अंग्रेजी पाठकों के लिये रखे जाते हैं, भारतवर्ष के रहस्यवादियों की गणना (इतिहास) में एक अत्यंत चित्ताकर्षक व्यक्ति है।"

साहेब की वाणियों के मर्म जानने के लिये उनके स्थल-बिन्दु, लक्ष्य-बिन्दु तथा इंगित-व्यक्ति (Stand-point, view point and the addressee) को सदैव ध्यान में रखना चाहिये। किस भूमि से वाणी निकल रही है, क्या उसका लक्ष्य है और किसकी प्रति प्रेरित हो रही है, इन सब बातों को जान कर ही पाठक वाणियों से पूरा लाभ तथा आनंद उठा सकता है। अन्यथा, जहां पर विरोधाभास है वहां पर अत्यन्त विरोध मालूम पड़ने लगेगा, जहाँ पर समता है वहाँ पर विषमता दृष्टिगोचर होने लगेगी। उक्त बातों पर न ध्यान देने ही से साहेब कबीर को कोई राम के माननेवाला कहने लगा तो कोई रहीम का, कोई अद्वैत तो कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत तो कोई द्वैताद्वैतवादी समझने लगा। कोई कर्मयोग तो कोई भक्तियोग, कोई ज्ञानयोग तो कोई ध्यानयोग के माननेवाला उनको कहने लगा। विचार करने से मालूम होगा कि उक्त सब वाद और सब योग अवस्था-विशेष तथा अधिकारी-विशेष के लिये अपने अपने स्थान पर उत्तम और अनिवार्य (Indispensible) हैं।

'Each thing in its place is best.'

अत इन सबों के बोधन करनेवाले पृथक् पृथक् वाणियों को परस्पर विरोधी दल न समझ कर, स्थिर चित्त से विचार कर, अपनी अवस्था के अनुकूल शिक्षा तथा लाभ लेने चाहिये।

पर सब ने अधिक लाभ साखियों से उठाने की युक्ति स देव ने स्वय बना दी है। सरल या कठिन, विद्वत्ता विस्तृत टीका-टिप्पणी पढ़ो या न पढ़ो। पर जो साखी अथवा उसके मार्ग तुम्हारे दिल पर सचोट लगे, जो केवल तुम्हारे मन को तृप्त (Mental recognition) न कर सच्चे हृदय को छेद देवे, उसको आत्मसात् करने (Spiritual Realisation) में बराबर दत्तचित रहो। फिर तो, उस साखी के पूर्ण भाव के अतिरिक्त अनेक साखियों के भाव आपही आप, बिना अधिक प्रयास के, भीतर उतरने लगेगे और मुक्तकंठ से साहेब का गुणगान करने लगोगे। उदाहरण के लिये इस साखी —

ऊँचो जाति पपीहरा, नैवे न नीचो नीर।
या सुरपति को जांचही, या दुख सहै सरीर॥

साखीग्रंथ पृ०२२१ सा० ४६

को ले लो। इसमें चार चरण हैं। किसी एक चरण को आत्मसात् करने में लग जाओ, और देखो कि कैसा गूढ़ और अपूर्व परिणाम पर पहुंचते हो। पहिले चरण में, सत्य-अन्वेषी (Truthseeker) की जाति, स्वरूप ही ऊंची (ऊर्ध्वमूल) बताई गई है। दूसरे चरण में, विषय-विकार रूप दूषित जल की तरफ झुकने तक को मना किया गया है। तीसरे चरण मे, परात्पर पारब्रह्म, देवों के देव की उपासना करने को बताई गई है। और चौथे चरण में, कठोपनिषद् के नचिकेता के ऐसा दृढ़ संकल्प होकर, अपने वांछित 'वरणीय वर' से विचलित न होकर प्रतीक्षा की तपस्या रूप दुःख सहने को बताई गई है। पहिले चरण में आत्मज्ञान की बात, दूसरे में विषय अवहेलना की बात, तीसरे में भक्ति तथा समर्पण की बात और चौथे में सत्याग्रह की बात साहेब ने बताई है। इनमें किसी एक को, पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे को हृदयगम कर आत्मसात् (Realisations) करो। शेष तीनों के साक्षात्कार के अलावे सब

साखी शब्दों का मर्म शनै शनै समझ में आने लगेगा। और अनेकानेक ग्रंथ पढ़ने की भी आवश्यकता, दिल से जाती रहेगी। साहेब ने स्वय सुदर वो सरल कुञ्जी बना दी है,

आधी साखी सिर कटी, जो निरुवारो जाय।
क्या पंडित की पोथियां, रात दिना मिलि गाय ॥[३]

लिखने पढ़ने से भी संभव है कभी चित्त स्थिर हो जाय, श्रवण-मनन से भी कभी शान्ति मिल जाय; पर वीतराग सत्पुरुषों के गुण-गान से भी-चित्त स्थिर होकर एक प्रकार की शान्ति मिलती है, जो अकथनीय है। इसलिये पतंजलि भगवान ने चित्तनिरोध के अनेक उपायों में एक-वीतरागस्य चित्तस्य वा-यह भी-बताया है। बस, आओ, अब हम सब मिलकर सत्पुरुष साहेब का गुणगान कीर्तन कर उनके रहस्यमय वाणी में अवतरण कर सत् और शान्ति की तरफ झुकें!

सतनाम का झंडा आलम में, गड़वा दिया सतगुरु कबीरने।
भ्रम भूत का भंडा एकदम हि फड़वा दिया, सतगुरु कबीरने ॥१॥
जो जड़ के पीछे पड़े हुये, चेतन से चित्त हटा करके।
हो परगट चेतन की महिमा, बतला दिया, सतगुरु कबीरने ॥२॥
धर्मदास को पत्थर पूजनमें, रे बीत गये बरसों बरसों।
पर हाथ न आया कुछ उनको, दिखला दिया सतगुरु कबीरने ॥३॥
किये कैद हजारों स धुन को, चक्की पिसवावे सुल्ताना।
फिरवा कर चक्की चेतन बल, दिखला दिया सतगुरु कबीरने ॥४॥
अगनाथ का पंडा अग्नि से, जलकर जब छटपट करता था।
जल छांटा दूर से दे पीड़ा, हरवा दिया सतगुरु कबीरने ॥५॥
अभिमानी पोथा-धारी को, करते थे पराजय पल भर में।
वनमाली ज्ञान परम ज्योति, छाया है सतगुरु कबीरने ॥६॥

निवेदक,
सा० वनमाली गुरु श्री अरविन्द
शान्ति—कबीर मंदिर नडियाद

निवेदन।

इस साखी ग्रंथ को सांगोपांग सर्वांग सुंदर रीति से संपादन और संशोधन करने का सारा श्रेय श्रीमान् पंडित मोतीदासजी साहेब, रसमदर-संपादक, संस्कृत विशारद को है। उन्होंने अपनी शारीरिक स्थिति अच्छी न रहते हुये भी यह महान् कार्य अति परिश्रम से किया है। सतगुरु उनकी अभिलाषाओं को पूर्ण करें।

रसमदर उन्हीं के परिश्रम का फल है और रसमदर में जो गुजराती भाषा में कबीरमन्सूर निकलता है सो उन्हीं का परिश्रम है। साखी ग्रंथ में जितनी सुंदरता दीखने में आती है सो सब उनके अति परिश्रम का फल है। कबीर धर्मवर्धक कार्यालय से जितनी पुस्तकें निकल चुकी हैं और निकलेंगी सो सब के संपादक श्रीमान् पंडितजी हैं। हमारी अंतर अभिलाषा यह है कि सतगुरु उनको ऐसे शुभ कार्य करने को सदा सुखी रखें।

साखी ग्रंथ की टीका-टिप्पणी और अवतरणिका जो की गई है सो उनही की प्रेरणा से उन उन महात्माओं ने किया है। थोड़े में सारा ग्रंथ आदि से अंत तक सफल करने में जिन जिनने भाग लिया है उन सब के हम और सारा कबीरपंथ कृतज्ञ है।

२८ ३ ३५ महंत बालकदासजी।

श्री पूज्य स्वामीजी का मैं अत्यंत ऋणी हूं कि उन्होंने अनुग्रह कर यह उत्तम अवतरणिका का अवतरण करके बड़ी परम कृपा की है। एवं श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेब शास्त्री का भी मैं अत्यंत ऋणी हूं कि उन्होंने विशेष टीका-टिप्पणी कर साखी ग्रंथ को उपादेय और सुगम बना दिया है।

—पं० मोतीदास।

शीघ्रता में अवतरणिका में नीचे की भूल रह गई है। सो कृपया सुधारकर पढ़ें।

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२	bonud	bound
,,	१७	Mouze	Mouse
१४	८	कोम	कोष
,,	२०	repro luctive	Repro luctive
,,	२४	tower	lower
,,	२५	eorres ponding	Corresponding
,,	२७	profect	project
१५	१	Jackal	Jackal
,,	१		and
१७	८	अप को	अपने को
,,	९	को	कोई
,,	१६		मूढ़
२७	२२	मुख	मुख
,,	२४	Public	Public
२८	८	अंग्रेजी	अंग्रेज़ी
२९	७	Exten	External
३०	६	Seens	Scenes

---

१ व्यवस्थापक, कबीर चंद्रोदय कार्यालय,
मु०, हरख, पो०, मतरिख जि०, बाराबंकी. (यू. पी)

२ श्री. १०८ महंतश्री शांतिदासजी साहेब
ठि० कबीर साहेब का मंदिर, फुलिया हनुमान के पास.
मु०, वामनगर (काठियावाड़)

३ श्रीयुत महादेव रामचंद्र जागुष्टे
बुकसेलर्स एन्ड पब्लीशर्स, त्रणदरवाजा, अहमदाबाद.

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहब

का

साखी-ग्रंथ ।

(टीका-टिप्पणी-सहित)

सत्यनाम सत्सुकृत, आदि अदली

अजर अचिन्त पुरुष मुनीन्द्र

करुणामय —— कबीर

सुरतियोग-सतायन

धनी धर्मदास

साहब की

दया

गुरुदेव को अंग।

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम।
कीट न जानै भृंग को, गुरु करिले आप समान ॥१॥
दंडवत गोविंद गुरु, बन्दौं अबजन सोय।
पहिले भये प्रनाम तिन, नमो जु आगे होय ॥२॥
गुरु गोविंद करि जानिये, रहिये सब्द समाय।
मिलै तो दंडवत बंदगी, नहिं पलपल ध्यान लगाय ॥३॥
गुरु गोविंद दोऊ खड़े, किसके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया बताय ॥४॥
गुरु गोविंद दोउ एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै हरि भजै, तब पावै दीदार[1] ॥५॥

---

१ दंडवत्-दंडकी तरह भूमि में पड़कर साष्टांग प्रणाम करना। कीट न जानै भृंगीको-भृंगी एक प्रकार की बर्र-मक्खी होती है जो कि मिट्टी के घर में कीड़े को लाकर रखती है और अपना शब्द सुनाकर उसे भृंगी बना लेती है। इसी प्रकार सदगुरु अपने सत्योपदेश से शिष्य को अपने समान बना लेते हैं।

२ अबजन-वर्तमान समय के संत। इस साखी में तीनों काल के संतों को प्रणाम किया गया है।

५ दूजा सब आकार-गुरु और गोविंद में केवल आकार का भेद है।

१ पा० करतार

गुरु हैं बड़े गोविंद ते, मन में देखु बिचार।
हरि सिरजे ते वार हैं, गुरु [1]सिरजे ते पार ॥६॥

गुरु तो गरुआ मिला, ज्यौं आटे में लौन।
जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरेगा कौन ॥७॥

गुरु सों ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भौंदू [2]बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥८॥

गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहैं कबीर सो संत है, आवागवन नसाय ॥९॥

गुरु पारस गुरु पुरुष है, (गुरु)चंदन वास सुवास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥१०॥

गुरु पारस को अन्तरो, जानत हैं सब संत।
वह लोहा कंचन करे, ये करि लेय महंत ॥११॥

कुमति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारे धोय ॥१२॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबू सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥१३॥

६. वार-इस तरफ, चौरासी में। पार-उस तरफ, भव से पार।
८. भौंदू-अज्ञानी। जीव-अपने हृदय में। ११. महंत-बड़ा, श्रेष्ठ।
१३. ज्योति-तेज, प्रकाश।

१. पा० सुमिरे। २. पा० मार।

गुरु कुम्हार सिष कुंभ है, गढ़ि गढ़ि काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दे, बाहिर बाहै चोट ॥१४॥

गुरु समान दाता नहीं, याचक सीष समान।
तीन लोक की संपदा, सो गुरु दीन्ही दान ॥१५॥

पहिले दाता सिष भया, तन मन अरपा सीस।
पाछै दाता गुरु भये, नाम दिया बखसीस ॥१६॥

गुरु जो बसै बनारसी, सीष समुंदर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन होय सरीर ॥१७॥

लच्छ कोस जो गुरु बसै, दीजै सुरति पठाय।
सब्द तुरी असवार ह्वै, छिन आवै छिन जाय ॥१८॥

गुरु को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा मांहि।
कहैं कबीर ता दास को, तीन लोक भय नांहि ॥१९॥

गुरु को मानुष जो गिनै, चरनामृत को पान।
ते नर नरके जायँगे, जनम जनम ह्वै स्वान ॥२०॥

गुरु को मानुष जानते, ते नर कहिये अंध।
होय दुखी संसार में, आगे जम का फंद ॥२१॥

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिन मिलै न भेद।
गुरु बिन संसय ना मिटै, जय जय जय गुरु देव ॥२२॥

१७. बनारसी-काशी में। १८. तुरी-घोड़ा। २०. स्वान-कुत्ता।
१. पा० मारै।

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै, गुरु बिन मिलै न मोष।
गुरु बिन लखै न सत्त को, गुरु बिन मिटै न दोष ॥२३॥
गुरु नारायन रूप है, गुरु ज्ञान को घाट।
सतगुरु बचन प्रताप सों, मन के मिटे उचाट ॥२४॥
गुरु महिमा गावत सदा, मन अति राखे मोद।
सो भव फिरि आवै नहीं, बैठे प्रभु की गोद ॥२५॥
गुरु सेवा जन बंदगी, हरि सुमिरन बैराग।
ये चारों तब ही मिले, पूरन होवै भाग ॥२६॥
गुरु मुक्तावै जीव को, चौरासी बंद छोर।
मुक्त प्रवाना देहि गुरु, जम सो तिनुका तोर ॥२७॥

२३ मोष—मोक्ष। २४. उचाट—चचलता।

२७ तिनका तोर=तिनका तोड़ना, सबंध विच्छेद करना (महानिरा) तिनका तुड़ाना कबीरपंथ की एक विधि है। चौका आरती मे शिष्य का तिनका अर्पण कराया जाता है। उसका भाव यह है कि अब तुम्हारा यमराज से कोई सबंध न रहा।

मुक्त प्रवाना=मुक्ति का बीडा। जिस प्रकार युद्ध में सम्मिलित होने के लिये प्राचीन काल में वीर लोग बीडा उठाया करते थे, इसी प्रकार चौका आरती में अधिकारी मुमुक्षु को मुक्ति का परवाना दिया जाता है। उसका यह भाव है कि मुमुक्षु को मुक्ति के बाधक कामादिक शत्रुओं से लडने के लिये तैयार हो जाना चाहिये।

परवाना का दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार सरकारी परवाना (खास रुक्का, पास) पाये हुए को दरबार में आने के लिये कोई रोक नहीं सकता, इसी प्रकार मुक्ति परवाना पाये हुए पूर्वोक्त वीर को यमराज नहीं रोक सकता, अतएव वह सीधा सत्यलोक चला जाता है।

गुरु सों प्रीति निबाहिये, जिहि तत निबहै संत।
प्रेम बिना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत ॥२८॥
गुरु मारै गुरु झटकरै, गुरु बोरै गुरु तार।
गुरु सों प्रीति निबाहिये, गुरु है भव कँडिहार ॥२९॥
गुरु भक्ता मम भक्त हैं, साध भक्त मम दास।
हरि भक्ता सो उत्तमा, कहै कबीर हरि व्यास ॥३०॥
गुरु की महिमा को कहै, सिव विरंचि नहि जान।
गुरु सतगुरु को चीन्हि के, पावै पद निरबान ॥३१॥
गुरु मुख मानी ऊचरे, सीप साँच करि[१] मान।
या विधि फंदा छूटहीं, और युक्ति नहि आन[२] ॥३२॥

२८. निबाहिये–बना रखिये। जेहि तत निबहै–जिस तरह बनी रहे। ढिग–पास अर्थात् पासमें रहते हुए भी। कंत–स्वामी (स॰ कान्त)।

२९. झटकरै–फटकार बतावे। बोरै–डुबोवें। तार–संसार से पार करे।

कड़िहार–(सं॰ कर्णधार) नाव चलानेवाला, संसार सागर से पार उतारनेवाला। कबीरपंथ में महंतों की 'कड़िहार' पदवी है। जिस प्रकार मल्लाह दरिया से पार उतारते हैं इस प्रकार ये लोग भी भवसागर से उतारने में मुमुक्षुओं की सहायता करते हैं।

३०. हरिव्यास–हरि व्यासजी को कहते हैं। गुरु महिमा के प्रमाण रूप यह साखी कबीर साहेब ने हरि और व्यास के संवाद रूप में कही है।

३१. विरंचि–ब्रह्मा। निरबान–मुक्ति।

१ पा॰ गुरु। २ पा॰ जान।

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर।
आठ पहर निरखत रहै, गुरु मूरति की ओर ॥३३॥

गुरू समाना सीप में, सीप लिया करि नेह।
बिलगाये बिलगे नहीं, एक मान दुइ देह ॥३४॥

गुरु सरनागत छाँडि के, करै भरोसा और।
सुख संपति की कह चली, नहीं नरक में ठौर ॥३५॥

गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिय भेद कछु नाँहि।
उनही कूं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाँहि॥३६॥

ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बिसरौ जाय।
जब गोबिंद किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय॥३७॥

ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विस्वास।
गुरु सेवा ते पाइये, सतगुरु चरन निवास ॥३८॥

कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
हरि के रूठे ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर ॥३९॥

कबीर हरि के रूठते, गुरु के सरनै जाय।
कहैं कबीर गुरु रूठते, हरि नहि होत सहाय ॥४०॥

---

३३. ओर–तरफ। ३४. नेह–प्रेम। बिलगाये–अलग करने से।
३५. कह चली–कहा धरी है। ३७. सो जनि बिसरौ जाय–उसे कभी न भूलना। ३९. रुठे–रुठना, अप्रसन्न होना।

हरि रूठै गति एक है, गुरु सरनागत जाय।
गुरु रूठे एकौ नहीं, हरि नाहिं करै सहाय ॥४१॥
कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अरथाय।
सुरति कंवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥४२॥
बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार।
मानुप ते देवता किया, करत न लागी बार ॥४३॥
सिष खाँडा गुरु मसकला, चढ़ै सब्द खरसान।
सब्द सहै सनमुख रहै, निपजै सीप सुजान ॥४४॥
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हानि।
दीपक जोति पतंग ज्यौं, पड़ता आय निदान ॥४५॥
भली भई जो गुरु मिले, जाते पाया ज्ञान।
घट ही माँहि चबूतरा, घट ही माँहि दिवान ॥४६॥

४२ गम–ज्ञान। अरथाय समझा दिया। सुरति कंवल–यह सहस्रदल के आगे आठवाँ कमल है, जहां से सतमत का अभ्यास आरंभ होता है। 'सुरति कंवल पर साहब बोलैं'। निराधार–निरालम्ब, सत्यपुरुष।

४३ बार–देरी।

४४ खाडा–तरवार। मसकला–जंग छुडाने का सिकलीगर का एक ओजार। खरसान–सान। निपजै–बने।

४५. नातर–नहीं तो। निदान–अंत में।

४६ चबूतरा–चौरा, बैठक। दिवान–न्यायकर्ता।

सत्तनाम के पटतरे, देवे को कछु नाँहि ।
क्या ले गुरु सतोपिये, हवस रही मन माँहि ॥४७॥
निज मन माना नाम सों, नजरि न आवै दास ।
कहै कबीर सो क्यों करै, राम मिलन की आस ॥४८॥
निज मन तो नीचा किया, चरन कमल की ठौर ।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजरि न आवै और ॥४९॥
तन मन दीया(तो)भल किया, सिर का जासी भार ।
जो कबहुँ कहै मैं दिया, बहुत सहै सिर मार ॥५०॥
तन मन ताको दीजिये, जाको विषया नाँहि ।
आपा सब ही डारि के, राखै साहिब माँहि ॥५१॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्तनाम का मीत ।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥५२॥
जल परमानै माछली, कुल परमानै सुद्धि ।
जाको जैसा गुरु मिला, ताको तैसी बुद्धि ॥५३॥
जैसी प्रीति कुटुंब की, तैसी गुरु सों होय ।
कहै कबीर ता दास का, पला न पकड़ै कोय ॥५४॥

---

४७ पटतरे–ऐवज, बदला में । हवस-इच्छा (फा० हविश) ।

४८ जिसका अन्तर्हृदय नाम का अनुरागी हो ऐसा दास देखने में नहीं आता । ऐसे प्रेमी को तो राम मिला ही मिलाया है । अत वह उसके मिलने की आशा क्यों करे ।

५२ मीत–मित्र । बधिक-पारधी । ५३ सुद्धि–आचार विचार ।

सब धरती कागद करूं, [1]लिखनी सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय॥९५॥

✓बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरी चमक।
[2]बेड़ा देखा झाँझरा, उतरी भया फरक॥९६॥

अह अगनि निस दिन जरे, गुरु सों चाहै मान।
ताको जम न्योता दिया, हो (उ) हमार मिहमान॥९७॥

जम गरजै बल बाघ के, कहैं कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तो जम खाता फार॥९८॥

अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरू दया ते पावई, सुरति निरति करि देख॥९९॥

पंडित पढ़ि गुनि पचि मुये, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है, सत्त सब्द परमान॥१००॥

---

९६ लहर-मौज, इच्छा। चमक- चमक गई, गुरुकी दया हो गई। बेड़ा-नाव। झाझरा छेदवाला, पुराना। फरक-अलग।

९८. बल बाघ के-सिंह के समान बली।

९९ अमूर्त-आकार रहित। पेख-देखा।

[1] पा० लेखनि। [2] पा० बेरा।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥६१॥

६१ गुरु स्वरूप के ध्यान करने पर किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती, और गुरु चरणों की पूजा के अनन्तर दूसरी पूजा की आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार गुरुवचन को हृदय में धर लेने पर दूसरे नाम को उसमें धरने की जरूरत नहीं होती, और अपने भाव को सत्य बनाने पर सत्य को ढूढने की जरूरत नहीं होती। "यस्य देवे परा भक्ति र्यथा देवे तथा गुरौ। तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः" श्वेताश्वतर के इस वचन के अनुसार गुरुभक्ति से शून्य मुक्ति का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता, क्यों कि मुक्ति के मंदिर की कुंची सद्गुरु के पास है। बिना उनकी कृपा के उसका मिलना असंभव है। इसीलिये यह कहा गया है कि "तद् विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत्" अर्थात् परमार्थ तत्त्व के जानने के लिये अधिकारी को गुरु के शरण में ही जाना चाहिये। गीता में भी यह स्पष्ट ही कहा गया है कि-"तद्वि-द्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वद-र्शिनः" ॥ उस तत्त्व को जानने के लिये गुरु को प्रणाम करो, उसकी सेवा करो और विनयपूर्वक उनसे पूछो, ऐसे आचरण से प्रसन्न होकर सद्गुरु तुमको मुक्ति तत्त्व का उपदेश देंगे। इत्यादि श्रुति और स्मृतियों के वचनों के आकलन से स्पष्ट है कि, गुरु की पूजा और ध्यान मुक्तिप्रद होने के कारण अन्य देवताओं की पूजा और ध्यान से श्रेष्ठ है। इसी प्रकार गुरु का सत्योपदेश नामस्मरण से अधिक फलदायी होने के कारण आवश्यक ग्राह्य है।

कहैं कबीर तजि भरम को, नन्हा ह्वै करि पीव।
तजी अहं गुरु चरन गहु, जम सों बाचै जीव ॥६२॥
तीन लोक नव खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय ॥६३॥
कोटिन चंदा ऊगहीं, सूरज कोटि हजार।
तीमिर तो नासै नहीं, बिन गुरु घोर अंधार ॥६४॥
पहिले बुरा कमाइ कै, बांधी विष की पोट।
कोटि करम पल में कटै, (जब)आया गुरु की ओट॥६५॥
जगत जनायो सकल जिहि, सो गुरु प्रगटे आय।
जिन गुरु आँखिन देखिया, सो गुरु दिया लखाय ॥६६॥
हरि किरपा तब जानिये, दे मानव अवतार।
गुरु किरपा तब जानिये, छुड़ावे संसार ॥६७॥
जाके सिर गुरु ज्ञान है, सोइ तरत भव माँहि।
गुरु बिन जानो जन्तु को, कबहूँ मुक्ति सुख नाँहि॥६८॥
देवी बड़ा न देवता, सूरज बड़ा न चंद।
आदि अंत दोनों बड़े, कै गुरु कै गोविंद ॥६९॥

---

६६. जिस मालिक ने सारे संसार का निर्माण किया है और जो स्वयं अलक्ष्य है उस मालिक के रूप में प्रकट होकर गुरु ने उसको लखा दिया।

६७. बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य देह नहीं मिल सकती, और गुरु की कृपा के बिना भवसागर से पार नहीं हो सकता। एवं गुरु की कृपा के बिना ईश्वर की कृपा भी नहीं हो सकती।

सब कुछ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
सेवक मन सौंपे रहै, निस दिन चरनों लाग॥७०॥
बहुत गुरू भै जगत में, कोई न लागे तीर।
सबै गुरू बहि जायंगे, जाग्रत गुरू कबीर ॥७१॥
वेद पुराना साधु गुरु, सबन कहा निज बात।
गुरु तें अधिक न दूसरा, का हरि का पितुमात ॥७२॥
ताते सद्ध विवेक करि, कीजै ऐसो साज ।
जिहि विधि गुरु सों प्रीति रह, कीजे सोई काज ॥७३॥
सो (इ) सो(इ)नाच नचाइये, जिहि निबहै गुरु प्रेम।
कहै कबीर गुरु प्रेम बिन, कितहुँ कुसल नहि छेम॥७४॥
तन मन सीस निछावरै, दीजै सरबस प्रान ।
कहै कबीर दुख सुख सहै, सदा रहै गलतान ॥७५॥
तब ही गुरु प्रिय बैन कहि, सीप बढ़ी चित प्रीत।
सो रहिये गुरु सनमुखाँ, कबहुँ न दीजै पीठ ॥७६॥
स्नेह प्रेम गुरु चरन सों, जिहि प्रकार सें होय।
कया नियरे कया दूर बस, प्रेम भक्त सुख सोय ॥७७॥
जिहि विधि सिपको मन बसै, गुरु पद परम सनेह।
कहैं कबीर कया फरक ढिग, कया परबत बन गेह ॥७८॥

७०. सौंपे रहे—लगाये रहे। ७३. साज-साधन, उपाय। काज-काम।

जो गुरु पूरा होय तो, सीष हि लेय निवाह ।
सीष भाव सुत जानिये, सुत(ते)श्रेष्ट सिष आह ॥७९॥
अबुध सुबुध सुत मातुपितु, सब हि करै प्रतिपाल ।
अपनी ओर निबाहिये, सिस सुत गहि निजचाल॥८०॥
कहै कबीर गुरुसों मिले, होय नाम परकास ।
गुरु मिलि सिष भवनिधि तरै, कहै कृस्न मुनि व्यास ॥८१॥
सुनिये संतो साधु मिलि, कहै कबीर बुझाय ।
जिहि विधि गुरुसों प्रीति ह्व, कीजै सोइ उपाय ॥८२॥
[1]आथ सद्द गुरु देव का, ताका अनंत विचार ।
थाके मुनि जन पंडिता, वेद न पावे पार ॥८३॥
करै दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सु देय ।
बलिहारी वे गुरुन की, हंस उबारि जु लेय ॥८४॥
हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक ।
ताके पटतर ना तुलै, संतन कियो विवेक ॥८५॥
तें मन निरमल सत खरा, (जो)गुरु सों लागै हेत ।
अंकुर सोई ऊगसी, (गुरु) सद्दै बोया खेत॥८६॥
भौसागर की त्रास तें, गुरु की पकड़ो बाँहि ।
गुरु बिन कौन उबारसी, भौजल धारा माँहि ॥८७॥

---

७९. आह–है ।
८१. यह साखी भी व्यास और कृष्ण के संवाद रूप में कही गई है।
१. प्रा० एक ।

लौ लागी विष भागिया, कालक(ख) डारी धोय।
कहैं कबीर गुरु साधु सों, कोइ इक ऊजल होय ॥८८॥
साधु बिचारा क्या करैं, गांठै राखै मोय ।
जल सो अरसा परस नहिं, क्यौं करि ऊजल होय ॥८९॥
नारद सरिखा सीष है, गुरु है मच्छीमार ।
ता गुरु की निन्द करै, पड़ै चौरासी धार ॥९०॥
राजा की चोरी करै, रहै रंक की ओट ।
कहैं कबीर क्यों ऊबरै, काल कठिन की चोट ॥९१॥

---

८८. लौ-लगन, प्रेम । विष-विषयवासना । कालख-पाप ।

८९. जिस प्रकार मैले कपड़े में बांधा हुआ साबुन बिना पानी के कपड़े को सफा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना सत्संग के ज्ञान पाप के मैल को दूर नहीं कर सकता ।

९०. शिष्य को उचित है कि वह गुरु की जाति का विचार न करे। विष्णु के पूछने पर नारदजी ने अपने धीमर गुरु की निंदा की थी। इस कारण उन्हें चौरासी भोगने की आज्ञा हो गई थी परन्तु अपने गुरु की कृपा से उनको इससे छुटकारा हो गया ।

९१. जो ईश्वर से विमुख होकर संसार का प्रेमी बनता है वह काल के फन्दे से नहीं बच सकता । उसको उचित है कि वह गुरु के शरण में जाय ।

सतगुरु को अंग।

कबीर रामानंद को, सतगुरु भये सहाय।
जग में युक्ति अनूप है, सो सब दई बताय ॥१॥
सतगुर के परताप तें, मिटी गयो सब दुंद।
कहै कबीर दुविधा मिटी, (गुरु)मिलिया रामानंद ॥२॥
सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात।
हरि समान को है हितु, हरिजन सम को जात ॥३॥
सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नव खंड।
तीन लोक ना पाइये, अरु इकइस ब्रम्हंड ॥४॥
सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावनहार ॥५॥
दिल ही में दीदार है, बादि झखै संसार।
सतगुरु सब्द हि मसकला, मुझे दिखावनहार ॥६॥
सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहिर घाव न दीसई, अन्तर चकना चूर ॥७॥

---

३ दात-दाता। जात-जाति भाई।

५ (१) अनन्त-अपार। (२) अनन्त-बहुत। लोचन-नेत्र। (३) अनन्त-अविनाशी। (४) अनन्त-अखंड पुरुष।

६ दीदार-दर्शन। बादि-व्यर्थ। झखै-पछताता है। मुझे-मुझको (अपना रूप)।

७ दीसई-दीखता है। चकनाचूर-बिल्कुल टूट गया।

सतगुरु साँचा सूरमा, सब्द जु बाहा एक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥८॥

सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर ।
सब्द बान से मरि रहा, (क्यों)जीये दास कबीर ॥९॥

सतगुरु मेरा सूरमा, तकि तकि मारै तीर ।
लागे पन भागे नहीं, ऐसा दास कबीर ॥१०॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
[1]नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥११॥

सतगुरु मारा बान भरि, धरि करि धीरी मूठ ।
अंग उघाड़े लागिया, गया दुवाँ सों फूट ॥१२॥

---

८ बाहा-चलाया, मारा । एक-एक मालिक का । शब्द-उपदेश । छेक-छेद ।

९. बेधा छेद दिया ।

१०. तकि २-निशाना ताक कर । लागे पन . शिष्य को चाहिये कि सद्गुरु के उपदेश से अपने चित्त को कभी न हटावे ।

११. मेरे हृदय की आसक्ति को पहचान २ कर सद्गुरु ने ऐसा पूरा उपदेश दिया कि शिक्षा से हटके दूसरी ओर चित्त नहीं जाता ।

१२ धीरी मूठ-बाण को धीरे से खेंचकर । दुवासों-आरपार। सदगुरु के शात उपदेश को जो शिष्य कपट छोड़कर मानता है उसके हृदय से लोक और परलोक के सुख की आशा निकल जाती है ।

१. पा० अलख नाम में रमि रहा, ।

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गई सब जेब ।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहूँ किनेब ॥१३॥
सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाँहि सरीर ।
कहु चुंबक क्या करि सकै, सुख लागे वहि तीर ॥१४॥
सतगुरु मारा बान भरि, रहा कलेजे माल ।
राही काढ़ी तक रहै, आज मरै की काल ॥१५॥
गोसा ज्ञान कमान का, खैचा किलहु न जाय ।
सतगुरु मारा बान भरि, रोम हि रहा समाय ॥१६॥
सतगुरु मारा तान करि, सब्द सुरंगी बान ।
मेरा मारा फिर जिये, (तो)हाथ न गहौं कमान॥१७॥
सतगुरु मारी प्रेम की, रही कटारी टूट ।
वैसी अनी न सालई, जैसी सालै मूठ ॥१८॥

---

१३. जेब सजाव, बनाव । शरीर की ममता । आप कहू आशा..... गुरु के उपदेश रूपी बाण से शिष्य ऐसा घायल हो गया कि उसको तसबी (माला) और कुरान का कुछ खयाल न रहा और सारी आशाएँ छोड़कर आप अपने में पहुंच गया ।

१४. सद्गुरु के उपदेश के सुनते ही चित्त स्थिर हो गया । ससारी लोग उसे बहुत कुछ अपनी ओर खींचना चाहते हैं, परन्तु वह आनन्द के सागर को छोड़ना नहीं चाहता ।

१६. गोसा रोदा । रोमही-रोम २ में

१७. सुरंगी-सीधा, सच्चा उपदेश ।

१८. अनी–नोक । मूठ-पकड़ने की जगह । वैसी... मूठ-थोड़ा प्रेम मनुष्य को घायल नहीं कर सकता, किन्तु पूरे प्रेम से ही वह ससार से उदास हो सकता है ।

सतगुरु सद्ब कमान करि, वाहन लागे तीर।
एक हि बाहा प्रेप सों, भीतर बिधा सरीर ॥१९॥
सतगुरु सत का सद्ब है, (जिन)सत्त दिया बतलाय।
जो सत को पकड़े रहै, सत्त हि माँहि समाय ॥२०॥
१सतगुरु सद्ब सब घट बसै, कोई कोइ पावै भेद।
समुँद बूंद एकै भया, २काहे करहु निपेद ॥२१॥
सतगुरु दाता जीव के, जीव ब्रह्म करि लेह।
सरवन सद्ब सुनाय के, और रंग करि देह ॥२२॥
सतगुरु सें सूधा भया, सद्ब जु लागा अंग।
ऊठी लहरि समुँद की, भींजि गया सब अंग ॥२३॥
सद्बै मारा खैंचि करि, तब हम पाया ज्ञान।
लगी चोट जो सद्ब की, रही कलेजे छान ॥२४॥
सतगुरु बड़े सराफ़ हैं, परखे खरा रु खोट।
भौसागर ते काढि के, राखै अपनी ओट ॥२५॥
सतगुरु बड़े जहाज़ हैं, जो कोइ बैठे आय।
पार उतारे और को, अपनो पारस लाय ॥२६॥

२१. समुँद बुँद-ईश्वर और जीव। २३. सुधा-सन्मुख। समुँद-प्रेम का समुद्र। २४. छान-बेध गई। २५. सराफ़-जौहरी। ओट-सहारे। २६. पारस-पारसमणि, दाम।

१. पा० सतगुरु सद्ब जहाज है, २. पा० किसका करूं निपेद॥

सतगुरु बड़े सुनार हैं, परखे वस्तु भँडार ।
सुरति हि निरति मिलाय के, मेटि डारे खुटकार ॥२७॥
सतगुरु के सदके किया, दिल अपने को साँच ।
कलियुग हम सों लड़ि पड़ा, मुहकम मेरा बाच ॥२८॥
सतगुरु मिलि निर्भय भया, रही न दूजी आस ।
जाय समाना सब्द में, सतनाम बिस्वास ॥२९॥
सतगुरु मोहि निवाजिया, दीन्हा अंमर बोल ।
सीतल छाया सुगम फल, हंसा करैं किलोल ॥३०॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोचि विचार ।
आइ परोसिन ले चली, दीयो दिया सम्हार ॥३१॥
सतगुरु सरन न आवहीं, फिरि फिरि होय अकाज ।
जीव खोय सब जायँगे, काल तिहू पुर राज ॥३२॥
सतगुरु सो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
धन्य सीप धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय ॥३३॥

२७ सुरति–जीव । निरति–साहब । खुटकार–खटक ।

२८. सदके न्योछावर । मोहकम–पराला । कलियुग की अमलदारी के रहते हुए भी मैंने सद्गुरु में चित्त लगाकर उसे सधाइ स लिया ।

३० निवाजिया–दया की । अमर बोल–मुक्ति का उपदेश ।

३१. दीयो .. सम्हार–दीये से दीये को जला लिया । अर्थात् सद्गुरु का उपदेश शिष्य प्रशिष्य के द्वारा संसार में फैल गया ।

३३. भावों की सत्यता ही साहब का स्वरूप है, जो इस मत को मान लेता है वह बड़भागी है, क्यों कि उसकी मुक्ति में संदेह नहीं रहता ।

सतगुरु हम सों रीझि कै, कह्यो एक परसंग।
बरषै बादल प्रेम को, भीजि गया सब अंग ॥३४॥
सतगुरु बादल प्रेम के, हम पर [1]बरप्यौ आय।
अन्तर भींजी आतमा, हरी भई बनराय ॥३५॥
हरी भई सब आतमा, सब्द उठै गहराय।
डोरी लागी सब्द की, ले निज घर कूं जाय ॥३६॥
हरी भई सब आतमा, सतगुरु सेच्या मूल।
चहुंदिस फूटी वासना, भया कली सों फूल ॥३७॥
सतगुरु के भुज दोय हैं, गोविंद के भुज चार।
गोविंद से कछु ना सरै, गुरु उतारै पार ॥३८॥
सतगुरु की दाया भई, उपजा सहज सुभाव।
ब्रह्म अगनि परजालिया, अब कछु कहा न जाय ॥३९॥
सतगुरु हम सों मल कही, ऐसी करै न कोय।
तीन लोक जम फंद में, पला न पकडै कोय ॥४०॥

३४ रीझि कै-प्रसन्न होकर। एक परसग-एक साहब से प्रेम का प्रसग।

३५. बनराय-सारा जगल। सब ओर आनद छा गया।

३७ जिस प्रकार मूल के सींचने से पेड की डालियां हरी भरी हो जाती हैं और कलियां खिलकर चारों ओर सुगध फैला देती हैं, इसी प्रकार पूरे सद्गुरु के शरण से पूर्णपद मिल जाता है, जिससे श्रेय और प्रेय दोनों की प्राप्ति हो जाती है।

१ पा० उठे।

सतगुरु मिले जु सब मिले, ना तो मिला न कोय।
मातु, पिता सुत बंधुवा, ये तो घर घर होय ॥४१॥

सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय।
भ्रम का भाँडा तोड़ि करि, रहै निराला होय ॥४२॥

सतगुरु आतम दृष्टि है, इन्द्री टिकै न कोय।
सतगुरु बिन सूझै नहीं, खरा दुहेला होय ॥४३॥

सतगुरु किरपा फेरिया, मन का और हि रूप।
कबीर पांचो पलटिया, भेले किया अनूप ॥४४॥

सतगुरु की माने नहीं, अपनी कहै बनाय।
कहै कबीर क्या कीजिये, और मता मन माँय ॥४५॥

सतगुरु अम्रित बोइया, सिष खारा है जाय।
नाम रसायन छांडि कर, आक धतूरा खाय ॥४६॥

सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारनै, सब्द झरोखा कीन्ह ॥४७॥

सतगुरु तो एसा मिला, ताते लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया ततसार ॥४८॥

४३. सद्‌गुरु (साहब) स्वानुभवगम्य हैं। इन्द्रियों से वह जाना नहीं जाता। बिना सद्‌गुरु (गुरु) के मिले सत्य वस्तु भी झूठी मालूम पड़ती है।

४४. भेले—मिला दिया। अनूप—मालिक।

सतगुरु के उपदेस का, सुनिया एक विचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥४९॥

जम द्वारे में दूत सब, करते ऐंचातान।
उन ते कबहु न छूटना, फिरता चारों खान ॥५०॥

चारि खानि में भरमता, कबहु न लगता पार।
सो फेरा सब मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥५१॥

पाछे लागा जाय था, लोक बेद के साथ।
पैंडे में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥५२॥

दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना, बहुरि न आवै हट्ट ॥५३॥

पूरा सतगुरु सेवतों, अंतर प्रगटे आप।
मनसा वाचा कर्मना, मिटे जनम के ताप ॥५४॥

पूरा सतगुरु सेव तूं, धोखा सब दे डार।
साहिब भक्ति कहँ पाइये, अब मानुष औतार ॥५५॥

पूरा सतगुरु सेवतौं, सरन पायो नाम।
मनसा वाचा कर्मना, सेवक सारा काम ॥५६॥

मन हि दिया जिन सब दिया, मन के संग सरीर।
अब देवे को क्या रहा, यों कथि कहैं कबीर ॥५७॥

---

५२. पैंडे में—रास्ते में।
५३. अघट्ट—पूरी। बिसाहना—सौदा। हट्ट—हाट, बाजार।

तन मन दिया जु क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ॥५८॥
तन मन दिया जु आपना, निज मन ताके संग।
कहै कबीर सदके किया, सुनि सतगुरु परसंग॥५९॥
[1]पारस लोहा परसते, पलटि गया सब [2]अंग।
[3]संसय सबही मिटि गया, सतगुर के परसंग ॥६०॥
सब जग भरमा यों फिरै, ज्यौं रामा का रोज।
सतगुर सों सुधि जब भई, पाया हरि का खोज ॥६१॥
थापन पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
कबीर हीरा बनिजिया, मान सरोवर तीर ॥६२॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै भगती खान।
पारब्रह्म किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥६३॥
निश्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर।
निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥६४॥
थिति पाई मन थिर भया, सतगुरु करी सहाय।
अनन्य कथा तिन संचरी, हिरदै रही समाय ॥६५॥
कर कमान सर साधि के, खैंचि जु मारा माँहि।
भीतर बींधे सो मरै, जिव पै जीवै नाँहि ॥६६॥

६१. रामा—भगल। ६२ बनिजिया—खरीदा। ६५ अनिन कथा—एक ध्यान।

१. पा० लोहा पारस परसते। २. पा० मैल। ३. पा० ससा।

चेतन [1]चौकी बैठि के, सतगुरु दीन्ही धीर।
निर्भय होय निःसंक भजु, केवल कहैं कबीर ॥६७॥
जब ही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि।
लागी चोट जु सब्द की, गई कलेजे छानि ॥६८॥
हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेल्या मार।
कह कबीर अंतर बिध्या, सतगुरु का हथियार ॥६९॥
गूगा हूआ बावरा, बहरा हूआ कान।
पाँवन ते पंगुला भया, सतगुरु मारा बान ॥७०॥
ज्ञान कमान रु लौ गुना, तन तरकस मन तीर।
भलक बहै तत सार का, मारा हदफ कबीर ॥७१॥
जो दीसै सो बिनसि है, नाम धरा सो जाय।
कबीर सोई तत गह्यौ, सतगुरु दीन्ह बताय ॥७२॥
कुदरत पाई [1]खबर सों, [2]सतगुरु दिया बताय।
भँवर बिलंबा कमल रस, [3]अब उड़ि अंत न जाय ॥७३॥
सच नाम छाडौं नहीं, सतगुरु सीख दई।
अविनासी सों परसि के, आतम अमर भई ॥७४॥

६९. चचल—चचलता। मेल्या मार—मार हटाई।

७१. हदफ—निशाना।

७३ सदगुरने ससार का सच्चा भेद बता दिया, इस कारण चित्त उससे हटकर परमानन्द में लग गया।

१. पा० खरी सौं। २. पा० चित सों चित्त मिलाय। ३. पा० अब कैसे उडि जाय।

चित चोखा मन निरमला, बुधि उत्तम मति धीर।
सो धोखा नहि [1]विरहही, सतगुरु मिले कबीर ॥७५॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिर बूड़े भव माँहि।
भौसागर की त्रास सें, सतगुरु पकड़े बाँहि ॥७६॥
जीव अधम अति कुटिल हैं, काहु नहीं पतियाय।
ताका औगुन मेटि कर, सतगुरु होय सहाय ॥७७॥
जेहि खोजत ब्रह्मा थके, सुर नर मुनि अरु देव।
कहैं कबीर सुन साधवा, करु सतगुरु की सेव ॥७८॥
काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस।
साहिब अंक पसारिया, ले चल अपने देस ॥७९॥
जाय मिल्यौ परिवार में, सुख सागर के तीर।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥८०॥
जग भूआ विषधर [2]धरै, कहैं कबीर [3]पुकार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥८१॥
अंधा ऊबट जात है, दोनों लोचन नाँहि।
उपकारी सतगुरु मिले, (लै) डारै बस्ती माँहि ॥८२॥
दौड़ आय सो दौड़सी, पहुँचेगा उन देस।
जाय मिले या पुरुष कूं, सतगुरु के उपदेस ॥८३॥

७९. अंक—अँकवार। ८२. ऊबट—बेरस्ते, कुमार्ग।

१. पा० विचरहीं। २. पा० डसै। ३. पा० विचार।

जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥८४॥
सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के बान ।
लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे मान ॥८५॥
सब जग तो भरमत फिरै, ज्यौं जंगल का रोज़ ।
सतगुरु सों सुधि भई, जब देखा कछु मौज ॥८६॥
तीन लोक है देह में, रोम रोम में धाम ।
सतगुरु बिन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥८७॥
सकल जगत जाने नहीं, सो गुरु प्रगटे आय ।
जिन आँखों देखा नहीं, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावे धाम ।
पैंडे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाम ॥८९॥
खेल मचा खेलाडि सों, आनंद जीते जाय ।
सतगुरु के संग खेलतों, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
उलटि सीप पैंडे गई, (जब)भई स्वाँति सों भेट॥९१॥
सीप समुंदर में बसै, रटत पियास पियास ।
सकल समुंद तिनखा गिने, (एक)स्वाँति बुंद की आस॥९२॥
कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
ताकूं सतगुरु कह करै, (जो)औघट डूबै जाय ॥९३॥

डूबा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय।
लोभ नदी की धार में, कहा पड़ो नर सोय ॥९४॥
सत्तु पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
बिन सतगुरु उपदेस, सुरनर मुनि नहि निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सकल जीव को गिनै ॥९६॥
केते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति करु ॥९८॥
अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार।
सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु।
मेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१०१॥
जो सत्तनाम समाय, सतगुरु की परतीति कर।
जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
ततदरसी जो होय, सो तत सार बिचारई।
पावै सत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

१००. अंक—लेख, कर्म की रेखा।

जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥८४॥

सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के बान ।
लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे मान ॥८५॥

सब जग तो भरमत फिरै, ज्यों जंगल का रोज़ ।
सतगुरु सों सूधि भई, जब देखा कछु मौज ॥८६॥

तीन लोक हैं देह में, रोम रोम में धाम ।
सतगुरु बिन नहि पाइये, सच सार निज नाम ॥८७॥

सकल जगत जानै नहीं, सो गुरु प्रगटे आय ।
जिन आँखों देखा नहीं, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥

चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावे धाम ।
पैंडे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाम ॥८९॥

खेल मचा खेलाहि सो, आनंद जीते जाय ।
सतगुरु के संग खेलताँ, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥

सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
उलटि सीप पैंडे गई, (जब)भई स्वाँति सों भेट॥९१॥

सीप समुंदर में बसै, रटत पियास पियास ।
सकल समुंद तिनखा गिनै, (एक)स्वाँति बूंद की आस॥९२॥

कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
ताकूं सतगुरु कह करै, (जो)औघट डूबै जाय ॥९३॥

बूड़ा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय।
लोभ नदी की धार में, कहा पड़ो नर सोय ॥९४॥
सतु पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
बिन सतगुरु उपदेस, सुरनर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सकल जीव को गिने ॥९६॥
केते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति करु ॥९८॥
अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार।
सतगुरु दाया पाइये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु।
मेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१०१॥
जो सत्तनाम समाय, सतगुरु की परतीति कर।
जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

१००. अंक—लेख, कर्म की रेखा।

जग मौसागर माँहि, कहु कैसे बूडत तरै।
गहु सतगुरु की बाँहि, जो जल थल रक्षा करै ॥१०४॥
निजमत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिले।
जगते रहै उदास, ता कहँ क्यों नहि खोजिये॥१०५
यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भवजल जीत ॥१०६॥
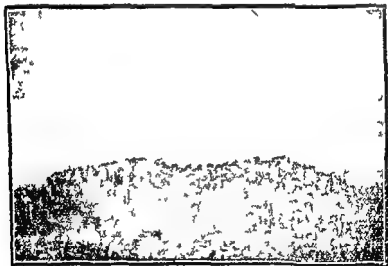
गुरु पारख को अंग।

गुरु लोभी सिष लालची, दोनों खेले दाव।
दोनों बूड़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
गुरु मिला नहि सिष मिला, लालच खेला दाव।
दोनों बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ २ ॥
जाका गुरु है आंधरा, चेला खरा निरंध।
अंधे को अंधा मिला, पड़ा काल के फंद ॥ ३ ॥
जानीता बूझा नहीं, बूझि किया नहि गौन।
अंधे को अंधा मिला, [1]पंथ बतावै कौन ॥ ४ ॥
जानीता जब बूझिया, पैंडा दिया बताय।
चलता चलता तहँ गया, जहाँ निरंजन राय ॥ ५ ॥
अंधा गुरु अंधा जगत, अंधे हैं सब दीन।
गगन मंडल में बज रही, अनहद बानी बीन ॥ ६ ॥
सो गुरु निसदिन बन्दिये, जासों पाया नाम।
नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥ ७ ॥
आगे अंधा कूप में, दूजा लिया बुलाय।
दोनों बूबे बापुरे, निकसे कौन उपाय ॥ ८ ॥

३. निरंध—बिल्कुल अपात्र। ४. जानीता—जानकार से। बूझा—पूछा।

[1] पा० राह।

रात अंधेरी रैन में, अंधे अंधा साथ।
वो बहिरा वो मूंगिया, क्यों करि पूछै बात ॥ ९ ॥
अगम पंथ को चालतां, (सब) अंधा मिलिया आय।
औघाट घाट सूझै नहीं कौन पंथ है जाय ॥१०॥
जाका गुरु है लालची, दया नही सिष माँहि।
उन दोनों कू भेजिये, ऊजड़ कूआ माँहि ॥११॥
जिसका गुरु है लालची, पीतल देखि भुलाय।
सिष पीछै लागा फिरै, (ज्यौं) बछुआ पीछै गाय ॥१२॥
कलि के गुरुवा लालची, लालच लोभै जाय।
सिष पीछै धाया फिरै, (ज्यौं)बछुआ पीछै गाय ॥१३॥
[1]जाके हिय साहिब नहीं, सिष साखों की भूख।
ते जन [2]ऊमा मूखसी, [3](ज्यौं) दाहै दाझा रूख ॥१४॥
सिष साखा चीना भया, गुरु कूं आगम नाँहि।
जेता पेटै मीलि सूं, तेता डूबै माँहि ॥१५॥
माई मूंड़ (उस) गुरु की, जाते भरम न जाय।
आपन बूड़ा धार में, चेला दिया बहाय ॥१६॥
गुरू गुरू में भेद है, गुरू गुरू में भाव।
सोइ गुरू नित बंदिये, सब्द बतावै दाव ॥१७॥

---

९ मूँगिया— गूगा। ११. ऊजड कूआ—अंधाकूवा।
१२. पीतल—पीतलकी मूर्ति।
१ जाके हिरदे गुर नहीं,। २ ऐमा। ३ ज्यों बन दाझा रूख।

पूरे सतगुरु के बिना, पूरा सीष न होय।
गुरु लोभी सिष लालची, [1]दूनी दाझन सोय। ॥१८॥
पूरा सतगुरु ना मिलै, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग यती का पहिरि के, घर घर माँगी भीख ॥१९॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
निकसा था हरि मिलन को, बीच हि खाया बीख ॥२०॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
मूंड मुंडावे मुक्ति कूं, चालि न सकई बीक ॥२१॥
कबीर गुरु हैं घाट के, हाटूं बैठा चेल।
मूंड मुँडाया सांझ कूं, गुरु सवेरे खेल ॥२२॥
पूरा सहजे गुन करै, गुन नहि आवे छेह।
सायर पोषे सर भरै, दान न माँगे मेह ॥२३॥
गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाँहि।
भौसागर की जाल में, फिर फिर गोतौं खाँहि ॥२४॥
जा गुरु ते भ्रम ना मिटै, भ्रान्ति न जिव की जाय।
सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय ॥२५॥

२० बीख–विष. २१. बीक—विस्वा।

२२. गुरु विरागी और चेला संसार का अनुरागी हो तो दोनों का मेल नहीं खाता।

२३. छेह—अंत। सायर-समुद्र।

[1] पा० बूडे माँ लिनि दोय।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सब्द का, भटकै बारं बार ॥२६॥
साँचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल ते निश्चल भया, नहि आवै नहि जाय ॥२७॥
कनफूका गुरु हद का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिले, लहै ठिकाना ठौर ॥२८॥
जा गुरु को तो गम नहीं, पाहन दिया बताय।
सिप सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचा जाय ॥२९॥
सतगुरु ने तो गम कही, भेद दिया अरथाय।
सुरति कमल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥३०॥
सतगुरु का सारा नहीं, सब्द न लागा अंग।
कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेल के संग ॥३१॥
सतगुरु मिले तो क्या भया, जो मन परिगा भोल।
कपास बिनाया कापड़ा, (क्या)करै बिचारी चोल॥३२॥
सतगुरु ऐसा कीजिये, ज्यौं भृंगी मत होय।
पल पल दाव बतावही, हंस न जाय बिगोय ॥३३॥

२८. ससारी गुरु अगम पद को नहीं पहुचा सकते, उस पद को पाने के लिये तो सद्गुरु ढूढना चाहिये।

३१. सारा–वश। सीदडा–तेल का कुप्पा (कुप्पी)।

३२. सद्गुरु के मिलने पर भी मलिन हृदय उससे लाभ नहीं उठा सकता। कपास को कूटकर बनाया हुआ कपडा कभी साफ़ नहीं बन सकता। चोल खद्दर का लाल रंगा थान।

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाँहि।
दरिया सों न्यारा रहै, दीसै दरिया माँहि ॥३४॥
सतगुरु ऐसा कीजिये, जाका पूरन मंन ।
अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धंन ॥३५॥
गुरु तो ऐसा कीजिये, (सब) वस्तु लायक होय।
यहाँ दिखावै सब्द में, वहँ पहुंचावै लोय ॥३६॥
गुरु तो ऐसा कीजिये, तत्व दिखावै सार ।
पार उतारे पलक में, दरपन दे दातार ॥३७॥
गुरु की सूनी आतमा, चेला चहै निज नाम ।
कहैं कबीर कैसे बसे, धनी विहूना गाम ॥३८॥
काचे गुरु के मिलन से, अगली भी बिगड़ी ।
चाले थे हरि मिलन को, दूनी बिपति पड़ी ॥३९॥
कबीर बेड़ा सार का, ऊपर लादा सार ।
पापी का पापी गुरू, यौं बूड़ा संसार ॥४०॥
ऐसा गुरु ना कीजिये, जैसी लटलटी राब।
माखी जामें फँसि रहै, वा गुरु कैसें खाब ॥४१॥
गुरू नाम है गम्य का, सीष सीख ले सोय ।
बिनु पद बिन मरजाद नर, गुरु सीष नहि कोय ॥४२॥

---

३४. लोभ और मोह से रहित होने के कारण संसार में रहते हुए भी जो उससे न्यारे हों ऐसे सद्गुरु की शरण में जाना चाहिये।

गु अंधियारी जानिये, रु कहिये परकास ।
मिटे अज्ञान तम ज्ञान ते, गुरू नाम है तास ॥४३॥
भेरे चढ़िया झाँझरे, भौसागर के माँहि ।
जो छाँहै तो बाचि है, नातर बूड़े माँहि ॥४४॥
जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय ।
कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय ॥४५॥
गुरवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास ।
राम नाम धन बेचि कै, करै सीष की आस ॥४६॥
गुरवा तो घर घर फिरे, दीक्षा हमरी लेहु ।
कै बूड़ौ कै ऊबरौ, टका परदनी देहु ॥४७॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर सुजान ।
पांच सद्ध धुनकार धुन, बाजे सद्द निसान ॥४८॥
छीपा रँगे सुरंग रँग, नीरस रस करि लेय ।
ऐसा गुरु पै जो मिले, सीष मोक्ष पुनि देय ॥४९॥

४३. गु-शद्धस्त्वन्धकारे हि, रु-शद्ध स्तन्निवर्तकः ।
अज्ञाननाशको यस्तु, स गुरु सम्प्रकीर्तितः ॥

जिससे अज्ञान की निवृत्ति हो ऐसे ज्ञान ही का नाम गुरु है और उस ज्ञान को जो अपने हृदय में धरता है वही शिष्य है । बिना इस धारणा के गुरु और शिष्य दोनों ही केवल नाम मात्र के हैं ।

४७. परदनी–धोती ।

४८. जो अपने हृदय में परम तत्व का परिचय करा दे वही गुरु पूरा है । और ब्रह्मांड में पांच अनहद शद्ध का परिचय करा दे ।

मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया सुहाग।
दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ॥८०॥
ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥८१॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन सों रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, (जब)मिटी आपनी आग॥८२॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥८३॥
गुरु बतावे साध को, साध कहे गुरु पूज।
[1]अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥८४॥
नादी [2]बिंदी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
(कोइ)तख्त तले का ना मिला, जासों पूछूं भेद ॥८५॥
तख्त तले की सो कहे, (जो)तख्त तले का होय।
माँझ महल की को कहे, पड़दा गाढ़ा सोय ॥८६॥
माँझ महल की गुरु कहे, देखा जिन घरबार।
कुंजी दीन्ही हाथ कर, पड़दा दिया उघार ॥८७॥

८५. नादी– नाद की उपासना करनेवाले। बिंदी–वेदों के पारगत वादविवाद करनेवाले। तख्ततले का–परम तत्व का ज्ञाता।

८६. सत्य पुरुष का परिचय वही करा सकता है जो उसका भेदी हो। अविनाशी के महल में दूसरा नहीं जा सकता; क्यों कि वह बड़े पड़दे में है।

1. पा० अरस परस के मेल में। 2. पा० बादी।

वस्तू कहिं ढूंढे कहीं, किहि विधि आवै हाथ ।
कहैं कबीर तब पाइये, (जब)भेदी लीजै साथ ॥५८॥
भेदी लीया साथ करि, दीन्हा वस्तु लखाय ।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥५९॥
घट का पड़दा खोलि करि, सनमुख ले दीदार ।
बाल सनेही सांइया, आदि अंत का यार ॥६०॥
गुरू मिला तब जानिये, मिटे मोह तन ताप ।
हरप सोक व्यापै नहीं, तब गुरु आपै आप ॥६१॥
सिप साखा बहुते किया, सतगुरु किया न मीत ।
चाले थे सत लोक को, बीच हि अटका चीत ॥६२॥
बंधे को बंधा मिला, छूटै कौन उपाय ।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥६३॥
गुरु बेचारा क्या करै, (जो) हिरदा भया कठोर ।
नौ नेजा पानी चढ़ा, पथर न भीजी कोर ॥६४॥
गुरु बेचारा क्या करै, सब्द न लागा अंग ।
कहैं कबीर मैली गजी, कैसे लागै रंग ॥६५॥
गुरु है पूरा; सिप है सूरा, बाग मोरि रन पैठ ।
सत सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥६६॥
कहता हूं कहि जात हूं, देता हूं हेला ।
गुरु की करनी गुरु जानै, चेला की चेला ॥६७॥

---

६४. नेजा–६ (छै) हाथ का एक माप । कोर–किनार ।
६६. बाग–लगाम । मनको रोक कर ध्यान में लगो ।६७.हेला–आवाज़ ।

गुरु शिष्य हेरा को अंग।

‡ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस।
भौसागर में [1]डूबते, कर गहि काढ़े केस॥ १॥

*ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचों लड़के पटकि के रहे नाम लौ लाय॥ २॥

ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूँ दुख रोय।
जासों कहिये भेद को, सो [2]फिर बैरी होय॥ ३॥

ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देय बताय।
सुन्न मंडल में पुरुष है, ताहि रहूं लौ लाय॥ ४॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान।
ढोल दमामा ना सुनै, सुरति बिहूना कान॥ ५॥

---

‡ इस संकेतवाली साखी ' गुरुहेरा ' की है।

* और इस संकेत की ' शिष्य-हेरा ' का है।

गुरु शिष्य-हेरा का यह अर्थ है कि, उत्तम अधिकारी को गुरु ढूढते हैं और पूरे सद्गुरु को शिष्य ढूढता है। बिना दोनों के पूरा मिले कार्य की सिद्धि नहीं होती।

२. पाचों लड़के-काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद।

३. भेद की-सत्य उपदेश की। ५. दमामा-नकारा।

१. पा० बूड़ते। २. पा० उठि।

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान।
अपना करि किरपा करै, लो उतारि मैदान ॥ ६ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूं निसंक।
जासो हिरदा की कहूं, सो फिरि माँडे कंक ॥ ७ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जलती जोति बुझाय।
कथा सुनावै नाम की, तन मन रहै समाय ॥ ८ ॥
ऐसा कोई ना मिला, टारै मन का रोस।
जा पैंडे साधू चले, (तू)चलि न सकै इक कोस ॥९॥
ऐसा कोई ना मिला, सब्द देऊँ बतलाय।
अच्छर और निहअच्छरा, तामें रहै समाय ॥१०॥
हम घर जारा आपना, [1]लूका लीन्हा हाथ।
[2]वाहू का घर फूंक दूं, (जो) चलै हमारे साथ ॥११॥
हम देखत जग जात है जग देखत हम जाँहि।
ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि छुड़ावै बाँहि ॥१२॥
सरप हि दूध पियाइये, सोई विष है जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपे हि विष खाय ॥१३॥

६. मैदान–संसार से बाहर। ७. कंक–झगड़ा।

१०. अक्षर–जीव। निहअक्षर–परम पुरुष।

११ लूका–जलती लकड़ी।

१३. भलाई का बदले में बुराई करनेवाले संसार में बहुत हैं, परन्तु बुराई के बदले भलाई करनेवाले विरले हैं।

१. पा० लिया मुराडा हाथ। पा० अब घर जारू तासका,

तीन सनेही बहु मिले, चौथा मिला न कोय ।
सब हि पियारे राम के, बैठे परबस होय ॥१४॥
जैसा ढूंढत मैं फिरू, तैसा मिला न कोय ।
ततवेता तिरगुन रहित, निरगुन सो रत होय ॥१५॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
घायल को घायल मिले, राम भक्ति दृढ़ होय ॥१६॥
माया डोलै मोहनी, बोलै कडुवा बैन ।
कोई घायल ना मिले, साँई हिरदा सैन ॥१७॥
प्रेमी ढूंढत मैं फिरूं, प्रेमी मिले न कोय ।
प्रेमी सों प्रेमी मिले, विष से अमृत होय ॥१८॥
जिन ढूंढा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठ ।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठ ॥१९॥
सतगुरु हम सों रीझि के, एक दिया उपदेस ।
भौ सागर में बूडता, कर गहि काढे केस ॥२०॥
आदि अंत अब को नहीं, निज थाने का दास ।
सब संतन मिलि यौं रमे, ज्यौं पुहुपन में बास ॥२१॥
पुहुपन केरी बास ज्यों, व्यापि रहा सब ठाँहि ।
बाहर कबहु न पाइये, पावै संतों माँहि ॥२२॥

---

१४. तीन सनेही—सुत, मित और नारी के प्रेमी । चौथा—सद्गुरु का प्रेमी । १६ घायल—रामवियोगी ।

बिरछा पूछे बीज सो, कौन तुम्हारी जात।
बीज कहे ता वृच्छ सों, कैसे मैं फल पात ॥२३॥

बिरछा पूछे बीज को, बीज वृच्छ के माँहि।
जीव जो ढूंढे ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाँहि ॥२४॥

डाल जो ढूंढे मूल को, मूल डाल के पाँहि।
आप आप को सब चले, (कोय)मिलेमूलमों नाँहि ॥२५॥

डाल भई है मूल तें, मूल डाल के माँहि।
सब हि पड़े जब भरम में, मूल डाल कछु नाँहि ॥२६॥

मूल कबीरा गहि चढ़े, फल खाये भरि पेट।
चौरासी की भय नहीं, ज्यों चाहे त्यों लेट ॥२७॥

आदि हती सब आपमें, सकल हती ता माहि।
ज्यों तरुवर के बीज में, डार पात फल छाँहि ॥२८॥

हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बूंद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय ॥२९॥

हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुंद समाना बूंद में, सो कित हेरा जाय ॥३०॥

---

२९. बूंद-जीव। समुंद-मालिक। उपासक अपने आपको मालिक में मिलाना चाहते हैं। इस साखी में उपासकों की भावना का वर्णन है।

३०. इस साखी में ज्ञानियों की धारणा का वर्णन है।

कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेह ।
जिहि जिहि औषध गुरु मिले, सो सो औषध देह ॥३१॥

परगट कहूं तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
सहना छिपा पयाल में, को कहि बैरी होय ॥३२॥

जैसे सती पिय सँग जरे, आसा सब की त्याग ।
सुघर कूर सोचै नहीं, सिख पतिवर्त सुहाग ॥३३॥

सरबस सीस चढाइये, तन कृत सेवा सार ।
भूख प्यास सहै ताड़ना, गुरु के सुरति निहार ॥३४॥

गुरु को दोष रती नहीं, सीष न सोधे आप ।
सीष न छाँडे मनमता, गुरु हि दोष का पाप ॥३५॥

जैसी सेवा सिष करे, तस फल प्रापत होय ।
जो बोवै सो लोवही, कहँ कबीर बिलोय ॥३६॥

हिरदे ज्ञान न ऊपजे, मन परतीत न होय ।
ताको सतगुरु कहा करै, घनघसि कुल्हरा न होय॥३७॥

---

३१. बैद–गुरु । औषध–उपदेश । गुरु–सत्यपुरुष । ३२. सहना–~अविगतपुरुष । पयार–पीरा, माया । ३३. सुघर–अच्छा । कूर–बुरा । ३४. तनकृत सेवा सार–तन से अच्छी सेवा करता है । ३६. लोवही–काटता है । बिलोय–सोच समझकर । ३७. घनघसि....होय–लुहार के घन को घिसकर कोई उसका कुल्हड़ा नहीं बना सकता ।

घनघसिया जोई मिले, घन घसि काढे धार ।
मूरख तें पंडित किया, करत न लागी बार ॥३८॥
सिष पूजै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साध ।
कहैं कबीर गुरु सीप को, मत है अगम अगाध ॥३९॥
गुरु सोंज ले सीष का, साधु संत को देत ।
कहै कबीरा सौंज से, लागे हरि सों हेत ॥४०॥
सिष किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
कीच कीच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
देस दिसन्तर मैं फिरूं, मानुप बड़ा सुकाल ।
जा देखै सुख ऊपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
सत को ढूंढत मैं फिरूं, सतिया मिलै न कोय ।
जब सत कूं सतिया मिले, विप तजि अमृत होय ॥४३॥
स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय ।
चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के मांय ॥४४॥
धन धन सिप की सुरतिकूं, सतगुरु लिये समाय ।
अन्तर चितवन करत है, (गुरु)तुरत हि ले पहुंचाय ॥४५॥
गुरु विचारा क्या करै, वांस न ईंधन होय ।
अमृत सींचै बहुत रे, बूंद रही नहिं कोय ॥४६॥

४० सौंज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुप...सुकाल-मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिष भया, हिरदे कपट न जाव ।
आलो पालो दुख सहै, चढ़ि पाथर की नाव ॥४७॥
चच्छु होय तो देखिये, जुक्ती जाने सोय ।
दो अंधे को नाचनो, कहो काहि पर मोय ॥४८॥
गुरु कीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
बिना विचारे गुरु करै, पड़ै चौरासी खानि ॥४९॥
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिषसों कछु न लेय ।
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

---

४८. दो अंधे....मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो इनमें से किसी पर किसी के नाच का असर नहीं हो सकता, क्यों कि दोनों ही बिना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

घनघसिया जोई मिले, धन घसि काढे धार ।
मूरख तें पंडित किया, करत न लागी बार ॥३८॥
सिष पूजै गुरु आपना, गुरु पूजे सब साध ।
कहै कबीर गुरु सीष को, मत है अगम अगाध ॥३९॥
गुरु सोज ले सीष का, साधु संत को देत ।
कहै कबीरा सौज से, लागे हरि सौं हेत ॥४०॥
सिष किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
कीच कीच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
देस दिसन्तर मैं फिरूं, मानुष बड़ा सुकाल ।
जा देखे सुख ऊपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
सत को ढूंढत मैं फिरूं, सतिया मिलै न कोय ।
जब सत कूं सतिया मिले, विष तजि अमृत होय ॥४३॥
स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के मांय ॥४४॥
धन धन सिष की सुरतिकूं, सतगुरु लिये समाय ।
अन्तर चितवन करत है, (गुरु)तुरत हि ले पहुंचाय ॥४५॥
गुरु विचारा क्या करै, बांस न ईंधन होय ।
अमृत सींचै बहुत रे, बूंद रही नहिं कोय ॥४६॥

---

४०. सौंज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष....सुकाल-मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिष भया, हिरदे कपट न जाव ।
आलो पालो दुख सहै, चढ़ि पाथर की नाव ॥४७॥
चन्तु होय तो देखिये, जुक्ती जाने सोय ।
दो अंधे को नाचनो, कहो काहि पर मोय ॥४८॥
गुरु कीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
बिना विचारै गुरु करै, पड़ै चौरासी खानि ॥४९॥
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिषसों कछु न लेय ।
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

---

४८. दो अंधे....मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी के नाच का असर नहीं हो सकता; क्यों कि दोनों ही बिना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

निगुरा को अंग।

जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार ।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार ॥ १ ॥

गुरु बिनु अहिनिस नाम ले, नहीं संत का भाव ।
कहै कबीर ता दास का, पड़ै न पूरा दाव ॥ २ ॥

गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान ।
[1]गुरु बिन सब निष्फल गया, पूछौ बेद पुरान ॥ ३ ॥

गरभ योगेसर गुरु बिना, लागे हरि की सेव ।
कहै कबीर बैकुंठ ते, फेर दिया सुकदेव ॥ ४ ॥

जनक बिदेही गुरु किया, लागा हरि की सेव ।
कहै कबीर बैकुंठ में, उलटि मिला सुकदेव ॥ ५ ॥

चौसठ दीवा जोय के, चौदह चंदा माँहि ।
तिहि घर किसका चांदना, जिहि घर सतगुरु नाँहि ॥६॥

निसि अँधियारी कारनै, चौरासी लख चंद ।
गुरु बिन येते उदय हैं, तहू सुद्रिष्टि हि मंद ॥ ७ ॥

---

१. नगर नायका—वेश्या।

६. चौसठ दीपा—चौसठ कला। चौदह चंदा—चौदह विद्या।

१. पा० सो तो दान हराम है।

दारुक में पावक बसै, घुनका घर किय जाय।
(यौं)हरिसंग विमुख निगुरको, काल ग्रास ही खाय ॥ ८ ॥

पूरे को पूरा मिलै, पूरा पड़सी दाव ।
निगुरु तो कुवट चलै, जब तब करै कुदाव ॥ ९ ॥

जो कामिनी पड़दे रहै, सुनै न गुरुमुख बात ।
सो तो होगी कूकरी, फिरै उघारै गात ॥१०॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी होय ।
गली गली भूंकत फिरै, टूक न डारै कोय ॥ ११ ॥

कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा रासभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥१२॥

गगन मंडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुर महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर ॥१३॥

कबीर हृदय कठोर के, सब्द न लागै सार।
सुधि बुधि के हिरदे बिधे, उपजे ज्ञान विचार ॥१४॥

---

८. दारुक—लकड़ी। पावक—अग्नि। घुनका—घुन।

यद्यपि लकड़ी में आग रहती है; परन्तु वह उसे-घुन को नहीं बचा सकती। इसी प्रकार गुरु से विमुख नर हृदय में राम के रहते हुए भी काल के द्वारा मारा जाता है। ९. कुवट कुमार्ग।

१०. स्त्रियों को भी अन्तरात्मा की शांति के लिये गुरु दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये। १२. रासभ–गदहा।

झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहन ऊपर मेह।
माटी गलि पानी भई, पाहन वाही नेह ॥१५॥
हरिया जानै रूखड़ा, उस पानी का नेह।
सूखा काठ न जानि है, कितहूं बूड़ा मेह ॥१६॥
कबीर हरिरस बरसिया, गिरि परबत सिखराय।
नीर निवानू ठाहरै, ना वह छापर डाय ॥१७॥
पसुवा सों पानो पर्यो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, बोवै दूना बीज ॥१८॥
ऊंचै कुल के कारनै, बांस बध्यो हंकार।
राम भजन हिरदे नहीं, जार्यो सब परिवार ॥१९॥
कबीर चंदन के भिरै, नीम भी चंदन होय।
बूड्यो बांस बड़ाइयाँ, यों जनि बूड़ो कोय ॥२०॥
कबीर लहरि समुद्र की, मोती बिखरे आय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥२१॥
सारा लश्कर ढूंढिया, सारदूल नहि पाय।
गीदड़ को सर बाहिके, नाषै काम गँवाय ॥२२॥
सुकदेव सरिखा फेरिया, तो को पावै पार।
गुरु बिन निगुरा जो रहै, पड़ै चौरासी धार ॥२३॥

१७. निवानू-तालतलैया, नीची जगह। ठाहरै-ठहरता है। छापर-डाय-ऊंची समतल भूमि।

१८. पानो-मुकाबला, काम। २०. भिरै-पास।

¹सत्त नाम है मोतिया, ²सचराचर रहो छाय ।
सुगुरे थे सो चुनि लिये, चूक पडी निगुराय ॥२४॥
कंचन मेरू अरपहीं, अरपै कनक भंडार ।
कहैं कबीर गुरु बेमुखी, कबहुं न पावै पार ॥२५॥
दारू के पावक करै, घुनक जरी (क्यौं)न जाय ।
कहैं कबीर गुरु बेमुखी, काल पास रहि जाय ॥२६॥
साकट का मुख बिंब है, निकसत बचन भुवंग ।
ताकी औषधि मौन है, विष नहीं व्यापै अंग ॥२७॥
साकट कहा न कहि चलै, सुनहा कहा न खाय ।
जो कौवा मठ हगि भरै, (तो)मठ को कहा नशाय॥२८॥
साकट सूकर कूकरा, तीनों की गति एक ।
कोटि जतन परमोधिये, तऊ न छाडै टेक ॥२९॥
टेक न कीजै बावरे, टेक माहि है हानि ।
टेक छाडि मानिक मिले, सतगुरु वचन प्रमान ॥३०॥
टेक करै सो बावरा, टेकै होवै हानि ।
जो टेकै साहिब मिले, सोइ टेक परमान ॥३१॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।
तत्व सरीरौं झड़ि पड़ै, पाप रहै लपटाय ॥३२॥
साकट संग न बैठिये, करन कुबेर समान ।
ताके संग न चालिये, पड़ि है नरक निदान ॥३३॥

२७ बिंब-सापका बिल ।
१ पा० सद्य । २ पा० जाहर ।भनर विराय ।

साकट ब्राह्मन मति मिलो, वैस्नव मिलु चँडाल ।
अंग भरे भरि भेटिये, मानो मिले दयाल ॥३४॥
साकट सन का जेवरा, भीजै सो करराय ।
दो अच्छर गुरु बाहिरा, बांधा जमपुर जाय ॥३५॥
साकट से सूकर भला, सूचौ राखै गाँव ।
बूड़ौ साकट बापुरा, बाइस भरमी नाँव ॥३६॥
साकट हमरे कोऊ नहि, सब ही वैस्नव झारि ।
संसय ते साकट भया, कहैं कबीर बिचारि ।३७॥
साकट ब्राह्मन सेवरा, चौथा जोगी जान ।
इनको संग न कीजिये, होय भक्ति में हान ॥३८॥
साकट संग न जाइये, दे मांगा मोहि दान ।
प्रीत संगाती ना मिले, छाडे नहि अभिमान ॥३९॥
साकट नारी छांडिये, गनिका कीजै नारि ।
दासी है हरि जनन की, कुल नहीं आवै गारि ॥४०॥

३५. जेवरा-रस्सा । ३६ सूची-साफ । बाइस-कौवा । जिस प्रकार समुद्र में नाव पर बैठा हुवा कौवा उड़ाये जाने पर इधर भटक कर नाव पर ही आकर बैठ जाता है । इसी प्रकार निगुरे मनुष्य को ससार में कहीं सुख नहीं मिलता ।

४०. गणिका के हृदय में यदि भक्ति और सुबुद्धि उत्पन्न हो जाय और वह एक की स्त्री बनकर रहना चाहे तो उसे अपना लेना चाहिये । और अपनी स्त्री भी यदि व्यभिचारिणी कुल्टा बन जाय तो उसे त्याग देना चाहिये ।

साकट ते संत होत हैं, जो गुरु मिले सुजान।
राम नाम निज मंत्र दे, छुड़वे चारों खान ॥४१॥
कबीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय।
एक गुवाड़े कदि वड़े, रोज गदहरा गाय ॥४२॥
मैं तोही सों कब कह्या, (तू)साक्ट के घर जाव।
वहती नदिया डूबि मरूं, साकट संग न खाव ॥४३॥
संगति सोई विगुर्चई, जो हैं साकट साथ।
कँचन कटोरा छाड़ि के, सनहक लीन्ही हाथ ॥४४॥
सूता साधु जगाइये, करै ब्रह्म को जाप।
ये तीनों न जगाइये, साकट सिंह रु साप ॥४५॥
आँखों देखा घी भला, ना मुख मेला तेल।
साधू सों झगड़ा भला, ना साकुट सों मेल ॥४६॥
घर में साकट इस्तरी, आप कहावे दास।
ओ तो हैयगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥४७॥
खसम कहावै वैस्नव, घर में साकट जोय।
एक घरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय ॥४८॥
एक अनूपम हम किया, साकट सों वेवहार।
निंदा साटि उजागरो, कीयो सौदा सार ॥४९॥

---

४२. गुवाड़े–गोशाला में। मूर्खों की सभा में मत जाओ, क्यों कि उनको अच्छे और बुरे की पहचान नहीं होती।

४४. विगुर्चई–खराब होती है। सनहक–मिट्टी का कटोरा, सकोरा।

ऊजड़ घर में बैठि के, किसका लीजै नाम ।
साकुट के संग बैठ- के, क्यूं कर पावै राम ॥५०॥
साकुट साकुट कहा करो, फिट साकुट को नाम ।
ताही सें सूअर भला, चोखा राखै गाम ॥५२॥
हरिजन की लातौं भलीं, बुरि साकुट की बात ।
लातो में सुख ऊपजे, बातें इज्जत जात ॥५७॥
साकुट भले हि सरजिया, परनिंदा जु करंत ।
पर को पार उतार के, आप हि नरक परंत ॥५३॥
बैस्नव भया तो क्या भया, साकट के घर खाय ।
बैस्नव साकट दोउ मिलि, नरक कुंड में जाय ॥५४॥
सूने मंदिर पैठतौं, नहीं धनी की लाज ।
कूकर कीने फिरत हैं, क्यौं करि सरगो काज ।५०॥
पारब्रह्म बूडो मोतिया, झडी बाँधि सिखर ।
सुगरा सुगरा चुनि लियां, चूक पड़ी निगुर ॥५६॥
बेकामी को सिरजि निवावे, सांटि खोवै भालि गँवावे ।
दास कबीर ताहि को भावे, रारि सँभै सनमुख सरसावें॥५७॥
हरिजन आवत देखिके, मोहडो सूख गयो ।
भाव भक्ति समुझ्यो नहीं, मूरख चूक गयो ॥५८॥
दासी केरा पूत जो, पिता कौन से कहै ।
गुरु निगुरे नर भरमत फिरैं, मुक्ति कहा से लहै ॥५९॥
निगुरा ब्राह्मन नहिं भला, गुरुमुख भला चमार ।
देवतन से कुत्ता भला, नित उठि भूंके द्वार ॥६०॥

साधु को अंग।

कबीर दरसन साधु के, साहिब आवै याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद[1] ॥ १ ॥

कबीर दरसन साधु का, करत न कीजै कानि[2]।
ज्यों उद्यम से लक्ष्मी, आलस मन से हानि ॥ २ ॥

[1]कबीर सोई दिन भला, जा दिन [2]साधु मिलाय।
अंक भरे भरी भेटिये, पाप [3]सरीरों जाय ॥ ३ ॥

कबीर दरसन साधु के, बड़े भाग दरसाय।
जो होवै सूली सजा, कांटै ह्वै टरि जाय ॥ ४ ॥

दरसन कीजै साधु का, दिन में कइ कइ बार।
आसोजा[5] का मेह ज्यौं, बहुत करै उपकार ॥ ५ ॥

कई बार नहि करि सकै, दोय वखत करि लेय।
कबीर साधू दरस ते, काल दगा नहि देय ॥ ६ ॥

---

१. बाद=बेकाम। २. कानि=मान मर्यादा-अहंकार।

४. सन्तों के दर्शन की ऐसी महिमा है कि सूली की सजा के बदले कांटा लगकर रह जाता है।

५. आसोजा=आश्विन्।

१. पा० कबीर सो दिन निरमला, । २. पा० संत । ३. पा० देहका ।

दोय वखत नहि करि सकै, दिन में करु इक वार।
कबीर साधू दरस ते, उतरे भौजल पार ॥ ७ ॥
एक दिना नहि करि सकै, दूजे दिन करि लेह।
कबीर साधू दरस ते, पावै उत्तम देह ॥ ८ ॥
दूजे दिन नहि करि सकै, तीजे दिन करु जाय।
कबीर साधू दरस ते, मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥ ९ ॥
तीजे चौथे नहि करै, वार वार करु जाय।
यामें विलँब न कीजिये, कहै कबीर समुझाय ॥१०॥
वार वार नहि करि सकै, पाख पाख करि लेय।
कहै कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय॥११॥
पाख पाख नहि करि सकै, मास मास करु जाय।
यामें देर न लाइये, कहै कबीर समुझाय ॥१२॥
मास मास नहि करि सकै, छठे मास अलवत्त।
यामें ढील न कीजिये, कहै कबीर अविगत्त ॥१३॥
छठे मास नहि करि सकै, वरस दिना करि लेय।
कहै कबीर सो भक्तजन, जम हि चुनौती देय ॥१४॥
वरस वरस नहि करि सकै, ताको लागे दोष।
कहै कबीरा जीव सो, कबहुं न पावै मोष ॥ १५ ॥
मात पिता सुत इस्तरी, आलस वंधु कानि।
साधु दरस को जब चलै, ये अटकावै आनि ॥१६॥

इन अटकाया ना रहै, साधु दरस को जाय।
कबीर सोई संत जन, मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥१७॥
साधु चलत रो दीजिये, कीजै अति सनमान।
कहै कबीर कछु भेंट धरु, अपने बित अनुमान ॥१८॥
खाली साधु न बिदा करु, सुनि लीजो सब कोय
कहै कबीर कछु भेंट धरु, जो तेरे घर होय ॥१९॥
मोहर रुपैया पैसा, छाजन भोजन देय।
कह कबीर सो जगत में, जनम सफल करि लेय॥२०॥
हाथी घोडा गाय भैंस, रथ अरु गाडी भवन।
कबीर दीजै साधु को, कीया चाहै गवन ॥२१॥
बेटा बेटी इस्तरी, साधु चहै सो देय।
सिर साधु के अरपहीं, जनम सुफल करि लेय ॥२२॥
कबीर दरसन साधु के, खाली हाथ न जाय।
यही सीख बुधि लीजिये, कहै कबीर समुझाय ॥२३॥

---

२२ ऊपर की चार साखियों में साधुओं के निमित्त तन मन धन और सर्वस्व अर्पण करने का बयान किया है। शरणागत का यही अर्थ है कि सब कुछ गुरु को सौंप दिया जाय, परन्तु गुरु की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है। गुरु की पहिचान इस साखी में बतलाई गई है–"तन मन ताको दीजिये जाके विषया नाहिं। आपा सबही डारके राखे साहब माहिं"। अर्थात जो विषय विकार से सर्वथा रहित हो उन्हीं की सेवा में सब कुछ अर्पण करे। अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों की हानि है।

सुनिये पार जु पाइया, छाजन भोजन आनि।
कहैं कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२४॥
कबीर लौंग इलायची, दातुन माटी पानि।
कहैं कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२५॥
टूका माहीं टूक दे, चीर माहिं सों चीर।
साधू देत न सकुचिये, यों कहैं सत्त कबीर ॥२६॥
कंचन दीया करन ने, द्रौपदी दीया चीर।
जो दीया सो पाइया, ऐसे कहैं कबीर ॥२७॥
निराकार निजरूप है, प्रेम प्रीति सों सेव।
जो चाहै आकार को, साधू परतछ देव ॥२८॥
साधू आवत देखि के, चरनौं लागौ धाय।
क्या जानौ [1]इस भेष में, [2]हरि आपै मिल जाय ॥२९॥
साधू आवत देखि करि, हंसी हमारी देह।
माथा का ग्रह उतरा, नैनन बढ़ा सनेह ॥३०॥
साधू आवत देखि के, मनमें करै मरोर।
सो तो होसी चूहरा, बसै गांव की [3]ओर ॥३१॥
साधु आया पाहुना, मागै चार रतंन।
धुनी पानी साथरा, सरधा सेती अंन ॥३२॥

---

२४. छाजन---कपड़ा। २६ चीर---कपड़ा। ३२. साथरा -- बिछौना
१ पा० किस। २ पा० साहेब हीं ३ पा० छोर।

साधू दया साहिब मिले, उपजा परमानंद ।
कोटि विघन पलमें टलै, मिटै सकल दुख दंद ॥३३॥
साधू सब्द समुद्र है, जामें रतन भराय ।
मंद भाग मुट्ठी भरे, कंकर हाथ लगाय ॥३४॥
साधु मिलै यह सब टलै, काल जाल जम चोट ।
सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन के पोट ॥३५॥
साधु सेव जा घर नहिं, सतगुरु पूजा नाँहि ।
सो घर मरघट जानिये, भूत बसै तेहि [1]माँहि ॥३६॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत मोती माँहि ।
वस्तु ठिकानै पाइये, नाल खाल में नाँहि ॥३७॥
साधु बड़े संसार में, हरि ते अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करै, [2]साहिब हरि नहि होय॥३८॥
साधु बिरछ सतनाम फल, सीतल सब्द बिचार ।
जग में होते साधु नहि, जरि मरता संसार ॥३९॥
साधु हमारी आतमा, हम साधुन की देह ।
साधुन में हम यों रहैं, ज्यौं बादल में मेह ॥४०॥
साधु हमारी आतमा, हम साधुन की सांस ।
साधुन में हम यों [3]रहैं, ज्यौं फूलन में बास ॥४१॥
साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जीव ।
साधुन में हम यों रहैं, ज्यौं पय मध्ये घीव ॥४२॥

१. पा० ठाँहि । २ पा० साधू साहिब होय । ३. पा० रमैं ।

ज्यौं पय मद्धे घीव है, (त्यौं) रमी रहा सब ठौर।
वक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ै ते और ॥४३॥
साधु नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्रछालो अंग।
कहैं कबिर निरमल भया, हरि भक्तन के संग ॥४४॥
साधु मिले साहिब मिले, अन्तर रही न रेख।
मनसा वाचा करमना, साधू साहिब एक ॥४५॥
साधू को उठि भेटिये, मुख ते कहिये राम।
नातो साधु सरूप को, करनी सो नहिं काम ॥४६॥
साधुन के मैं संग हूं, अन्त कहूं नहिं जाँव।
जु मोहि अरपै प्रीतिसों, साधुन मुख है खाँव ॥४७॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाँहि।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाँहि ॥४८॥
[1]साधु बड़े परमारथी, घन ज्यौं बरसै आय।
तपन बुझावै और की, अपनो पारस लाय ॥४९॥
साधु बड़े परमारथी, सीतल जिनके अंग।
तपन बुझावै और की, दे दे अपनो रंग ॥५०॥
आवत साधु न हरषिया, जात न दीया रोय।
कहैं कबिर वा दास की, मुक्ति कहां ते होय ॥५१॥
छाजन भोजन प्रीति सों, दीजै साधु बुलाय।
जीवत जस है जगत में, अन्त परम पद पाय ॥५२॥

४६. नातो-सम्बन्ध। ४९ पारस-ज्ञान। ५० रंग-स्वरूप, स्वभाव।
१. पा० सत।

सरवर तरुवर संतजन, चौथा बरसै मेह।
परमारथ के कारनै, चारौं धारी देह ॥५३॥
बिरछा कबहु न फल भखै, नदी न अँचवै नीर।
परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर ॥५४॥
[1]अलख पुरुष की आरसी, साधु ही की देह।
लखा जु चाहै अलख को, इनही में लखि लेह ॥५५॥
सुख देवै दुख को हरै, दूर करै अपराध।
कहैं कबिर वह कब मिलै, परम सनेही साध ॥५६॥
जाति न पूछो साधु की, [2]पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥५७॥
हरि दरबारी साधु हैं, इन ते सब कुछ होय।
बेगि मिलावैं राम को, इन्हैं मिलै जु कोय ॥५८॥
कह अकास को फेर है, कह(हां) धरती का तोल।
कहा साधु की जाति है, कह(हां) पारस का मोल॥५९॥

५४. अँचवै-पीती है।

५५. सन्तों का हृदय दर्पण के समान निर्मल होता है। अतएव उसमें अलख पुरुष के दर्शन हो सकते हैं।

५८. हरि दरबारी-हरि के दरबार में रहनेवाले।

५९. जिस प्रकार आकाश की गोलाईका अन्दाज, पृथ्वी का तोल और पारस का मोल नहीं होता, इसी प्रकार साधु की भी जाति नहीं होती।

१. पा० निराकार की। २. पा० जो पूछो तो ज्ञान।

हरि सों तू मति हेत करु, कर हरिजन सों हेत।
माल मुल्क हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ॥६०॥
साधू खोजा राम के, धसै जु महलन माँहि।
औरन को परदा लगे, इनको परदा नाँहि ॥६१॥
जा घर साधु न सेवहीं, पारब्रह्म पति नाँहि।
ते घर मरघट सारिखा, भूत बसैं वा ठाँहि ॥६२॥
साधुन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव।
चंदन की कुटकी भली, ना बाबुल बनराव ॥६३॥
पुर पट्टन सूबस बसै, आनन्द ठाँवै ठाँव।
राम सनेही बाहिरा, ऊजड़ मेरे भाव ॥६४॥
हयवर गयवर सघन घन, छत्रपति की नारि।
तासु पटतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥६५॥
क्यों नृपनारी निन्दिये, पनिहारी को मान।
(वह) मांग सँवारै पीव कूं, नित वह सुमिरै राम ॥६६॥
साधुन की कुतिया भली, बुरी साकट की माय।
वह बैठी हरिजस सुनै, (वह)निन्दा करनै जाय॥६७॥

६०. हरिजन–हरि के भक्त, साधु सन्त।

६१. खोजा–हिजडे। राजपूताने में रानियों के महलों में हिज[ड़ों] का पहरा रहता है। उनका पडदा नहीं होता।

६३. बाबुल–बबूल। ६५. हयवर गयवर–अनेक साजों से सजी हु[ई]

तीरथ न्हाये एक फल, साधु मिले फल चार।
सतगुरु मिलै अनेक फल, कहैं कबीर विचार ॥६८॥
साधु सिद्ध बहु अन्तरा, साधु मता परचंड।
सिद्ध जु तारे आप को, साधु तारि नौ खंड ॥६९॥
यही बड़ाई सन्त की, करनी देखो आय।
रज हूं ते झीना रहै, लौछिन हूं गुन गाय ॥७०॥
परमेश्वर ते संत बड़, ताका कह(हा) उनमान।
हरि माया आगै धरै, संत रहै निरवान ॥७१॥
नील कंठ कीडा भखै, मुख वाके हैं राम।
औगुन वाकै नहि लखै, दरसन ही से काम ॥७२॥
अन वैस्नव कोई नहीं, सब ही वैस्नव जानि।
जेता हरि को ना भजै, तेता ताको हानि ॥७३॥
आप साधु करि देखिये, देख असाधु न कोय।
जाके हिरदे हरि नहीं, हानी उसकी होय ॥७४॥
जा सुख को मुनिवर रटैं, सुरनर करैं विलाप।
सो सुख सहजै पाइया, सन्तों संगति आप ॥७५॥
मेरा मन पंछी भया, चढ़ि के चढ़ा अकास।
वैकुंठ हि खाली पड़ा, साहिब सन्तों पास ॥७६॥

---

७१. हरि से सन्त सुखी है, इससे यही प्रमाण है कि हरि को माया लगी रहती है। और साधुजन उससे रहित हैं।

परवत परवत मैं फिरा, कारन अपने राम।
राम सरीखे जन मिले, तिन सारे सब काम ॥७७॥
कबीर सीतल जल नहि, हीम न सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥७८॥
भली भई हरिजन मिले, कहनें आयो राम।
सुरति दसौं दिस जाय थी, अपने अपने काम ॥७९॥
संत मिले जनि बीछुरौ, बिछुरौ यह मम प्रान।
सब्द सनेही ना मिलै, प्रान देह में आन ॥८०॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करु धाम।
जबलग साध न सेवई, तबलग काचा काम ॥८१॥
आसा वासा सन्त का, ब्रह्मा लखै न वेद।
षट दरसन खटपट करैं, बिरला पावै भेद ॥८२॥
वेद थके ब्रह्मा थके, [1]थाके सेस महेस।
[2]गीता हूं की गम नहीं, [3]सत किया परवेस ॥८३॥
धन सो माता सुन्दरी, जाया साधू पूत।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अचूत ॥८४॥

---

८२. षट् दर्शन-जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दरवेश।
छठा कहिये ब्राह्मणा, छै घर छै उपदेश।
८४. अचूत (अऊत)-निर्वंश, बिना वंश के।
१. पा० थकिया शंकर सेष। २. पा. गीता की नहँ गम नहीं।
३. पा० तहँ सतगुरु का देस।

साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाँहि ।
पान फूल [1]छेड़ै नहीं, [2]बसै बगीचा माँहि ॥८५॥
साधू जन सब में रमें, दुःख न काहू देहि ।
अपने मत गाढ़ा रहै, साधन का मत येहि ॥८६॥
साध हजारी कापड़ा, तामें मल न समाय ।
साकट काली कामली, भावै तहाँ बिछाय ॥८७॥
साधू भौंरा जग कली, निस दिन फिरै उदास ।
टुकि टुकि तहाँ बिलंबिया, (जहाँ)सीतल सब्द निवास॥८८॥
साधु सिद्ध बड़ अन्तरा, जैसे आम बबूल ।
वाकी डारी अमी फल, वाकी डारी सूल ॥८९॥
साधु कहावन कठिन है, आगे की सुधि नाँहि ।
सूली ऊपर खेलना, गिरु तो ठौरहि जाहि ॥९०॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यों खांडे की धार ।
डगमगाय तो गिरि पड़े, निहचल उतरै पार ॥९१॥
साधु कहावन कठिन है, लम्बी पेड़ खजूर ।
चढ़ु तो चाखै प्रेमरस, गिरु तो चकना चूर ॥९२॥
साधू चाल जु चालई, साधु कहावै सोय ।
बिन साधन तो सुधि नहीं, साधु कहा ते होय ॥९३॥

८७. हजारी कापड़ा सफेद कपड़े । ८८ टुकि टुकि थोड़ी २ देर ।
१ पा० तोड़ै । २. पा० रहै ।

साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥९४॥
साधु सती औ सूरमा, दई न मोड़ै मूंह ।
ये तीनों भागा बुरा, साहिब जाकी सूंह ॥९५॥
साधु सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
माथा बांधि पताक सों नेजा घालैं चोट ॥९६॥
साधु सती औ सिंघ को, ज्यों लंघन त्यों सोभ ।
सिंघ न मारै मेंढका, साधु न बांधै लोभ ॥९७॥
साधु सिंघ का इक मता, जीवत ही को खाय ।
भाव हीन मिरतक दसा, ताके निकट न जाय ॥९८॥
साधु साधु सब एक हैं, जस अफीम का खेत ।
कोई विवेकी लाल हैं, और सेत का सेत ॥९९॥
साधू तो हीरा भया, ना फूटै घन खाय ।
ना वह बिनसै कुंभ ज्यों, ना वह आवै जाय ॥१००॥
साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
सब्द विवेकी पारखी, [1]ते माथे के मौर ॥१०१॥

---

९४ रसाल-मीठे। ९५. दई-दैव। इनको दैव अपने लक्ष्य से न गिरावे। सूंह-सौगंद। ९६. ओट-आड में। पताक-ध्वजा। नेजा-भाला। ध्वजा से शिर बांधने का यह भाव है कि ध्वजा शिर के साथ रहै।
९७. लंघन—उपवास।

१. पा० सो।

साधू ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक।
बाहर मिलते सों मिलै, अन्तर सब सों एक ॥१०२॥
सदकृपालु दुखपरिहरन, वैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जु होय ॥१०३॥
दुखसुख एक समान है, हरष सोक नहि व्याप।
उपकारी निहकामता, उपजै छोह न ताप ॥१०४॥
सदा रहै सन्तोष में, धरम आप दृढ धार।
आस एक गुरु देव की, और न चित्त विचार ॥१०५॥
सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निर्विकार गंभीर मत, धीरज दया बसात ॥१०६॥
निर्वैरी निहकामता, स्वामी सेती नेह।
विषया सों न्यारा रहै, साधुन का मत येह ॥१०७॥
मान अमान न चित धरै, औरन को सनमान।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥१०८॥
सीलवंत दृढ ज्ञान मत, अति उदार चित होय।
लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥१०९॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान।
सन्तोषी सुख दायका, साधू परम सुजान ॥११०॥
निहचल मत अरु दृढ मता, ये सब लच्छन जान।
साधू सोई जगत में, जो यह लच्छनवान ॥१११॥

मन रंजन पर दुख हरन, वैर भाव बिसराय।
छिमा ज्ञान हिंसा रहित, सो नर साधु कहाय ॥११२॥
इन्द्रिय मन निग्रह करन, हिरदा कोमल होय।
सदा सुद्ध आचार में, रह बिचार में सोय ॥११३॥
और देव नहि चित बसै, मन गुरुचरन बसाय।
स्वल्पाहार भोजन करू, तृस्ना दूर पराय ॥११४॥
और देव नहि चित बसै, बिन प्रतीति भगवान।
मिला (अ)हार भोजन करै, तृस्ना चलै न जान ॥११५॥
षट् बिकार यह देह के, तिन को चित्त न लाय।
सोक मोह प्यास हि छुधा, जरा मृत्यु नसि जाय ॥११६॥
कपट कुटिलता छाँड़ि के, सब सों मित्र हि भाव।
कृपावान सम ज्ञानवत, वैर भाव नहि काव ॥११७॥
कपट कुटिलता दुर्वचन, त्यागी सब सों हेत।
कृपावन्त आसा रहित, गुरू भक्ति सिख देत ॥११८॥
रवि को तेज घटै नहीं, जो घन जुरै घमंड।
साधु बचन पलटै नहीं, पलटि जाय ब्रह्मंड ॥११९॥
जौन चाल संसार की, तौन साधु की नांहि।
डिंभ चाल करनी करै, साधु कहो मति ताहि ॥१२०॥
गांठी दाम न बांधई, नहि नारी सों नेह।
कहैं कबिर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥१२१॥

१२०. डिंभ—कपट।

कोई आवै भाव ले, को (य) अभाव ले आव।
साधु दोउ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥१२२॥

रक्त छाँडि पय को गहे, ज्यौं रे गउ का बच्छ।
औगुन छाडै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥१२३॥

संत न छाडै संतता, कोटिक मिलै असन्त।
मलय भुवंगम वेधिया, सीतलता न तजन्त ॥१२४॥

साकट ब्राह्मन मति मिलो, साधु मिलो चंडाल।
जाहि मिलै सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥१२५॥

कमल पत्र है साधु जन, बसै जगत के माँहि।
बालक केरी धाय ज्यौं, अपना जानत नाँहि ॥१२६॥

हरि दरिया सूभर भरा, साधू का घट सीप।
तामें मोती नीपजै, चढै देसावर दीप ॥१२७॥

बहता पानी निरमला, [१]बंदा गंदा होय।
साधू जन [२]रमता भला, दाग न लागे कोय ॥१२८॥

---

१२४. चन्दन पर सर्पों के लिपटे रहने पर भी वह अपनी शीतलता नहीं छोडता।

१२७ सुभर—पूरा। हरि समुद्र के समान भरपूर और व्यापक है, उसमें संतों का हृदय सीपी के समान है जिससे ज्ञान के मोती निकलकर सारे संसार में फैलते हैं।

१. पा० गदिला। २. पा० रमते भले।

बंधा (भी) पानी निरमला, जो टुक गहिरा होय ।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥१२९॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई औ तूर ।
तीनों निकसि न बाहुरें, साधु सती औ सूर ॥१३०॥
टूटै बरत अकास सों, कौन सकत है झेल ।
साधु सती औ सूर का, अनी उपर का खेल ॥१३१॥
हांसी खेलं हराम है, जो जन राते नाम।
माया मंदिर इस्तरी, नहि साधु का काम ॥१३२॥
उडगन और सुधाकरा, बसत नीर की संध ।
यों साधू संसार में, कबीर पड़त न फंद ॥१३३॥
जौन भाव ऊपर रहै, भितर बसावै सोय ।
भीतर औ न बसावई, ऊपर और न होय ॥१३४॥
तन में सीतल सब्द है, बोलै बचन रसाल ।
कहैं कबिर वा साधु को, गंजि सकै नहि काल ॥१३५॥
तीन लोक उनमान में, चौथा अगम अगाध ।
पँचम दसा है अलख की, जानैगा कोइ साध ॥१३६॥

१३१. बरत—नट के बांस की रस्सी । १३३. पानी में चन्द्रमा और तारागणों का प्रतिबिंब पडता है, परन्तु जाल डालने पर वे उसमें नहीं आते।

१३६. ब्रह्म, विष्णु और शिवलोक त्रिगुणरूप होने के कारण कल्पना के विषय हैं। चौथा निरंजन का धाम अव्यक्त है। इन सब से परे अविगत पुरुष है उसको लखने वाले साधु विरले हैं।

[1]सब बन तो चंदन नहीं, सूरा के दल नाँहि।
सब समुद्र मोती नहि, यौं [2]साधू जग माँहि ॥१३७॥
सिंघन के [3]लेहड़ा नहीं, हंसों की नहि पांत।
लालन की नहि बोरियाँ, साधु न चले जमात ॥१३८॥
स्वांगी सब संसार है, साधू समज अपार।
अलख पंछि कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१३९॥
ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनों लाग।
मिटै जनम की कलपना, जाके पूरन भाग ॥१४०॥
[4]ऊँडा चित अरु सम दसा, साधू गुन गंभीर।
जो धोखा बिचलै नहीं, सोई संत सुधीर ॥१४१॥
चित चैनमें गरकि रहा, आगि न देख्यौ मित्त।
कहाँ कहाँ सल्ल पारि हो, गल वल सहर अनित्त॥१४२॥

---

१३८. लेहड़ा–झुंड। पांत–कतार। बोरिया गून, थैला।

१३९. अलखपक्षी एक प्रकार का पक्षी होता है। सुना जाता है कि यह सदैव आकाशमें रहता है। यहां तक कि उसके अंडे भी आकाश में ही फूटकर बच्चे हो जाते हैं।

१४२. सल्ल पारि हो–मेल प्रेम करोगे। गलवल–गड़बड़।

१. पा० सूरा का तो दल नहीं, चंदन का बन नाँहि।
„ हाट हाट हीरा नहीं, चंदन के बन नाँहि।

२. पा० हरिजन। ३. पा० टोले। ४. पा० ऊंचा चित्त समुद्र का।

कबीर हमरा कोइ नहिं, हम काहू के नाँहि।
पारै पहुंची नाव ज्यौं, मिलि के बिछुरी जाँहि॥१४३॥
आज काल के लोग हैं, मिलि के बिछुरी जाँहि।
लाहा कारन आपने, सोगँद रामकि खाँहि॥१४४॥
कबीर सब जग हेरिया, मेल्यौ कंध चढ़ाय।
हरि बिन अपना कोइ नहिं, देखा ठोकि बजाय॥१४५॥
निसरा पै बिसरा नहीं, तो निसरा ना काहि।
पहिली स्वाद उखालिया, सो फिर खाना नहि॥१४६॥
जो विभूति साधुन तजी, मूढ़ ताहि लपटाय।
ज्यौं हि वमन करि डारिया, स्वानस्वाद करि खाय॥१४७॥
दुनिया बंधन पड़ि गई, साधू हैं निरबंध।
राखै खड्ग जु ज्ञान का, काटत फिरै जु फंद॥१४८॥
कबीर कमलन जल बसै, जल बसि रहे असंग।
साधू जन तैसे रहैं, सुनि सतगुरु परसंग॥१४९॥
मुर्गाबी को देख कर, मन उपजा यह ज्ञान।
जल में गोता मारिकर, पंख रहे अलगान॥१५०॥

---

१४४. लाहा-लाभ।

१४६. संसार छोड़ने पर भी यदि हृदय से उसकी ममता नहीं गई तो छोड़ना किसी काम का न हुआ। उसकी तो वैसी ही दशा है जैसे कुत्ता मुंह से अन्न को गिराकर उसे फिर खा लेता है।

१५०. मुरगाबी–जलकूकड़ी। अलगान–बिना भींगे हुए।

जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नारि।
जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि ॥१५१॥

सन्त समागम परम सुख, जान अलप सुख और।
मान सरोवर हंस हैं, बगुला ठौरै ठौर ॥१५२॥

संत मिले सुख ऊपजे, दुष्ट मिले दुख होय।
सेवा कीजै संत की, जनम कृतारथ होय ॥१५३॥

हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया विश्वाम।
हरिजन हरि का रूप है, ज्यूँ फूलन में बास ॥१५४॥

संत मिले तब हरि मिले, कहिये आदि रु अन्त।
[1]जो संतन को परिहरै, (सो)सदा तजै भगवंत॥१५५॥

राम मिलन के कारने, मो मन बड़ा उदास।
संत संग में सोधि ले, राम उन्हों के पास ॥१५६॥

सरनै राखौ साँइयाँ, पूरो मन की आस।
और न मेरे चाहिये, संत मिलन की प्यास॥१५७॥

कलियुग एकै नाम है, दूजा रूप है संत।
साँचे मन से सेइये, मेटै करम अनंत ॥१५८॥

संत जहाँ सुमरन सदा, आठों पहर अमूल।
भरि भरि पीवै रामरस, प्रेम पियाला फूल ॥१५९॥

---

१५१. मुखबिरी-जासूसी। बिरानी-पराई।

१. पा० जिन जिन साधू परिहरा, निंदे ताजि दे भगवत॥

फूटा मन बदलाय दे, साधू बड़े सुनार ।
टूटी होवै राम सों, फेर सँधावन हार ॥१६०॥
राज दुवार न जाइये, कोटिक मिले जु हेम ।
सुपच भगत के जाइये, यह विस्नू का नेम ॥१६१॥
संगत कीजै साधु की, कदी न निस्फल होय ।
लोहा पारस परस तें, सो भी कंचन होय ॥१६२॥
सो दिन गया अकाज में, संगत भई न संत ।
प्रेम बिना पशु जीवना, भाव बिना भटकंत ॥१६३॥
संत मिले तब हरि मिले, यूं सुख मिलै न कोय ।
दरसन तें दुरमत कटै, मन अति निरमल होय॥१६४॥
[1]साहिब मिला तब जानिये, दरसन [2]पाये साध ।
मनसा वाचा करमना, मिटे सकल अपराध ॥१६५॥
सोई साधु पति वरत जु, सदा जरे पिय आग ।
लाभ हानि विसराय के, रहु गुरु चरनन लाग ॥१६६॥
दया गरीबी बंदगी, समता सील सुभाव ।
येतै लच्छन साधु के, कहै कबिर सदभाव ॥१६७॥
मान नहिं अपमान नहीं, ऐसे सीतल संत ।
भवसागर उतर पड़े, तोरै जम के दंत ॥१६८॥
आसा तजि माया तजै, मोह तजै अरु मान ।
हरख सोक निन्दा तजै, कहै कबिर सँत जान ॥१६९॥

१. पा० हरी । २. पा० देवे ।

साधू सोइ सराहिये, कनक कामिनी त्याग।
और कछू इच्छा नहीं, निस दिन रहे अनुराग॥१७०॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसा फोफल भंग।
आप करावे टूकड़ा, पर मुख राखै रंग॥१७१॥
तन हि ताप जिन को नहीं, (नहि)माया मोह संताप।
हरख सोक आसा नहीं, सो हरिजन हरि आप॥१७२॥
संतन के मन भय रहे, भय धरि करैं बिचार।
निस दिन नाम जपउ करैं, बिसरत नहीं लगार॥१७३॥
आसन तो इकान्त करैं, कामिनी संगत दूर।
सीतल संत सिरोमनी, उनका ऐसा नूर॥१७४॥
साधु साधु मुखसे कहै, पाप भसम है जाय।
आप कबीर गुरु कहत हैं, साधू सदा सहाय॥१७५॥
मैं साधुन के संग रहूं, अंत न कितहूं जाऊं।
जु मोहि अरपै प्रीति सों, साधुन मुख ह्वै खाऊं॥१७६॥
यह कलियुग आयो अबै, साधु न मानै कोय।
कामी क्रोधी मसखरा, तिनकी पूजा होय॥१७७॥
संत संत सब कोइ कहै, सब समुंदर पार।
अनल पंखि कोइ एक है, पखी कोटि हजार॥१७८॥
कबीर सेवा दोउ भली, एक संत इक राम।
राम है दाता मुक्ति का, संत जपावै नाम॥१७९॥

साधू खारा यौं तजै, (ज्यौं) सीप समुंदर माँहि।
वासे तो वामें रहै, मन चित वासौं नाँहि॥१८०॥
साधु मिले साहिब मिले, ये सुख कहो न जाय।
अंतरगत अंगीठडी, ततछिन ठाढ़ी थाय॥१८१॥
साहिब सँग राचे भँवर, कबहु न छूटै रंग।
जैसे जैसे कीजिये, उन संतन को संग॥१८२॥
साधू के घर जाय के, किरतन दीजै कान।
ज्यौं उद्यम त्यौं लाभ है, ज्यौं आलस त्यौं हानि॥१८३॥
साधू के घर. जाय के, सुधि ना लीजै कोय।
पीछे फरी न देखिये, आगे है सो होय॥१८४॥
साधु विहंगम सुरसरी, चेल विहंगम चाल।
जो जो गलियाँ नीकसे, [१]सो सो करे निहाल॥१८५॥
साधू सोई सराहिये, पांचौ राखै चूर।
जिन के पांचौ बस नहीं, तिनतै साहिब दूर॥१८६॥

---

१८४ साधु संग में बैठकर अपने किये हुए कर्मों पर पछताते न रहना चाहिये बल्कि आगे से सुकृती बनने का निश्चय कर लेना चाहिये। ऐसा करने से वह धीरे २ पुण्यात्मा बन जायगा।

१८५. साधू देवनदी गंगा के समान हैं वे जहां २ जाते हैं उस भूमि को पवित्र करते हैं। और वहां के निवासियों का जीवन सफल कर देते हैं। १८६. पाचौं=पंच विषयों को। चूर=अपने अधीन।

१. पा० तहँ तहँ।

निहकामी निरमळ दसा, पकड़े चारौं खूंट।
कहैं कबिर वा दास का, आस करें बैकुंठ ॥१८७॥
रति एक धूँवा संतका, मूत ऊधरे चार।
जले जलाये फिर जले, कहैं कबिर विचार ॥१८८॥
साधू सरवन सांभरी, छोड चले गृह काम।
डग डग पै असमेध जग, यौं कहि श्री भगवान ॥१८९॥
साधु दरस को जाइये, जेता धरिये पाँय।
डग डग पै असमेध जग, कहैं कबिर समुझाय ॥१९०॥
साधू दरसन महाफल, कोटि जज्ञ फल लेह।
इक मंदिर को का पड़ी, (सब)सहर पवित्र करिलेह॥१९१॥
साधु मिले सुख ऊपजे, साधु गये दुख होय।
ताते देही दूबली, नैनन दीन्हा रोय ॥१९२॥
जाकी धोति अधर तपै, ऐसे [1]मिले असंख।
सब रिषियन के देखतां, सुपच बजाया [2]घंट ॥१९३॥
साहिब का बाना सही, संतन पहिरा जानि।
पांडव जग पूरन भयो, सुपच बिराजे आनि ॥१९४॥

१८८. जो जिन सन्तों की महिमा के विषय में तो क्या कहना है मृत सन्त के बारे में भी एक कथा में ऐसा सुना जाता है कि उनके जलाये हुए शरीर के धूंए से चार मूर्तों का उद्धार हो गया।

१. पा० जुरे। २. पा० सख।

कुलवंता कोटिक मिले, पाडत कोटि पचीस।
सुपच भक्त की पनहि में, तुलै न काहू सीस ॥१९५॥
हरि सेती हरिजन बड़े, जानें संत सुजान।
सेतु बांधि रघुवर चले, कूदि गये हनुमान ॥१९६॥
ज्ञान ध्यान मन धनुष गहि, खैंचन हार अलेख।
केते दुरिजन मारिया, (जब)आप कहै या भेख॥१९७॥
साधु ऐसा चाहिये, जहाँ रहै तहाँ गैब।
बानी के बिस्तार में, ताकूं कोटिक ऐब ॥१९८॥
सन्त मता गजराज का, चालै बंधन छोड़।
जग कुत्ता पीछे फिरै, सुनै न वाका सोर ॥१९९॥
आज काल दिन पांच में, बरस पंच जुग पंच।
जब तब साधू तारसी, और सकल परपंच ॥२००॥
सतगुरु केरा भावता, दूर हि ते दीसंत।
तन छीन मन उनमुनी, झूठा रूठ फिरंत ॥२०१॥
ज्यौं जल में मच्छी रहै, (यौं) साहिब साधू माहि।
सब जग में साधू रहै, असमझ चीन्हे नाँहि ॥२०२॥
समझे घट कूं यूं बनै, ये तो बात अगाध।
सब ही सों निरवैरता, पूजन कीजै साध ॥२०३॥
मिलता सेती मिलि रहै, बिछुरे सें बैराग।
साहिब सेती यौं रहै, (ज्यौं)बिपन के गल ताग॥२०४॥

१९८. गब=छिपेछिपाये। साधुको उचित है कि अधिक भाषण न करे; क्यों कि अधिक बातचीत से अनेक अनर्थ हो जाते हैं।

हाजी कूं दुख बहुत है, नाजी कू दुख नाँहि।
कबीर हाजी है रहो, अपने ही दिल माँहि ॥२०५॥
सन्त कहि सो साधु कहि, वेद कही मति जान।
कहै कबीर एकै रही, ताने होत पिछान ॥२०६॥
साधू ऐसा चाहिये, जाका पूरन मंन।
विपति पड़ै छाड़ै नहीं चढ़ै चौगुना रंग ॥२०७॥
कबीर साधू (की) दुरमति, ज्यौं पानी में छात।
पल एकै विरजत रहै, पीछै इक है जात ॥२०८॥
साधू ऐसा चाहिये, जामें लछन बतीस।
विरचाया बिरचै नहीं, पाँव चढ़े दे सीस ॥२०९॥
साधु मिलै सचु पाइया, साकुट मिलि है हानि।
बलिहारी वा दास की, पिवै प्रेमरस छानि ॥२१०॥
केता जिभ्या रस भखै, रती न लागै टक।
हानी माया मुक्ति ये, यौं साधू निकलक ॥२११॥
काग साधू दरसन कियो, कागा ते भय हंस।
कबीर साधू दरस ते, पाये उत्तम बंस ॥२१२॥
हंस साधु दरसन कियो, हंसा ते भय कौर।
कबीर साधू दरस ते, पाये उत्तम ठौर ॥२१३॥
कौर साधु दरसन कियो, पायो उत्तम मोष।
कबीर साधू दरस ते, मिटि गय तीनों दोष ॥२१४॥

कागा ते हंसा भयो, हंसा ते भयो और।
कबीर साधू दरस ते, भयो और को और ॥२१५॥
हेत बिना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय।
कबीर जल औ संतजन, नवैं तहाँ ठहराय ॥२१६॥
संत होत हैं हेत के, हेत तहाँ चलि जाय।
कहैं कबिर वे हेत बिन, गरज कहाँ पतियाय ॥२१७॥
दृष्टि मुष्टि आवै नहीं, रूप बरन पुनि नाँहि।
जो मनमें परतीत हूं, देखा संतन माँहि ॥२१८॥
सदा मीन जल में रहै, कब अचवै है पानि।
ऐसी महिमा साधु की, पड़ै न काहू जानि ॥२१९॥
सूर चढ़ै संग्राम कूं, बाधे तरकस चार।
साधू जन माने नहीं, बांधे बहु हकार ॥२२०॥
संत सेवा गुरु बंदगी, गुरु सुमिरन वैराग।
मेता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग ॥२२१॥
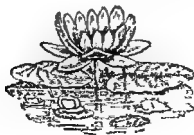
भेष को अंग।

कबीर भेष अतीत का, अधिक करै अपराध।
बाहिर दीसै साधु गति, अन्तर बड़ा असाध ॥ १ ॥
कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेष।
भरम करम सब दूर कर, सब ही माँहि अलेख ॥ २ ॥
तत्त्व तिलक तिहु लोक में, सत्तनाम निजसार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अगम अपार ॥ ३ ॥
तत्त्व तिलक की खानि है, महिमा है निजनाम।
अछै नाम वा तिलक को, रहै अछै बिसराम ॥ ४ ॥
तत्त्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में, परसा पद निरबान ॥ ५ ॥
तत्त्व हि फल मन तिलक है, अछै बिरछ फल चार।
अमर महातम जानि कै, करो तिलक ततसार ॥ ६ ॥
त्रिकुटी ही निजमूल है, भ्रूकुटी मध्य निसान।
ब्रह्म दीप अस्थूल है, अगर तिलक निरबान ॥ ७ ॥
अगर तिलक सिर सोहई, बैसाखी उनिहारि।
सोभा अविचल नाम की, देखो सुरति बिचारि ॥ ८ ॥
जैसि तिलक उनहार है, तस सोभा अस्थीर।
खम्भ ललाटे सोहई, तत्व तिलक गंभीर ॥ ९ ॥

मध्य गुफा जहँ सुरति है, उपरि तिलक का धाम ।
अमर समाधि लगावई, दीसै निरगुन नाम ॥१०॥
द्वादस तिलक बनावहीं, अंग अंग अस्थान ।
कहैं कबीर विराजहीं, ऊजल हंस अमान ॥११॥
ऊजल देखि न भरमिये, बक ज्यों लावै ध्यान ।
कुटिल चाल करनी करै, सो मूरख अज्ञान ॥१२॥
ऊजल देखि न धीजिये, बग ज्यों मांडे ध्यान ।
धोरे बैठि चपेट सी, यौं ले बूड़े ज्ञान ॥१३॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस ।
ते मुक्ता कैसे चुगै, पड़े काल के फंस ॥१४॥
साधु भया तो क्या हुआ, माला पहिरीं चार ।
बाहर भेष बनाइया भीतर भरी भंगार ॥१५॥
जेता मीठा बोलना तेता साधु न जान ।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंडै देसी आन ॥१६॥
मीठे बोल जु बोलिये, ताते साधु न जान ।
पहिले स्वाँग दिखाय के, पीछे दीसै आन ॥१७॥
बांबी कूटे बावरा, सरप न मारा जाय ।
मूरख बांबी ना डसै, सरप सबन को खाय ॥१८॥
माला तिलक लगाय के, भक्ति न आई हाथ ।
दाढ़ी मूंछ मुँडाय के, चले दुनी के साथ ॥१९॥

दाढ़ी मूंछ मुँड़ाय के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहि मूँड़िये, जामें भरिया खोट ॥२०॥
केसन कहा बिगारिया, मूंडा सौ सौ बार।
मन को क्यों नहि मूंड़िये, जामें विषय बिकार ॥२१॥
मन मेवासी मूंड़िये, केस हि मूंडै काहि।
जो कुछ किया सो मन किया, केस किया कछु नाँहि ॥२२॥
मूंड मुँडावत दिन गया, अजहु न मिलिया राम।
राम नाम कहो क्या करै, मन के औरै काम ॥२३॥
मूंड मुँडाये हरि मिले, सब कोइ लेहि मुँडाय।
बार बार के मूंड़ने, भेड न बैकुंठ जाय ॥२४॥
स्वाँग पहिरि सोहरा भया, दुनिया खाई खुंद।
जा सेरी साधू गया, सो तो राखी मूंद ॥२५॥
भूला भसम रमाय के, मिटी न मन की चाह।
जो सिक्का नहि साँच का, तबलग जोगी नाहं ॥२६॥
ऐसी ठाठाँ ठाठिये, बहुरि न यह तन होय।
ज्ञान गूदरी ओढ़िये, काढ़ि न सकही कोय ॥२७॥

२२. मेवासी=लुटेरा, डाकू।

२५. सोहरा=प्रसिद्ध। साधु का वेष बनानेवाले वेष के कारण संसार में प्रसिद्ध होकर आनन्द करते हैं; परन्तु महात्माओं के सच्चे रास्ते को ऐसे लोग लुप्त कर देते हैं।

मन माला तन सुमरनी, हरिजी तिलक दियाय।
दुहाइ राजा राम की, दूजा दूरि कियाय ॥२८॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत।
राम मिला सब देखताँ, सो जोगी अवधूत ॥ २९ ॥
माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत।
गांगी रोलै बहि गया, हरि सों किया न हेत ॥३०॥
माला फेरै कछु नहीं, डारि मुआ गल भार।
ऊपर ढोला हींगला, भीतर भरा भँगार ॥३१॥
माला फेरै क्या भया, गांठि न हिय की खोय।
हरि चरना चित राखिये, तो अमरापुर जोय ॥३२॥
माला फेरै कछु नहीं, काती मन के हाथ।
जबलग हरि परसै नहीं, तबलग थोथी बात ॥३३॥
ज्ञान संपुरन ना बिधा, हिरदा नहिं भिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥३४॥
बाना पहिरे सिंघ का, चलै भेड की चाल।
बोली बोलै सियार की, कुत्ता खावै फाल॥ ३५ ॥
भरम न भागै जीव का,, बहुतक धरिया भेष।
सतगुरु मिलिया बाहिरै, अन्तर रहा अलेख ॥३६॥
तन को जोगी सब करै. मन को करै न कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ३७ ॥

३०.गांगीरोला=दुनिया का हल्लागुल्ला। ३१. ढोला=पोतदिया। हींगला=गेरु।

हम तो जागी मनहि के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावताँ, दसा भई कछु और॥ ३८॥
पहिले बूड़ी पिरथवी, झूठे कुळ की लार।
अलख बिसार्यो भेष में, बूडि काल की धार॥ ३९॥
चतुराई हरि ना मिलै, यह बातों की बात।
निरमेही निरधार का, गाहक दीनानाथ॥ ४०॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम।
मन काचे [1]नाचे व्रिया, साचे राचे राम॥ ४१॥
हम जाना तुम मगन हो, रहे प्रेमरस पाग।
रंच (क) पौन के लागते, उठे [2]आग से जाग॥ ४२॥
सीतल जल पाताल का, साठि हाथ पर मेख।
माला के परताप ते, ऊपर आया देख॥ ४३॥
करिये तो करि जानिये, सरिखा सेती संग।
लिर लिर जिमि लोई भई, तऊ न छाड़ै रंग॥४४॥
संसारी साकट भला, कन्या क्वाँरी माय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय॥४५॥
बैरागी बिरकत भला, गिरा पड़ा फल खाय।
सरिता को पानी पिये, गिरही द्वार न जाय॥४६॥

४३. जिस प्रकार कूपे का साठ हाथ गहरा पानी रहट की माला के प्रताप मे उपर चला आता है इसी प्रकार माला के प्रेमपूर्वक फेरने से गुप्त राम भी प्रकट हो जाता है।

१ पा० राचे। २ पा० नाग सें।

गिरही द्वारै जाय के, उदर [1]समाता लेय।
पीछे लागे हरि फिरै, जब चाहै तब देय ॥४७॥
सिष साखा संसार गति, सेवक परतछ काल।
वैरागी छावै मढी, ताको मूल न डाल ॥४८॥
जो मानुष गृहि धर्म युत, राखै सील विचार।
गुरु मुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार ॥४९॥
सेवक भाव सदा रहै, वहम न आनै चित्त।
निरनै लखी यथार्थ विधि, साधुन को करै मित्त ॥५०॥
सच सील दाया सहित, बरते जग व्यौहार।
गुरू साधू का आश्रित, दीन बचन उचार ॥५१॥
बहु संग्रह विषयान को, चित्त न आवै ताहि।
मधुकर इम सब जगत जिव, घटि बढ़ि लखि बरताहि॥५२॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमरै नाम।
यामें धोखा कछु नहीं, सरै दोउ का काम ॥५३॥
गिरही सेवै साधु को, भाव भक्ति आनन्द।
कहै कबिर वैरागि को, निरबानी निरदुंद ॥५४॥
सब्द विचारे पथ चले, ज्ञान गली दे पाँव।
क्या रमता क्या बैठता, क्या गृह कँदला छाँव ॥५५॥
जैसा मीठा घृत पकै, तैसा फीका साग।
रामनाम सों राचहीं, कहै कबिर वैराग ॥५६॥

---

५६. जिनके लिये घी से बनी मिठाई और अलोना शाक दोनों बराबर हैं वे ही सच्चे वैरागी हैं। [1] पा० समाना।

पांच सात सुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय।
तब गुरु आज्ञा लेयके, रहे दिसंतर जाय ॥५७॥
गुरु आज्ञा तें जो रमै, रमते तजै सरीर।
ताको मुक्ति हजूर है, सतगुरु कहैं कबीर ॥५८॥
गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दूख।
कहैं कबीर ता दुख पर, वारौं कोटिक सूख ॥५९॥
सतगुरु अधम उधारना, दया सिंधु गुरु नाम।
गुरु बिन कोइ न तरि सकै, क्या जप अल्लह राम ॥६०॥
माला पहिरै कौन गुन, मन दुबिधा नहिं जाय।
मन माला करि राखिये, गुरुचरनन चित लाय ॥६१॥
मन का मस्तक मूंडि ले, काम क्रोध का केस।
जो पांचौ परमोधि ले, चेला सबही देस ॥६२॥
माला तिलक बनाय कै, धर्म विचारा नाँहि।
माल बिचारी क्या करै, मैल रहा मन माँहि ॥६३॥
माल बनाई काठ की, बिच में डारा सूत।
माल बिचारी क्या करै, फेरन हार कपूत ॥६४॥
माल तिलक तो भेष है, राम भक्ति कछु और।
कहै कबिर जिन पहिरिया, पाचौं राखै ठौर ॥६५॥

---

५७. साधक को उचित है कि कुछ वर्षों तक अधीनता और गरीबी से गुरु की सेवा करे। पश्चात् यदि देशभ्रमण की इच्छा हो अथवा विदेश में रहने की इच्छा हो तो गुरु की आज्ञा लेकर जावे या रहे।

माला तो मन की भली, औ' ससारी भेष ।
[1]माला फेरे हरि मिले, [2]हरहट के गल देख ॥६६॥
मन मैला तन ऊजला, बगुला कपटी अंग ।
तासों तो कौआ भला, तन मन एक हि रंग ॥६७॥
कवि तो कोटिन कोटि है, सिर के मूंडे कोट ।
मन के मूंडे देख करि, ता संग लीजै ओट ॥६८॥
भेष देखि मति भूलिये, बूझि लीजिये ज्ञान ।
विना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान ॥६९॥
फाली फूली गाडरी, ओढि सिंघ की खाल ।
सांचा सिंघ जब आ मिले, गाडर कौन हवाल ॥७०॥
पांची मे फूला फिरै, साधु कहावै सोय ।
स्वान न मैले वाघरो, वाघ कहां से होय ॥७१॥
बोली ठोली मसकरी, हांसी खेल हराम ।
मद माया औ इस्तरी, नहिं [3]संतन के काम ॥७२॥
भांड भवाई खेचरी, ये कुल को बेवहार ।
दया गरीबी बंदगी, संतन का उपकार ॥७३॥
दूध दूध सब एक है, दूध आक भी होय ।
बाना देखि न बंदिये, नैना परखो सोय ॥७४॥

---

१ पा० माला पहिरे मन, मुखी, बाहिर के घट देख ।
२ पा० रहँट । ३ पा० साधन ।

बाना देखी वंदिये, नहि करनी सों काम
नीलकंठ कीड़ा चुगै, दरसन ही सों काम ॥७५॥
कबिर भेष भगवंत का, माला तिलक बनाय।
उनकूं आवत देखिके, उठिकर मिलिये धाय ॥७६॥
गिरही को चिंता घनी, वैरागी को भीख।
दोनों का निच जीव है, देहु न सन्तो सीख ॥७७॥
वैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार
दोउ चूकि खाली पड़े, ताको वार न पार ॥७८॥
घर में रहे तो भक्ति करु, नातर करु वैराग।
वैरागी बंधन करै, ताका बड़ा अभाग ॥७९॥
धारा तो दोनो भली, गिरही कै वैराग।
गिरही दासातन करै, वैरागी अनुराग ॥८०॥
अजर जु धान अतीतका, गिरही करै अहार।
निश्चै होई दरिद्री, कहैं कबीर विचार ॥८१॥

भीख को अंग।

माँगन मरन समान है, मति कोइ मांगो भीख।
माँगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥ १ ॥
माँगन मरन समान है, सीख दई मैं तोहि।
कहैं कबिर सतगुरु सुनो, मतिरे मँगाउ मोहि ॥ २ ॥
माँगन मरन समान है, तोहि दई मैं सीख।
कहैं कबिर समुझाय के, मति कोइ माँगे भीख ॥ ३ ॥

मॉंगन गये सो मर रहे, मरै जु मॉंगन जॉंहि।
तिनते पहिले वे मरें, होत करत है नॉंहि॥ ४॥
उदर समाता मांगि ले, ताको नाहीं दोष।
कहैं कबिर अधिका गहै, ताकी गति न मोष॥ ५॥
अजहूं तेरा सब मिटै, जो मानै गुरु सीख।
जबलग तूं घर में रहै, मति कहुँ मांगै भीख॥ ६॥
उदर समाता अन्न ले, तन ही समाता चीर।
अधिक हि संग्रह ना करै, तिसका नॉंव फकीर॥ ७॥
अन मांगा तो अति भला, मॉंगि लिया नहि दोष।
उदर समाता मांगि ले, निश्चै पावै मोष॥ ८॥
अन मॉगा उत्तिम कहा, मध्यम मांगि जु लेय।
कहैं कबिर निकृष्ट सो, पर घर धरना देय॥ ९॥
सहज मिलै सो दूध है, मॉंगि मिलै सो पानि।
कहैं कबिर वह रकत है, जामें ऐंचातानि॥ १०॥
आब गया आदर गया, नैनन गया सनेह।
यह तीनों तबही गये, जबहि कहा कछु देह॥११॥
भीख तीन परकार की, सुनहु संत चित लाय।
दास कबिर परगट कहै, भिन्न भिन्न अरथाय॥१२॥
उत्तिम भीख है अजगरी, सुनि लीजे निज बैन।
कहैं कबिर ताके गहे, महा परम सुख चैन॥१३॥
भँवर भीख मध्यम कही, सुनो संत चित लाय।
कहैं कबिर ताके गहे, मध्यम मॉंहि समाय॥१४॥
खर कूकर की भीख जो, निकृष्ट कहावे सोय।
कहैं कबिर इस भीख में, मुक्ति न कबहूं होय॥१५॥

संगति को अंग।

कबीर संगति साधु की, नित प्रति कीजै जाय।
दुरमति दूर बहावसी, देसी सुमति [1]बताय ॥ १ ॥
कबीर संगति साधु की, कबहुं न निस्फल जाय।
जो पै बोवै भूनि के, फूलै फलै अघाय ॥ २ ॥
कबीर संगति साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥ ३ ॥
कबीर संगति साधु की, ज्यौं गंधी का बास।
जो कुछ गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ४ ॥
कबीर संगति साधु की, निस्फल कभी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ५ ॥
कबीर संगति साधु की, जो करि जानै कोय।
सकल बिरछ चंदन भये, बांस न चंदन होय ॥ ६ ॥
कबीर चंदन संग से, बेधे [2]ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, [3]जो ठहरा तिन पास ॥ ७ ॥
मलया गिरि के पेड़ सौं, सरप रहै लिपटाय।
रोम रोम बिष भीनिया, अँमृत कहा समाय ॥ ८ ॥

---

१. पा० दटाय। २. पा० आक। ३ जो होते उन पास।

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूं सों आध।
कबीर संगति साधु की, कटै कोटि अपराध ॥ ९ ॥
घड़ि ही की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सत संगति पल ही भली, जमका धका न खाय ॥१०॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहार।
सत्तनाम रसना बसै, लीजै जनम सुधार ॥ ११ ॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१२॥
जा घर गुरु की भक्ति नहि, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥ १३ ॥
रिद्धि सिद्धि मांगूं नहीं, मांगूं तुम पै येह।
नित प्रति दरसन साधु का, कहै कबिर मुहि देह ॥ १४ ॥

मेरा मन हंसा रमै, हंसा गगनि रहाय।
बगुला मन मानै नहीं, घर आंगुन फिर जाय ॥१५॥

मेरा संगी दो जना, इक वैस्नव इक राम।
वे दाता हैं मुक्ति के, वे सुमिरावै नाम ॥ १६ ॥

कबीर बन बन मैं फिरा, ढूंढि फिरा सब गाम।
राम सरीखा जन मिलै, तब पूरा है काम ॥ १७ ॥

कबीर तासों संग कर, जो रे भजि हैं राम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥ १८ ॥

कबीर लहरि समुद्र की, कमी न निस्फल जाय ।
बगुला परखि न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१९॥
कबीर मन पंछी भया, भावे तहवाँ जाय ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल पाय ॥ २० ॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय ।
जाय मिले जब गंग में, सब गंगोदक होय ॥ २१ ॥
कबीर कलह रु कलपना, सतसंगति से जाय ।
दुख वासों भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥२२॥
संगति कीजै संत की, जिनका पूरा मन ।
अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धन ॥२३॥
साधु संग अन्तर पड़े, यह मति कबहुँ होय ।
कहै कबिर तिहु लोक में, सुखी न देखा कोय ॥२४॥
मथुरा कासी द्वारिका, हरिद्वार जगनाथ ।
साधु संगति हरिभजन बिन, कछू न आवै हाथ ॥२५॥
साखि सब्द बहुते सुना, मिटा न मनका दाग ।
संगति सो सुधरा नहीं, ताका बड़ा अभाग ॥२६॥
साधुन के सतसंग ते, थर थर कांपे देह ।
कबहूं भाव कुभाव ते, मत मिटि जाय सनेह ॥२७॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय ।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥२८॥

राम राम रटिबो करै, निसदिन साधुन संग।
कहो जु कौन विचारते, (नहि) नैना लागत रंग ॥२९॥
मन दीया कहूँ ओर ही, तन साधुन के संग।
कहै कबिर कोरी गजी, कैसे लागे रंग ॥३०॥

भुवँगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय।
सब अँग तो विष सों भरा, अँमृत कहाँ समाय ॥३१॥
चंदन परसा बावना, विष ना तजै भुजंग।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३२॥

कबीर चंदन के निकट, नीम भि चंदन होय।
बूड़े बांस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय ॥३३॥
चंदन जैसे संत हैं, सरप जैस संसार।
वाके अंग लपटा रहै, भागै नहीं विकार ॥३४॥

चंदन डर लहसुन करै, मति रे बिगारै बास।
सुगुरा निगुरा सों डरै, जग से डरपै दास ॥३५॥
कबिर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बुंद तिर भाय ॥३६॥
कबिर कुसंग न कीजिये, जाका नाँव न ठाँव।
ते क्यों होसी बापरा, साध नहीं जिहि गाँव ॥३७॥
कबीर गुरु के देस में, बसि जानै जो कोय।
कागा ते हंसा बनै, जाति बरन कुल खोय ॥३८॥

कबीर कहते क्यों बने, अन बनता के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरैं पतंग ॥३९॥
ऊजल बुंद अकास की, पड़ि गइ भूमि बिकार।
माटी मिलि भइ कीच सो, बिन संगति भौ छार ॥४०॥
हरिजन सेती रूठना, संसारी सों हेत।
ते नर कबहु न नीपजे, ज्यों कालर का खेत ॥४१॥
गिरिये परबत सिखर ते, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ो काली धार ॥४२॥
मूरख को समझावते, ज्ञान गांठि का जाय।
कोयला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥४३॥
कोयला भि होय ऊजला, जरि बरि हैं जो सेत।
मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत ॥४४॥
संगति अधम असाधु की, मीच होय ततकाल।
कहैं कबिर सुन साधवा, बानी ब्रह्म रसाल ॥४५॥
मेर निसानी मीच की, कुसंगति ही काल।
कहैं कबिर सुन मानिया, बानी ब्रह्म सँभाल ॥४६॥
ऊंचे कुल कह जनमिया, (जो) करनी ऊंच न होय।
कनक कलस मद सों भरा, साधुन निंदा सोय ॥४७॥

४१. कालर=एक प्रकार का घास। यह घास जिस खेत में बढ़ता है उसमें दूसरी चीज नहीं हो सकती। ४६. मेर=सीमा।

जानि बूझि साँची तजै, करै झूठ सों नेह।
ताकी संगति रामजी, सपने हू मति देह ॥४८॥
काचा सेती मति मिलै, पाका सेती बान।
काचा सेती मिलत ही, है तन धन की हान ॥४९॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काची सरसों पेलि के, खरी भया नहिं तेल ॥५०॥
कुल टूटै कांची पड़ी, सरा न एकौ काम।
चौरासी बासा भया, दूर पडा हरिनाम ॥५१॥
दाग जु लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परमोधिये, कागा हंस न होय ॥५२॥
जग सों आपा राखिये, ज्यों विषहर सो अंग।
करो दया जो खूब है, बुरा खलक का संग ॥५३॥
जीवन जोवन राजमद, अविचल रहै न कोय।
जु दिन जाय सतसंग में, जीवन का फल सोय ॥५४॥
ब्राम्हन केरी बेटिया, मांस शराब न खाय।
संगति भई कलाल की, मद बिन रहा न जाय ॥५५॥
साखि सब्द बहुत हि सुना, मिटा न मनका मोह।
पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह ॥५६॥

---

५३. कुसगी लोगों की संगति से अपने आपको ऐसे बचना चाहिये जिस तरह साप से अपने शरीर को बचाते हैं।

माखी चंदन परिहरे, जहँ रस मिलि तहँ जाय।
पापी सुनै न हरि कथा, ऊंघे कै उठि जाय ॥५७॥
पुरब जनम के भाग से, मिले संत का जोग।
कहैं कबिर समुझै नहीं, फिर फिर चाहै भोग ॥५८॥
जहाँ जैसी संगति करै, तहँ तैसा फल पाय।
हरि मारग तो कठिन है, क्यौं करि पैठा जाय ॥५९॥
ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट।
ज्ञानी अज्ञानी मिले, होवै माथा कूट ॥६०॥
सज्जन सों सज्जन मिले, होवे दो दो बात।
गदहा सों गदहा मिले, खावे दो दो लात ॥६१॥
मै मांगूं यह मांगना, मोहि दीजिये सोय।
संत समागम हरिकथा, हमरे निसदिन होय ॥६२॥
कंचन भौ पारस परसि, बहुरि न लोहा होय।
चंदन बास पलास बिंधि, ढाक कहै नहि कोय ॥६३॥
पहिले पट पासै बिना, बीने पड़ै न भात।
पासे बिन लागे नहीं, कुसुंभ बिगारे साथ ॥६४॥

६४. कपडे को कुसुंभिया और समुद्रलहर बनाने के लिये पहले उसे खूब किया जाता है। पश्चात् सन्न पाड कर उसे डोरों से बाधा जाता है। इसके बाद कुसुम का पास बनाकर उसमे कपडे को रगते हैं।
बीने पडे न भात-समुद्रलहर की शोभा नहीं आती। पासे बिना-पास चढाये बिना।

कबीर सतगुरु सेवियें, कहा साधु को संग।
बिन बगुरे भिगोय बिना, कोरै चढ़ै न रंग॥ ६५॥
कबीर बिषधर बहु मिले, मनिधर मिला न कोय।
बिषधर को मनिधर मिले, बिषधर अँमृत होय॥ ६६॥
प्रीति करो सुख लेन को, सो सुख गयो हिराय।
जैसे पाइ छछुंदरी, पकड़ि साप पछिताय॥६७॥
जो छोड़ै तो आंधरा, खाये तो मरि जाय।
ऐसे खंध छछुंदरी, दोउ भांति पछिताय॥६८॥
साप छछुंदर दोयकूं, नौला नीगल जाय।
वाकूं विष वेहै नहीं, जड़ी भरोसे खाय॥ ६९॥
कुसंगति लागे नहीं, सद्ध सजीवन हाथ।
बाजीगर का बालका, सोवै सरपाके साथ॥७०॥
पानी निरमल अति धना, पल संगे पल भंग।
ते नर निरफल जायंगे, करै नीचको संग॥७१॥
निगुनै गांव न बासिये, सब गुन को गुन जाय।
चंदन पड़िया चौक में, ईंधन बदले जाय॥७२॥

६५. कहा-साधु का संग करना कहा है। बिनु बगुरे भिगोय बिना-कपडे को खून भिगो कर धोये बिना।

६६. मणिधारी सर्प की मणि में यह गुण होता है कि सर्प के काट लेने पर सर्पमणि को लगा देने से वह बिष को खींच लेती है। पश्चात् उसे दूध में डाल देने से दूध अमृत के समान गुणकारी हो जाता है। कोढ़ी को वह दूध यदि पिला दिया जाय तो उसका कोढ़ दूर हो जाता है। ६८. खध-खाकर।

संगति को वैरी घनो, सुनो संत इक वैन ।
येही काजल कोठरी, येही काजल नैन ॥७३॥
साधू संगति परिहरै, करै विषय को संग ।
कूप खनी जल बावरे, त्यागि दिया जल गंग ॥७४॥
अन मिलता सों संग करि, कहा बिगोयो आप ।
सत्त कबिर यों कहत है, ताहि पुरबलो पाप ॥ ७५ ॥
लकड़ी जल डूबे नहीं, कहो कहां की प्रीति ।
अपनो सींचो जानि कै, यही बड़न की रीति ॥७६॥
मैं सींचो हित जानि कै, कठिन भयो है काठ ।
ओछी संगति नीचकी, सिर पर पाड़ी बाट ॥७७॥
साधू सद्ध सुलच्छना, गांधी हाट बनेह ।
जो जो मांगै प्रीति सों, सो सो कौड़ी देह ॥ ७८ ॥

७३. कज्जल यदि नेत्रों में लगता है तो उसकी शोभा और स्थिरता रहती है । और वह यदि कोठरी में समा जाता है तो उसे चूने से मिटा देते हैं। यह योग्य और अयोग्यकी संगतिका फल है । ७५. बिगोयो–बिगाड़ा.

७६. यह जल की उदारता है कि वह काठ को (नाव को) यह समझकर नहीं डुबाता कि इसको मैंने सींचकर बड़ा किया है । यह बड़े पुरुषों की महत्ता है ।

७७. जल के इस प्रकार उदारता दिखलाने,पर भी काठ अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । वह सदैव उसके सिर पर चढा रहता है और जल के ऊपर से ही अपना आना जाना जारी रखता है । यही नीचों की नीचता है ।

तरुवर जड़ से काटिया, जबै सम्हारो ज्हाज।
तारै पन बोरै नहीं, बाँह गहे की लाज ॥ ७९ ॥
साधु संगति गुरुभक्ति जु, निष्फल कबहुँ न जाय।
चंदन पास है रूखड़ा, (सो)कबहुँक चंदन भाय ॥८०॥
संत सुरसरी गंगजल, आनि पखारा अंग।
मैले से निरमल भये, साधू जन के संग ॥८१॥
चर्चा करु तब चौहटे, ज्ञान करो तब दोय।
ध्यान धरो तब एकिला, और न दूजा कोय ॥८२॥
संगति कीजै साधु की, दिन दिन होवै हेत।
साकुट काली कामली, धोते होय न सेत ॥८३॥
साधु संगति गुरु भक्ति रु, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय।
ओछी सँगति खर सब्द रू, घटत घटत घटि जाय ॥८४॥
संगति ऐसी कीजिये, सरसा नर सों संग।
लर लर लोई होत है, तऊ न छाडै रँग ॥८५॥
सब संगति सब सों बड़ी, बिन संगति सब ओस।
सत संगति परमानता, कटै करम को दोस ॥८६॥

८०. भाय—हो जाता है।

८४. साधुसंगति गुरुभक्ति के समान दिन२ बढ़ती ही जाती है। और कुसंगति गदहे की रेंकन (आवाज) के समान धीरे२ घटती ही जाती है।

साहिब दरसन कारनै, निस दिन फिरूं उदास।
साधू संगति सोधि ले, नाम रहै उन पास ॥८७॥
तेल तिली सों ऊपजै, सदा तेल को तेल।
संगति को बेरो भयो, ताते नाम फुलेल ॥८८॥
हरिजन केवल होत हैं, जाको हरि का संग।
विपति पड़ै बिसरै नहीं, चढ़ै चौगुना रंग ॥८९॥

सेवक को अंग।

सेवक सेवा में रहै, अन्त कहूं नहि जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहैं कबिर समुझाय ॥१॥
सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहैं कबिर सेवा बिना, सेवक कभी न होय। ॥२॥
सेवक मुखै [१]कहावई, सेवा में दृढ नाँहि।
कहैं कबिर सो सेवका, लख चौरासी माँहि ॥३॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिनरात।
कहैं कबिर कूसेवका, सनमुख ना ठहरात ॥४॥
सेवक फल माँगै नहीं, सेव करै दिनरात।
कहैं कबिर ता दास पर, काल करै नहि घात ॥५॥

३. मुखै—मुख से।

सेवक स्वामी एक मत, मत में मत मिलि जाय।
चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥६॥
सेवक कुत्ता रामका, मुतिया वाका नाँव।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाँव ॥ ७ ॥
तू तू करु तो निकट है, दुर दुर करु तो जाय।
ज्यों गुरु राखे त्यों रहे, जो देवै सो खाय ॥ ८ ॥
फल कारन सेवा करै, निसदिन जाँचै राम।
कहैं कबिर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥ ९ ॥
सब कछु गुरु के पास है, पाइये अपने भाग।
सेवक मन सौंप्या रहै, रहै चरन में लाग ॥१०॥
सतगुरु सब्द उलंघि कर, जो सेवक कहुँ जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कबिर समुझाय ॥११॥
सतगुरु बरजै सिप करै, क्यों करि बाचै काल।
दहुँ दिसि देखत बहि गया, पानी फूटी पाल ॥१२॥
सतगुरु कहि जो सिप करै, सब कारज सिध होय।
अमर अभय पद पाइये, काल न झाँकै कोय ॥१३॥

१०. मन सौंप्या रहे—अपना मन अर्पण कर दे।

१२. पाल—तालाब का बाँध। जिस प्रकार पाल के फूटने से पानी काबू से बाहर हो जाता है। इसी प्रकार गुरु की आज्ञा का भंग करनेवाला शिष्य संसार में बह जाता है। शुक्राचार्य ने बलिराजा को वामन को दान देने से रोका था, परन्तु उसने गुरु की आज्ञा नहीं मानी, इसलिये उसे पाताल में जाना पड़ा।

साहिब को भावै नहीं, सो हमसों जनि होय।
सतगुरु काजे आपना, साधु न मानै कोय ॥१४॥
साहिब जासों ना रुचै, सो हमसों जनि होय।
गुरु की आज्ञा में रहूँ, बल बुधि आपा खोय ॥१५॥
साहिब के दरबार में, कमी काहु की नाँहि।
बंदा मौज न पावहीं, चूक चाकरी माँहि ॥ १६ ॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धक्का धनी का खाय।
कबहुक धनी निवाजिहै, जो दर छाँडि न जाय ॥१७॥
आस करै बैकुंठ की, दुरमति तीनों काल।
शुक्र कही बलि ना करी, तातें गयो पताल ॥ १८ ॥
गुरु आज्ञा मानै नहीं, चलै अटपटी चाल।
लोक वेद दोनों गये, आगे सिर पर काल ॥१९॥
भुक्ति मुक्ति मांगौं नहीं, भक्ति दान दे मोहि।
और कोइ जांचौं नहीं, निसदिन जांचौं तोहि॥२०॥
भोग मोक्ष मांगौं नहीं, भक्ति दान गुरुदेव।
और नहीं कछु चाहिये, निसदिन तेरी सेव ॥२१॥
यह मन वाको दीजिये, सांचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तऊ न दूजा होय ॥२२॥
अन राते सुख सोवना, राते निंद न आय।
ज्यौं जल छूटी माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥

२२. आरा—करवत। २३. अनराते–जिनका किसीसे प्रेम नहीं है।

राता राता सब कहै, अनराता नहिं कोय।
राता सोई जानिये, जा तन रक्त न होयँ ॥२४॥
राता रक्त न नीकसै, जो तन चीरै कोय।
जो राता गुरु नाम सों, ता तन रक्त न होय ॥२५॥
सीलवंत सुर ज्ञान मत, अति उदार चित होय।
लज्जावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥२६॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान।
सन्तोषी सुख दायका, सेवक परम सुजान ॥२७॥
चतुर विवेकी धीर मत, छिमावान बुधिवान।
आज्ञावान् परमत लिया, मुदित प्रफुल्लित जान ॥२८॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू सों हेत।
सत्यवान परमारथी, आदर भाव सहेत ॥२९॥
षट् दरसन को प्रेम करि, असन बसन सों पोष।
सेव करै हरिजनन की, हरषित परम सँतोष ॥३०॥
यह सब लच्छन चित धरै, अप लच्छन सब त्याग
सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग ॥३१॥
गुरु मुख गुरु चितवत रहै; जैसे मनी भुवंग।
कहैं कबिर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥३२॥

२७. धरमकध्वजा धर्म को प्रकट करने के लिये ध्वजा के समान।
३०. षट्दरसन—जोगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश, और ब्राह्मण। असन—भोजन। बसन—कपड़ा।

गुरु मुख गुरु चितवत रहे, जैसे साह दिवान।
और कभी नहि देखता, है वाही को ध्यान ॥३३॥
गुरुमुख गुरु आज्ञा चले, छांडि देइ सब काम।
कहै कबिर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३४॥
उलटे सुलटे वचन के, सीप न मानै दूख।
कहै कबिर संसार में, सो कहिये गुरुमूख ॥ ३५ ॥
सुरति सुहागिन सोइ सहि, जो गुरु आज्ञा माँहि।
गुरु आज्ञा जो मेटहीं, तासु कुसल है नाँहि ॥ ३६ ॥
गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय।
कहै कबिर सो सन्त प्रिय, बहु बिधि अंमृत पाय ॥३७॥
कहै कबिर गुरु प्रेम बस, क्या नियरे क्या दूर।
जाका चित्त जासों बसै, सो तिहि सदा हजूर ॥३८॥
कबीर गुरु औ साधु कूं, सीस नवावे जाय।
कहै कबिर सो सेवका, महा परम पद पाय ॥ ३९ ॥

दासातन को अंग।

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमि तोहि दास।
रिद्धि सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छांडै पास ॥ १ ॥
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छांडै संग।
रंग न लागै और का, व्यापै सतगुरु रंग ॥ २ ॥

धूम धाम सहता रहै, कबहु न छाडै संग।
पाहा बिन लागे नहीं, कपड़ा के बहु रंग ॥ ३ ॥
कबीर गुरु सब को चहै, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तबलग दास न होय ॥ ४ ॥
कबीर गुरु के भावते, दूर हि ते दीसंत।
तन छीना मन अनमना, जग ते रूठि फिरंत ॥ ५ ॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागे कोय।
कै जागै विषया भरा, दास बंदगी जोय ॥ ६ ॥
कबीर पांचौ बलधिया, ऊजड़ ऊजड़ जाँहि।
बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै बाँहि ॥ ७ ॥
काजर केरी कोठरी, ऐसो यह संसार।
बलिहारी वा दास की, पैठी निकसन हार ॥ ८ ॥
काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥ ९ ॥
निरबंधन बंधा रहै, बधा निरबँध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥१०॥
दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास ॥११॥

३. पाहा-कपड़ेको मही चढ़ाना। ५. गुरु के भावते-गुरु प्रेमी। अनमना-उदास। ६. खालिक-मालिक साहब। ७. पा बलधिया-पंचज्ञानेन्द्रिया।

दासातन हिरदै बसै, साधुन सों आधीन ।
कहैं कबिर सो दास है, प्रेम भक्ति लौ.लीन ॥१२॥
नाम धराया दास का, मन में नाहीं दीन ।
कहैं कबिर सो स्वान गति, और हि के लौलीन ॥१३॥
नाम धरावे दास को, दासातन में लीन ।
कहैं कबिर लौलीन बिन, स्वान बुद्धि कहि दीन ॥१४॥
स्वामी होना सोहरा, दुहरा होना दास ।
गाडर आनी ऊनको, बांधी चरै कपास ॥१५॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगट है, छिन में करूं निहाल ॥१६॥
दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
पलक एक में प्रगटि के, छिन में करै निहाल ॥१७॥
कबीर कुल सो ही भला, जा कुल उपजै दास ।
जा कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥१८॥
भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज ।
बेपरवाही है रहा, बैठा नाम जहाज ॥१९॥

१५. सोहरा-सहल । दुहरा—मुश्किल । गाडर-भेड़ ।

स्वामी बनना सहज है परंतु दास होना कठिन है । स्वामी में अहंता और दास में उसका अभाव होता है । जो स्वामी (गुरु) तो बन जाते हैं; परन्तु अहंकार नहीं त्यागते उनको लाभ के बदले इस प्रकार हानि उठानी पड़ती है जिस तरह ऊन के लिये लाई हुई भेड़ कपास खा जाती है और उसके मालिक को पछताना पड़ता है ।

कबिर भये हैं केतकी, भँवर भये सब दास ।
जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ मुक्ति निवास ॥२०॥
दास कहावन कठिन हैं, मैं दासनका दास ।
अब तो ऐसा ह्वै रहूं, पाँव तले की घास ॥२१॥
काहू को न सँतापिये, जो सिरहंता सोय ।
फिर फिर वाकूं वंदिये, दास लच्छ है सोय ॥२२॥
लगा रहै सतनाम सों, सब ही बंधन तोड़ ।
कहै कबिर वा दास सों, काल रहै हथ जोड़ ॥२३॥
दास. कहावन कठिन है, जबलग दूजी आन ।
हांसी साहिब जो मिले, कौन सहै खुरसान ॥२४॥
डग डग पै जो डर करै, नित सुमिरैं गुरुदेव ।
कहैं कबिर वा दास की, साहिब मानै सेव ॥२५॥
निहकामी निरमल दसा, नित चरनों की आस ।
तीरथ इच्छा ता करै, कब आवै वे दास ॥२६॥
चंदन डरपै सरप सों, मति रे बिगाड़ै बास ।
सरगुन डरपै निगुन सों, (यौं) जगसें डरपै दास॥२७॥

भक्ति कौ अंग।

भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानंद।
परगट करी कबीर ने, सात दीप नव खंड॥ १॥
भक्ति भाव भादों नदी, सब हि चली घहराय।
सरिता सोइं सराहिये, जेठ मास ठहराय॥ २॥
भक्ति निसान सों होत है, मन दे कीजै भाव।
परमारथ परतीति में, यह तन जाये जाव॥ ३॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आय पड़ै जो झोल।
कंचन जो बिष्ठा पड़ै, घटै न ताको मोल॥ ४॥
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर औतरै, होय संत का संत॥ ५॥
भक्ति कठिन अती दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय।
भक्ति जु न्यारी भेष सें, यह जानै सब कोय॥ ६॥
भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस॥ ७॥
भक्ति रूप भगवंत का, भेष आहि कछु और।
भक्त रूप भगवंत है, [१] भेष जु मन की दौर॥ ८॥

---

२. पन-टेक। ४. झोल-झमेला आपत्ति। १० दुहेली-कठिन।
१. पा० पन।

भक्ति पदारथ तब मिलै, जब गुरु होय सहाय।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥ ९ ॥
भक्ति दुहीली गुरुन की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथ सों, ताहि मिलै सतनाम ॥१०॥
भक्ति दुहीली राम की, नहिं कायर का काम।
निरपेही निरधार को, आठ पहर संग्राम ॥११॥
भक्ति दुहीली नाम की, जस खांडे की धार।
जो डोलै सो कटि पड़ै, निहचल उतरै पार ॥१२॥
भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की, चढ़े भक्त हरषाय।
और न कोई चढ़ि सकै, निज मन समझौ आय ॥१३॥
भक्ति निसैनी मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥१४॥
भक्ति बिना नहिं निसतरै, लाख करै जो कोय।
सब्द सनेही ह्वै रहै, घर को पहुंचे सोय ॥१५॥
भक्ति दुवारा सांकरा, राई दसवैं भाय।
मन तो मैंगल ह्वै रहा, कैसे आवै जाय ॥१६॥
भक्ति दुवारा मोकला, सुमिरी सुमिरि समाय।
मन को तो मैदा किया, निरभय आवै जाय ॥१७॥
भक्ति सोइ जो भाव सों, इक मन चित को राख।
साँच सील सों खेलिये, मैं तैं दोऊ नाख ॥१८॥

भक्ति गेंद चौगान की, भावै कोइ ले जाय।
कहैं कबिर कछु भेद नहीं, कहा रंक कह राय ॥१९॥
भक्ति सरव ही ऊपरै, भागिन पावै सोय।
कहै पुकारै संत जन, सत सुमिरत सब कोय ॥२०॥
भक्ति बिनावै नाम बिन, भेप विना ये होय।
भक्ति भेप बहु अन्तरा, जानै बिरला कोय ॥२१॥
कबीर गुरु की भक्ति करु, तज विषया रस चौज।
बार बार नहि पाइये, मनुष जनम की मौज ॥२२॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, धिक् जीवन संसार।
धूंवा का धौराहरा, विनसत लगे न वार ॥२३॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास।
मन मनसा माँजै नहीं, होन चहत है दास ॥२४॥
[१]कबीर गुरु की भक्ति से, संसै डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥२५॥
जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय।
नाता तोड़ै गुरु भजै, भक्त कहावै सोय ॥२६॥
छिमा खेत भल जोतिये, सुमरिन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति [२]बीज नहि जाय ॥२७॥

२२. चौज–चाह, इच्छा। मौज–आनन्द। २३. धौराहरा–मीनार, स्तूप।
१. पा० भौसागर भागै नहीं, सोच विचारो माय। २. बिथा।

जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्ति प्यारी राम ॥२८॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज दंभ विचार।
उदर भरन के कारनै, जनम गंवायो सार ॥२९॥
भाग बिना नहिं पाइये, प्रेम प्रीति का भक्त।
बिना प्रेम नहि भक्ति कछु, भक्त भर्यो सब जक्त ॥३०॥
जहाँ भक्ति तहँ भेष नहि, बरनाश्रम तहाँ नाँहि।
नाम भक्ति जो प्रेम सों, सो दुरलभ जग माँहि ॥३१॥
भाव बिना नहि भक्ति जग, भक्ति बिना नहि भाव।
भक्ति भाव इक रूप है, दोऊ एक सुभाव ॥३२॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खांडे को धार।
बिना सांच पहुंचै नहीं, महा कठिन व्यवहार ॥३३॥
कामी क्रोधी लालची, इनसे भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥३४॥
जाति बरन कुल खोय के, भक्ति करै चित लाय।
कहैं कबिर सतगुरु मिले, आवागवन नसाय ॥३५॥
जब लग भक्ति सकाम है, तबलग निस्फल सेव।
कहै कबिर वह क्यौं मिले, निहकामी निज देव ॥३६॥

३१. भक्ति के लिये किसी भेष के बनाने की आवश्यता नहीं है। और न किसी वर्ण और आश्रम की है। भाव यह है कि सब वर्ण और आश्रम के तथा बिना भेष बनायें भी भक्ति हो सकती है।

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज।
सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥३७॥
मन की मनसा मिटि गई, दुरमति भइ सब दूर।
जन मन प्यारा राम का, नगर बसै भरपूर ॥३८॥
मेवासा मोहै किया, दुरिजन काढे दूर।
राज पियारे राम का, नगर बसै भरपूर ॥३९॥
आरत है गुरु भक्ति करू, सब कारज सिध होय।
करम जाल भौजाल में, भक्त फसै नहिं कोय ॥४०॥
आरत सों गुरुभक्ति करु, सब सिध कारज होय।
कृपा मांग्या राछ है, सदा न फवसी कोय ॥४१॥
सब सों कहूं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख।
भक्ति ठानि सब्द गहै, बहुरि न काछै भेप ॥४२॥
देखा देखी भक्ति का, कबहु न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े यों छांडसी, केचुली तजत भुजंग ॥४३॥
देखा देखी पकड़िया, गई छिनक में छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरै, जाकी गहरी मूठ ॥४४॥

३७. भक्ति में आई हुई अनेक बाधाओं के कारण भक्त सदा मृत्यु के मुख में ही रहता है।

३९. मेवासा—ममता। मोहै किया—दबा लिया। ४०. आरत है—पीडित होकर, दुःखी होकर। ४१. राछि—बरतन। फवसी शोभा देगा। ४२. बहुरि न काछै भेप—फिर नाना शरीरों में आना नहीं होगा। ४४. बाहुरै—लौट आता है।

तोटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत ।
मायाधारी मसखरे, केते गये अऊत ॥४५॥

ज्ञान संपूरन ना भिदा, हिरदा नाँहि जुड़ाय ।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥४६॥

खेत बिगार्यो खरतुआ, सभा बिगारी कूर ।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर ॥४७॥

तिमिर गया रवि देखते, कुमति गई गुरुज्ञान ।
सुमति गई अति लोभसे, भक्ति गई अभिमान ॥४८॥

निर्पक्षी की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान ।
निरद्वंदी की मुक्ति है, निर्लोभी निरवान ॥४९॥

विषय त्याग वैराग है, समता कहिये ज्ञान ।
सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान ॥५०॥

विषय त्याग वैराग रत, समता हिये समाय ।
मित्र सत्रु एकौ नहीं, मन में राम बसाय ॥५१॥

जब लगि आसा देह की, तब लगि भक्ति न होय ।
आसा त्यागी हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥५२॥

चार चिन्ह हरि भक्ति के, प्रगट दिखाई देत ।
दया धर्म आधीनता, परदुख को हरि लेत ॥५३॥

४५. अऊत—निर्वंश । ४७. खरतुआ—एक प्रकार का घास जो चढ़कर खेत को नष्ट कर देता है ।

और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निहकर्म ।
कहैं कबीर पुकारि के, भक्ति करो तजि भर्म ॥५४॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न आई काज ।
जिहि को कियो भरोसवा, तिहि ते आई गाज ॥५५॥
इन्द्र राज सुख भोगकर, फिर भौसागर माँहि ।
यह सिरगुन की भक्ति है, निर्भय कबहूं नाँहि ॥५६॥
भक्त आप भगवान है, जानत नाहि अयान ।
सीस नवावै साधु कूँ, बूझि करै अभिमान ॥५७॥
सत्त भक्ति तरवार है, बाँधे विरला कोय ।
कोइ एक बांधे सूरमा, तन मन डारे खोय ॥५८॥
भक्ति महल बहु ऊंच है, दूर हि ते दरसाय ।
जो कोइ जन भक्ति करै, सोभा बरनि न जाय ॥५९॥
भक्तन की यह रीत है, बँधे करै जो भाव ।
परमारथ के कारनै, या तन रहो कि जाव ॥६०॥
भक्ति भक्ति बहु कठिन है, रती न चाले खोट ।
निराधार का खेल है, अधर धार की चोट ॥६१॥

५५. गाज=गर्जना, फटकार ।

५७. उच्चवर्णवालों के हृदय में अपनी उच्चता का ऐसा अहंकार रहता है कि वे बिना जाति पूछे किसी भक्त (साधु) को प्रणाम तक नहीं करते, यह उनकी धारणा नितान्त ही अनुपयुक्त है, क्योंकि भक्त में और भगवान में किसी प्रकार का भेद नहीं होता । इस कारण प्रणाम करते समय साधु की जाति पूछना अत्यन्त ही अनुचित है ।

भक्ति निसैनी मुक्ति की, संत चढे सब आय।
नीचे बाघिन लुकि रही, कुचल पडे कूं खाय ॥६२॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जानै भेव।
पूरन भक्ती जब मिलै, कृपा करै गुरुदेव ॥६३॥
सतगुरु की क्रिरपा बिना, सत की भक्ति न होय।
मनसा बाचा कर्मना, सुनि लीजो सब कोय ॥६४॥
दुख खंडन भय मेटना, भक्ति मुक्ति बिसराम।
या घर राखे साध री, यही भक्ति को नाम ॥६५॥
भक्ति बीज है प्रेम का, परगट पृथ्वी माँहि।
कहै कबिर बोया घना, निपजै कोइक ठाँहि ॥६६॥
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति भक्ति में फेर।
एक भक्ति तो अजब है, इक है दमड़ी सेर ॥६७॥
भक्त उलटि पीछै फिरै, संत धरै नहि पाँव।
परतछ दीसै जीवताँ, मुआ माँहिला भाव ॥६८॥
दया गरीबी दीनता, सुमता सील करार।
ये लच्छन हैं भक्ति के, कहै कबीर बिचार ॥६९॥
सखिल भक्त कहुं ना तरै, जावै नरक अघोर।
सतगुरु सें सनमुख नहीं, धर्मराय के चोर ॥७०॥

---

६२. भक्ति की निसैनी को दृढता से पकडकर चढनेवाले सब सत जन, परम पद क महल में पँहुच जाते हैं। और जो इस निसैनी से गिर पडते हैं उनको माया बाघिनी खा लेती है। ६९. करार दृढता।

संत सुहागी सूरमा, सद्दै ऊठे जाग।
सलिल सद्ध माने नहीं, जरि बरि लागे आग ॥७१॥
सतगुरु सद्ध उथापही, अपनी महिमा लाय।
कहैं कबिर वा जीव कूं, काल घसीटे जाय ॥७२॥
सांच सद्ध खाली करै, आपन होय सयान।
सो जीव मनसुखी भये, कलियुग के वतमान ॥७३॥

सुमिरन को अंग।

नाम रतन धन पाय कर, गांठी बांध न खोल।
नहि पाटन नहि पारखी, नहि गाहक नहि मोल।१।
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माँहि।
संत मैत ही देत हैं, गाहक कोई नाँहि ॥ २ ॥
नाम नाम सब को (इ) कहै, नाम न चीन्हें कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिले, नाम कहावे सोय ॥ ३ ॥
नाम विना बेकाम है, छप्पन भोग विलास।
क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुंठ निवास ॥ ४ ॥
नाम रतन सो पाइहैं, ज्ञान दृष्टि जेहि होय।
ज्ञान बिना नहि पावई, कोटि करै जो कोय ॥ ५ ॥

१. पाटन–नगर। पारखी–परखनेवाला।

नाम जो रती एक है, पाप जु रती हजार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥ ६ ॥
नाम जपत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जु चाम।
कंचन देह किस कामको, जा मुख नाहीं नाम ॥ ७ ॥
नाम जपत कन्या भली, साकुट भला न पूत।
छेरी के गल गल थना, जामें दूध न मूत ॥ ८ ॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, [1]जहाँ न सतगुरु नाम ॥ ९ ॥
नाम लिया जिन सब लिया, [2]सब साहन को भेद।
बिना नाम नरके [3]गये, [4]पढ़ि गुनि चारों वेद ॥१०॥
नाम पियू का छोडि के, करै आन का जाप।
बेस्या करा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥ ११ ॥
आदि नाम धीरा अहै, जीव सकल ल्यौ बूझ।
अमरावे सत लोक ले, जम नहि पावे सूझ ॥१२॥
आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥ १३ ॥
आदिनाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नामको, अमर भयो सो बंस ॥ १४ ॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार।
कहै कबिर निज नाम बिनु, बूडि मुवा संसार ॥ १५ ॥

१. पा॰ भक्ति न सारगपानि। २. पा॰ सफल वेद का भेद।
३. पा॰ पडा। ४. पा॰ पढता।

कोटि नाम संसार में, तातें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, विरला जाने कोय ॥ १६ ॥
सच्च नाम निज औषधि, कोटिक कटै विकार।
विष वारी विरक्त रहै, काया कंचन सार ॥१७॥
यह औषधि अंग ही लगि, अनेक उधरी देह।
कोव फेर कुपथ करै, नहि तो औषधि येह ॥१८॥
सच नाम निज औषधि, सतगुरु दई बताय।
औषधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय ॥१९॥
सतनाम विश्वास, करम भरम सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥२०॥
रामनाम को सुमिरतां, उधरे पतित अनेक।
कहैं कबिर नहि छांडिये, रामनाम की टेक ॥२१॥
रामनाम को सुमिरतां, हँसि कर भावै खीझ।
उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥ २२ ॥
रामनाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर।
काया हांडी काठकी, ना वह चढ़ै बहोर ॥२३ ॥

१७. कंचनसार-कुंदन, जो अपने शरीर में विषयवाड़ी की जहरीली हवा नहीं लगने देता, उसका शरीर कुंदन के समान निर्मल रहता है।

१८. कोउ फेर-......विषयभोग का कुपथ्य संसार के रोगों को बढ़ा देता है, परन्तु औषधी तो यही सत्यनाम है। १९. वेदन=दुःख।

ॐकार निश्चै भया, सो कर्ता मति जान।
साँचा सब्द कबीर का, परदे माँहि पिछान ॥२४॥
जो जन होइ है जौहरि, रतन लेहि बिलगाय।
सोहँग सोहँग जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥२५॥
सब हि रसायन हम करि, नहीं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥२६॥
जबहि नाम हिरदे धरा, भया पापका नास।
मानो चिनगी आगकी, परी पुराने घास ॥ २७ ॥
कोई न जम सें बांचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नामके, ताको देखि डराय ॥ २८ ॥
पूंजि मेरी नाम है, जाते सदा निहाल।
कबीर गरजे पुरुप बल, चोरी करे न काल ॥ २९ ॥
कबीर हमरे नाम बल, सात द्वीप नव खंड।
जम डरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मण्ड ॥ ३० ॥
कबीर हरिके नाम में, सुरति रहै करतार।
ता मुखसें मोती झरे, हीरा अनँत अपार ॥ ३१ ॥
कबीर हरिके नाममें, बात चलावै और।
तिस अपराधी जीवको, तीन लोक [1]कित ठौर ॥३२॥

२४ परदे माह शब्दी (शब्द करनेवाला) चेतन पुरुष सत्य है। और ॐकार आदिक सब असत्य है यह वार्ता परदे की है।

२६. रसायन–धातुमारण की विधि। रंचक–थोडीसी।

१. पा० नहि।

कबीर सब जग निरधना, धनवंता नहि कोय।
धनवंता सो(इ) जानिये, राम नाम धन होय ॥३३॥
साहेब नाम सँभारतां, कोटि विघन टरि जाय।
राई मार बसंदरा, केता काठ जराय ॥३४॥
कबीर परगट राम कहु, छानै राम न गाय।
फूसक जोडा दूरि करु, बहुरि न लागै लाय ॥३५॥
कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाय।
जा मुख राम न नीसरै, ता मुख राम कहाय ॥३६॥
कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै राम।
जा मुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥३७॥
कबीर [1]हरि के मिलन की, बात सुनी हम दोय।
कै कछु [2]हार को नाम ले, कै कर ऊंचा होय ॥३८॥
कबीर राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर प्रीत।
हरि सागर जनि बीसरै, छीलर देखि अनीत ॥३९॥
कबीर राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय।
फूटा नग ज्यों जोरि मन, संधे संधि मिलाय ॥४०॥
कबिर नैन झर लाइये, रहट बहै निस जाम।
पपिहा यौं पी पी करै, कबरि मिलैंगे राम ॥४१॥

३४. बसंदरा—आग। ३९. छीलर—छिछला तालाब, (अनित्य संसार)
१. पा० गुरु। २. पा० गुरु।

कबीर कठिनाई खरी, सुमिरत हरि को नाम ।
सूली ऊपर नट विधा, गिरै तो नाहिं ठाम ॥ ४२ ॥
लंबा मारग दूर घर, विकट पंथ [1]बहु मार ।
कहो संत क्यों पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥४३॥
सूंन सिखर चढ़ि घर किया, सहज समाधि लगाय ।
नाम रतन धन तहँ मिला, सतगुरु भये सहाय ॥४४॥
घटहि नाम की आस करु, दूजी आस निरास ।
बसै जु नीर गँभीर में, क्यों वह मरै पियास ॥४५॥
जा घट प्रीत न प्रेम रस, पुनि रसना नहि नाम ।
ते नर पशु संसार में, उपजि मरे बेकाम ॥ ४६ ॥
जैसे माया मन रमै, तैसा राम रमाय ।
तारा मंडल वेधि के, तब अमरापुर जाय ॥४७॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनामको, सहज समाधि लगाय ॥४८॥
एक नाम को जानि के, मेटु करम का अंक ।
तबही सो सुचि पाइ है, जब जिव होय निसंक ॥४९॥
'एक नाम को जानि करि, दूजा देइ बहाय ।
तीरथ व्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥५०॥

४९. सुचि—सुख ।

१. पा० बटमार ।

जैसे फनिपति मंत्र सुनि, राखै फनहि सिकोर।
तैसे बौरा नाम तें, काल रहे मुख मोर ॥५१॥
सबको नाम सुनावहु, जो आवेगो पास।
सब्द हमारो सत्त है, दृढ़ राखो बिश्वास ॥५२॥
होय बिवेकी सब्द का, जाय मिलै परिवार।
नाम गहै सो पहुँचई, मानो कहा हमार ॥५३॥
सुरति समावे नाम में, जगसे रहे उदास।
कहे कबिर गुरु चरनमें, दृढ़ राखो बिश्वास ॥५४॥
अस औसर नहि पाइहौ, धरो नाम कड़िहार।
भौसागर तरि जाव अब, पलक न लागे बार ॥५५॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यौं चौपर की सार ॥५६॥
कोटि करम कटि पलकमें, रंचक आवै नाम।
जुग अनेक जो पुन्य करु, नहीं नाम बिनु ठाम ॥५७॥
[1]सपने में बरराई के, धोखे निकरै नाम।
वाके पगकी पानही, मेरे तन को चाम ॥५८॥
जाकी गांठी नाम है, ताके है सब सिद्धि।
कर जोरै ठाढी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥५९॥

५१. फनिपति—सर्प।

१. पा० कहा बड़ाई तासुकी, जो मुख सुमिरै राम।

हयवर गयवर सघन घन, छत्र धुजा फहराय।
ता सुख तें भिक्षुक भला, नाम भजत दिन जाय ॥६०॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
जब सो पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव ॥६१॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥६२॥
सुख के माथे सिल परैं, नाम हृदे से जाय।
बलिहारी वा दुख की, पल पल नाम रटाय ॥६३॥
लेने को सतनाम है, देने को अँन दान।
तरने को आधीनता, बूडन को अभिमान ॥६४॥
लूटि सकै तो लूटि ले, राम नाम की लूट।
फिर पाछे पछिताहुगे, प्रान जाहिंगे छूट ॥६५॥
लूटि सकै तो लूटि ले, रामनाम की लूट।
नाम जु निरगुन को गहौ, नातर जैहो खूट ॥६६॥
कहैं कबिर तूं लूटि ले, रामनाम भँडार।
काल कंठ को जब गहे, रोके दसहूं द्वार ॥६७॥
कबिर निर्भय नाम जपु, जब लग दीवे बाति।
तेल घटे बाती बुझै, सोवोगे दिनराति ॥६८॥
कबीर सूता क्या करै, जागी जपो मुरार।
एक दिना है सोवना, लंबे पाँव पसार ॥६९॥

कबीर सूता क्या करै, उठिन भजो भगवान।
जम घर जब ले जायंगे, पड़ा रहेगा म्यान ॥७०॥

कबीर सूता क्या करै, गुन सतगुरु का गाय।
तेरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाय ॥७१॥

कबीर सूता क्या करै, सूने होय अकाज।
ब्रह्मा को आसन डिग्यो, सुनी कालकी गाज ॥७२॥

कबीर सूता क्या करै, छाड़ि न रोवो दूख।
जाका बासा गोर में, सो क्यों सोवे सूख ॥७३॥

कबीर सूता क्या करै, जागन की कर चौंप।
ये दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौंप॥७४॥

कबीर सूता क्या करै, काहेन देखै जागि।
जाके संग तें बीछुरा, ताहि के संग लागि ॥७५॥

अपने पहरे जागिये, ना परि रहिये सोय।
ना जानौ छिन एकमें, किसका पहरा होय ॥७६॥

निंद निसानी मीच की, उठु कबीरा जाग।
और रसायन छांडि के, नाम रसायन लाग ॥७७॥

सोया सो निस्फल गया, जागा सो फल लेहि।
साहिब हक्क न राखसी, जब मांगे तब देहि ॥७८॥

७३. गोर-कबर। ७४. चौंप-खुटक।

[१]केसव कहि कहि कूकिये, ना सोइये असरार।
रात दिवस के [२]कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥७९॥
कबिर क्षुधा है कूकरी, [३]करत भजन में भंग।
याकूं टुकडा डारिके, [३]सुमिरन करु सुरंग ॥८०॥
[४]गिरही का टुकडा बुरा, दो दो आंगुल दांत।
भजन करै तो ऊबरै, नातर काढै आंत ॥८१॥
बाहिर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये नाम।
कहा महोला खलक सों, पर्यो धनी सों काम ॥८२॥
गोविंद के गुन गावता, कबहु न कीजै लाज।
यह पद्धति आगे मुकति, एक पंथ दो काज ॥८३॥
गुन गाये गुनना कटै, रटै न नाम वियोग।
अहिनिसि गुरु ध्यायो नहीं, (क्यों) पावै दुरलभ योग ॥८४॥

७९. असरार—बेखबर।

८१. गृहस्थों का अन्न खाकर जो भजन नहीं करते उनका पाप कर्म घेर लेते हैं और वे वे मौत मारे जाते हैं।

८३. पद्धति—मार्ग। संकोच त्यागकर साहब के गुन गाने से लोक में शिक्षा का मार्ग प्रचलित होता है। और आगे के लिये मुक्ति का द्वार खुलता है। यही एक पंथ है और दो काज है।

८४. गुनना—चौरासी का चक्कर। हरिगुण के गाने से संसार-भ्रमण मिट जाता है। और बार२ रटने से विस्मरण नहीं होता।

१. पा० पिउ पिउ। २. पा० कूकते। ३. पा० होय रहो निःसंक
४. पा० संसारी का टूकडा।

सतगुरु का उपदेस, सतनाम निज सार है।
यह निज मुक्ति संदेस, सुनो संत सत भाव से ॥८५॥
क्यों छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बांधिया।
काटै दीन दयाल, करम फंद इक नामसे ॥८६॥
काटहु जमके फंद, जेहि फंदे जग फंदिया।
कटै सो होय निसंक, नाम खडग सतगुरु दिया ॥८७॥
तजै कागको देह, हंस दसा की सुरति पर।
मुक्ति संदेसा येह सतनाम परमान अस ॥८८॥
सुमिरन मारग सहजका, सतगुरु दिया बताय।
साँस साँस सुमिरन करू, इक दिन मिलसी आय ॥८९॥
सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कहैं कबिर सुमिरन किये, साँई माँहि समाय ॥९०॥
सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निस दिन आठौ जाम ॥९१॥
सुमिरन की सुधि यौं करो, ज्यौं गागर पनिहारि।
हाले डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचारि ॥९२॥
सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे कामी काम।
कहैं कबीर पुकारि के, तब प्रगटै निज नाम ॥९३॥
सुमिरिन की सुधि यौं करो, ज्यौं सुरभी सुत माँहि।
कहैं कबिर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाँहि ॥९४॥

९४. सुरभी-गाय।

सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे दाम कँगाल।
कहैं कबिर बिसरै नहीं, पल पल लेत सँभाल ॥९५॥

सुमिरन की सुधि यौं करो, जैसे नाद कुरंग।
कहैं कबिर बिसरै नहीं, प्रान तजै तिहि संग ॥९६॥

सुमिरन की सुधि या करो, ज्यौं सूई में डोर।
कहै कबिर छूटे नहीं, चलै ओर की ओर ॥९७॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबिर बिसारे आपको, होय जाय तिहि रंग ॥९८॥

सुमिरन सो मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोरै अंग ॥९९॥

सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, दास कबिर कहि दीन ॥१००॥

सुमिरन सों मन जब लगै, ज्ञानांकुस दे सीस।
कहैं कबिर डोले नहीं, निश्चै बिस्वा बीस ॥१०१॥

सुमिरन मन लागे नहीं, बिषहि हलाहल खाय।
कबीर हटका ना रहै, करि करि थका उपाय ॥१०२॥

सुमिरन माँहि लगाय दे, सुरति आपनी सोय।
कहै कबिर संसार गुन, तुझै न व्यापै कोय ॥१०३॥

सुमिरन सुरति लगाय के, मुख ते कछू न बोल।
बाहर के पट देय के, अंतर के पट खोल ॥१०४॥

---

९६. कुरंग हरिण। १०४. बाहर के पट-दोनों नेत्र। अंतर के पट-हृदय की दृष्टि।

सुमिरन तूं घट में करै, घट ही में करतार।
घट ही भीतर पाइये, सुरति सब्द भंडार ॥१०५॥
राजा राना राव रंक, बड़ो जु सुमिरै नाम।
कहै कबिर सब सों बड़ा, जो सुमिरै निहकाम ॥१०६॥
सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निहकामी सुमिरन करै, पावै अबिचल राम ॥१०७॥
जप तप संजम साधना, सब कछु सुमिरन मांहि।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाँहि॥१०८॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
हरदी लगै न फिटकरी, चोखा ही रंग होय ॥१०९
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, काहे करै उपाय।
सतगुरु ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय ॥११०॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा काल ॥१११॥
कबीर हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिंगे छूट।
घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट ॥११२॥
कबीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय।
[1]गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥११३॥
कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम।
आदि जुगादि भक्ति है, सबका निज बिसराम ॥११४॥

१. पा० हरि।

कबीर राम रिझाय ले, जिभ्या के रस स्वाद।
और स्वाद रस त्याग दे, राम नाम के स्वाद ॥११५॥
कबीर मुख से राम कहु, मन हि राम को ध्यान।
रामक सुमिरन ध्यान नित, यही भक्ति यहि ज्ञान ॥११६॥
राम नाम गुन गावने, तोहि न आवै लाज।
जो कोइ लाजै राम रामसे, ताका तन बेकाज ॥११७॥
जीना थोड़ा ही भला, हरि का सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखै धरै न कोय ॥११८॥
निज सुख आतम राम है, दूजा दुःख अपार।
मनसा वाचा करमना, कबीर सुमिरन सार ॥११९॥
जो बोलो तो राम कहु, अन्त कहूँ मति जाय।
कहै कबिर निसदिन कहै, सुमिरन सुरति लगाय ॥१२०॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।
कहै कबिर सो पीव को, जो सुमिरै निहकाम ॥१२१॥
दुखमें सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, दुख काहे को होय ॥१२२॥
सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कहै कबिर ता दासकी, कौन सुनै फरियाद ॥१२३॥
साँइ सुमिर मति ढील कर, जो सुमिर ते लाह।
इहाँ खलक खिदमत करै, उहाँ अमरपुर जाह ॥१२४॥

साँई यों मति जानियो, प्रीति घटे मम चीत।
मरूं तो सुमीरत मरूँ, जीयत सुमिरूँ नीत ॥१२५॥
साँई को सुमिरन करै, ताको वंदे देव।
पहली आप जगावही, पाछे लारै सेव ॥१२६॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम विनु, सोई कालकी फांस ॥१२७॥
पांच संगि पिव पिव करै, छठा जो सुमिरे मंन।
आई सुरति कबीर की, पाया राम रतंन ॥१२८॥
मन जो सुमिरै रामको, राम बसै घट [1]आहि।
[2]अब मन रामहि ह्वै रहा, सीस नवाऊँ काहि॥१२९॥
तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँय।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँय ॥१३०॥
तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय।
तुझ माँही मन मिलि रहा, [3]अब कहुँ अनत न जाय॥१३१॥
रग रग बोलै रामजी, रोम रोम (र)रंकार।
सहजे ही धुन होत है, सोई सुमिरन सार ॥१३२॥
सहजे ही धुन होत है, पल पल घटही माँहि।
सुरति सब्द मेला भया, मुख की हाजत नाँहि ॥१३३॥

१- पा० माँहि। २- पा० राम मोर मैं राम का,।
३, पा० अब कहा आने जाय।

अजपा सुमिरन घट विषे, दीन्हा सिरजन हार।
वाही-सों मन लागि रहा, कहैं कबीर विचार ॥१३४॥
साँस साँस पर नाम ले, वृथा [1]साँस मति खोय।
[2]न जाने इस साँस को, आवन होय न होय ॥१३५॥
सास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय।
और साँस यों ही गये, करि करि बहुत उपाय॥१३६॥
कहाँ भरोसा देह का, विनसि जाय छिन माँहि।
साँस साँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाँहि ॥१३७॥
जाकी पूँजी साँस है, छिन आवै छिन जाय।
ताको ऐसा चाहिए, रहे नाम लौ लाय ॥१३८॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहूँ बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥१३९॥
ऐसे महँगे मोलका, एक साँस जो जाय।
चौदह लोक न पटतरै, काहे धूर मिलाय ॥१४०॥
माला साँसउ साँस की, [3]फेरै को (इ) निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै [4]करम की फांस ॥१४१॥
माला फेरत मन खुशी, तातें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उजियारो होय ॥१४२॥

---

१. पा० जनम। २. पा० क्या। ३. पा० फेरेंगे कोई दास। ४. पा० काल।

माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर ।
करका मनका [1]डारि दे, मन का मनका फेर ॥१४३॥
जे राते सतनाम सों, ते तन रक्त न होय ।
रति इक रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय ॥१४४॥
माला तो करमें फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि ।
मनवा तो [2]दहु दिस फिरै, यह तो सुमिरन नाँहि ॥१४५॥
माला फेरूँ न हरि भजूँ, मुखसे कहूँ न राम ।
मेरा हरि मोको भजै, तब पाऊँ विसराम ॥१४६॥
माला मोसे लहि पड़ी, का फेरत है मोहि ।
मन की माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥१४७॥
माला फेरै कह भयो, हिरदा गाँठि न खोय ।
गुरु चरनन चित राखिये, तो अमरापुर जोय ॥१४८॥
कबीर माला काठकी, बहुत जतनका फेर ।
माला साँस उसाँस की, जामें गांठ न मेर ॥१४९॥
क्रिया करै अंगुरि गिनै, मन धावै चहुँ ओर ।
जिहि फेरै साँई मिलै, सो भय काठ कठोर ॥१५०॥
तन थिर मन थिर वचन थिर, सुरति निरति थिर होय ।
कहैं कबिर उस पलकको, कल्प न पावै कोय ॥१५१॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय ।
सुरति समानी सब्दमें, ताहि काल नहि खाय ॥१५२॥

१. पा० डारिके । २. पा० घहु ।

[1]बिना साँच सुमिरन नहीं, (बिन)भेदी भक्ति न सोय।
पारस [2]में परदा रहा, (कस)लोहा कंचन होय॥१९३॥
हिरदे सुमिरनि नामकी, मेरा मन मसगूल।
छवि लागे निरखत रहूँ, मिटि गय संसै सूल ॥१९४॥
देखा देखी सब कहै, मोर भये [3]हरि नाम।
अरध रात को (इ) जन कहै, खाना जाद गुलाम ॥१९५॥
नाम रटत अस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन।
सुरति सब्द एकै भया, जल ही हैगा मीन ॥१९६॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, सुनता है सब कोय।
सुमिरन सों भल होयगा, नातर भला न होय ॥१९७॥
कबीर माला काठकी, पहिरी मुगद डुलाय।
सुमिरन की सुधि है नहीं, (ज्यौं)डीगर बाँधी गाय ॥१९८॥
नाम जपे अनुराग से, सब दुख [4]डारे धोय।
विश्वासे तो गुरु मिले, लोहा कंचन होय ॥१९९॥
सब मंत्रन का बीज है, सत्तनाम ततसार।
जो को(इ) जन हिरदै धरे, सो जन उतरै पार ॥२००॥

१९४. मसगूल—स्वलीन। १९५. खानाजादगुलाम—घरका दास।
१९८. मुगद—मूर्ख।

१. पा. शुद्ध बिना सुमिरन नहीं, भाव बिनु भक्ति न होय।
२ पा० बिच। ३ पा. ते राम। ४ पा. डाले।

जब जागे तब नाम जप, सोवत नाम सँभार ।
ऊठत बैठत आतमा, चालत नाम चितार ॥१६१॥
सुमिरन ऐसो कीजिये, खरे निशाने चोट ।
सुमिरन ऐसो कीजिये, हाले जीभ न ओठ ॥१६२॥
ओठ कंठ हाले नहीं, जीभ न नाम उचार ।
गुप्त हि सुमिरन जो लखे, सोई हंस हमार ॥१६३॥
अंतर हरि हरि होत है, मुख की हाजत नाहि ।
सहजे धुन लागी रहे, संतन के घट माँहि ॥१६४॥
अन्तर जपिये रामजी, रोम रोम रकार ।
सहजे धुन लागी रहे, येही सुमिरन सार ॥१६५॥
कबीर मन निश्चल करो, सच नाम गुन गाय ।
निश्चल बिना न पाईये, कोटिक करो उपाय ॥१६६॥
निसदिन एकै पलक ही, जो कहु नाम कबीर ।
ताके जनमो जनम के, जैहैं पाप शरीर ॥१६७॥
सुरति फसी संसार में, ताते परिगो दूर ।
सुरति बाँधि अस्थिर करो, आठों पहर हजूर ॥१६८॥
नाम साँच गुरु साँच है, आप साँच जब होय ।
तीन साँच जब परगटे, विषका अमृत होय ॥१६९॥
मनुवा तो गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहि ।
घनी सहेगा सासना, जमके दरगह माँहि ॥१७०॥

हाथो में माला फिरे, हिरदा डांवाडूल ।
पग तो पाला में पड़ा, भागन लागे सूल ॥१७१॥
वाद विवादा मत करो, करु नित एक विचार ।
नाम सुमिर चित्त लायके, सब करनीमें सार ॥१७२॥
वाद करे सो जानिये, निगुरेका वह काम ।
संतों को फुरसद नहीं, सुमिरन करते नाम ॥१७३॥
भक्ति भजन हरि नाम है, दूजा दुःख अपार ।
मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥१७४॥
जागन में सोवन करे, सोवनमें लव लाय ।
सुरति डोरि लागी रहे, तार टुटि नहि जाय ॥१७५॥
जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार ।
कहे कबिर धर्मदास सों, उतरे भवजल पार ॥१७६॥
कबीर सुमिरन अंगको, पाठ करे मन लाय ।
बिद्याहिन विद्या लहै, कहे कबिर समुझाय ॥१७७॥
जो कोय सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
भक्ति ज्ञान मन ऊपजे, कहे कबिर समुझाय ॥१७८॥
जो कोय सुमिरन अंगको, निसि वासर करै पाठ ।
कहे कबिर सो संत जन, संधे औघट घाट ॥१७९॥

१७१- पाला-झाड़बेर के पत्ते ।

परिचय को अंग

[1]पिव परिचय तब जानिये, पिवसों हिल मिल होय।
पिव की लाली मुख परै, परगट दीसै सोय ॥ १ ॥

लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥ २ ॥

जिन पाँवन सुईं बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।
पिया मिलन जब होइया, आंगन भया बिदेस ॥३॥

उलटि समानी आप में, प्रगटी जोति अनंत।
साहिब सेवक एक सँग, खेलें सदा बसंत ॥४ ॥

[1]जोगी हूआ झक लगी, मिटि गइ ऐंचातान।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥

हम वासी वा देस के, जहां पुरुष की आन।
दुख सुख कोइ ब्यापे नहीं, सब दिन एक समान ॥६॥

हम वासी वा देस के, (जहँ) बारह मास बसंत।
नीझर झरै महा अमी, भींजत हैं सब संत ॥ ७ ॥

---

१. पिव–साहब, मालिक। लाली–कांति, प्रसन्नता। ९. झक—लगन।
१. पा० झक लागी जोगी हुआ।

हम वासी वा देसके, गगन धरन दुइ नाँहि।
भौंरा बैठा पंख बिन, देखौ पलकों माँहि॥८॥
हम वासी वा देस के, जहाँ ब्रह्म का कूप।
अविनाशी बिनसै नहीं, आवै जाय सरूप॥९॥
हम वासी वा देसके, आदि पुरुष का खेल।
दीपक देखा गैबका, बिन बाती बिन तेल॥१०॥
हम वासी वा देस के, बारह मास बिलास।
प्रेम झरै बिगसै कमल, तेजपुंज परकास॥११॥
हम वासी वा देस के, जाति वरन कुल नाँहि।
सब्द मिलावा है रहा, देह मिलावा नाँहि॥१२॥

८. गगनधरन—ब्रह्मांड और पिंड। इस साखी में अचरी मुद्रा का वर्णन किया गया है। जिसमें दृष्टि को उलट कर भृकुटी में लगाई जाती है।

१२. हम उस देश के वासी हैं जहां जाति,वर्ण और कुल की मर्यादा नहीं मानी जाती। उस देश का संबन्ध केवल शब्द से होता है, देह से नहीं। इस साखी को लोग बहुधा छुवाछूत की रक्षा के प्रणाम में बोला करते हैं। और ऐसा अर्थ करते हैं कि सर्व साधारण से केवल शब्द से मिलो, देह से नहीं। इसका ऐसा अर्थ नितान्त अनुचित है; क्यों कि यह पिव परचे के प्रकरण की है। इसके अतिरिक्त छूताछूत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है, प्रत्युत "पंडित देखहु मन महँ जानी। कहुधों छूत कहां से उपजी, तबहीं छूत तुम मानी" इत्यादि छूत छात के खंडन के अनेक प्रमाण हैं।

हम वासी वा देस के, रूप वरन कछु नाँहि ।
सैन मिलावा है रहा, शब्द मिलावा नाँहि ॥१३॥
हम वासी वा देस के, पिंड ब्रह्मंड कछु नाँहि ।
आपा पर दोइ बीसरा, सैन मिलावा नाँहि ॥१४॥
हम वासी वा देस के, गाज रहा ब्रह्मंड ।
अनहद बाजा बाजिया, अविचल जोति अखंड ॥१५॥
संसै करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार ।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥१६॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन वस्ती का देस ।
बिना देह का पुरुष है, कहैं कबिर संदेस ॥१७॥
नौंन गला पानी मिला, बहुरि न भरि हैं गौन ।
सुरति सब्द मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१८॥
हिल मिल खेलै सब्द सों, अन्तर रही न रेख ।
समझै का मत एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥१९॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन ।
निज मन धसा सरूपमें, सतगुरु दीन्ही सैन ॥२०॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहरि समाय ॥२१॥
जो कोइ समझै सैनमें, तासों कहिये धाय ।
सैन बैन समझै नहीं, तासों कहै बलाय ॥२२॥

पिंजर , प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत ।
संसै छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥२३॥

उनमुनि लागी सुन्न में, निस दिन रहि गलतान ।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥२४॥

उनमुनि चढी अकास को, गई धरनि सें छूट ।
हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूट ॥२५॥

उनमुनि सों मन लागिया, गगन हि पहुंचा जाय ।
चाद बिहूना चांदना, अलख निरंजन राय ॥२६॥

[1]उनमुनि सों मन लागिया, [2]उन मुनि नहीं बिलंगि ।
[3]लौंन बिलंग्या पानिया, पानी नौन बिलगि ॥ २७॥

पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया बिलाय ।
जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय ॥२८॥

मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥२९॥

---

२६. बिहूना-बिना। गगन-गगन गुफा। निरंजन-माया से रहित।
नोट-अन्य मन्थों में अलख निरंजन को काल पुरुष माना है। जैसा कि यह बीजक का वचन है-" अलख निरंजन लखे न काई, जेहि बन्धे जग सब लेई।" इत्यादि।

१. पा० मन लागा उनमुनि सु । २. पा० उनमुनि मनहि बिलगा।
३. पा० लौन बिलोयो पानि में।

सुरति समानी निरति में, अजपा माहीं जाप ।
लेख समाना अलख में, आपा माहीं आप ॥३०॥
सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
सुरति निरति परिचय भया, खुल गया सिंधु दुआर ॥३१॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
निसि बासर सुख निधि लहूं, अन्तर प्रगटे आप ॥३२॥
सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर ॥
सकल पाप सहजै गया, साहिब मिले हजूर ॥३३॥
तत पाया तन बीसरा, [1]मन धाया धरि ध्यान ।
तपत मिटी सीतल भया, सुन्न किया [2]अस्थान ॥३४॥
कौतुक देखा देह बिना, रवि ससि बिना उजास ।
साहेब सेवा माहीं है, बेपरवाही दास ॥३५॥
नैन बिहूंना देहरा, देह बिहूंना देव ।
कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३६॥
देवल माँहि [3]देहुरी, तिल जैसा बिस्तार ।
माहीं पाती फूल जल, माहीं पूजन हार ॥३७॥

---

३०. जाप अजपा में, सुरति निरति में और लेख अलख में परिणत होने पर आप (मैं) अपने आप (स्वरूप) को पा सकता है ।

३४. सुन्न-माया प्रपञ्च से रहित देश । ३६. देहरा – देवमन्दिर ।

३७. देवल-शरीर । देवरी हृदय । पाती-प्रीति । जल स्नेह । सिंचनहार-प्राण ।

१. पा० साहिब सें धरि ध्यान । २. पा० अस्नान । ३. पा० देवली ।

पवन नहीं पानी नहीं, नहि धरनी आकास।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥३८॥

अगुवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक।
पीछे हरि भी आयँगे, सारे सौंज समेत ॥३९॥

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
कहिबे की सोभा नहीं, देखै ही परमान ॥४०॥

सुरज समाना चांद में, दोउ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, पुरब जनम का लेख ॥४१॥

पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥४२॥

आया था संसार में, देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजर अनूप ॥४३॥

पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद।
रतन निराला पाइया, जगत ढठोला बाद ॥४४॥

हिम से पानी है गया, पानी हुआ भाप।
जो पहिले था सो भया, प्रगटा आपहि आप ॥४५॥

---

४०. उनमान—अंदाज। ४१. इस साखी में "चाद सुरज एकै घर लायो, सुषमण सेती पान लगायो" इस वचन के अनुसार ध्यानोपयोगी सुषुम्णा का रास्ता आवश्यक बताया गया है।

कुछ करनी कुछ करम गति, कुछ पूरब ले लेख ।
देखो भाग कबीर का, लख से भया अलेख ॥४६॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं मैं नाँहि ।
कबीर नगरी एक मैं, दो राजा न समाँहि ॥४७॥
मै जाना मैं और था, मैं तजि ह्व गय सोय ।
मैं तै दोऊ मिटि गये, रहे कहन को दोय ॥४८॥
अगम अगोचर गम नहीं, जहां झिलमिली जोत ।
तहाँ कबीरा [1]रमि रहा, पाप पुन्न नहि छोत ॥४९॥
कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन ।
पति संग जागी सुंदरी, कौतुक देखा नैन ॥ ५० ॥
कबीर देखा एक अंग, महिमा कही न जाय।
तेजपुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥५१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निरमल सूर ।
रैन अंधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥५२॥
कबीर मन मधुकर भया, करै निरन्तर बास ।
कमल खिला है नीर बिन, निरखै कोइ निजदास ॥५३॥
कबीर मोतिन की लंड़ी, हीरों का परकास ।
चांद सूर की गम नहीं, दरसन पाया दास ॥५४॥
कबीर दिल दरिया मिला, पाया फल समरत्थ ।
सायर माहि ढिंढोरतां, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५५॥

१- पा० बदगी।

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाँहि ।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाँहि ॥५६॥
कबीर दिल दरिया मिला, बैठा दरगह आय ।
जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाय॥५७॥
कबीर कंचन भासिया, ब्रह्म वास जहां होय ।
मन भौंरा तहां लुबधिया, जानेगा जन कोय ॥५८॥
गगन गरजि बरसे अमी, बादल गहिर गंभीर।
चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥५९॥
गगन मडल के बीच में, झलकै सत का नूर ।
निगुरा गम पावै नहीं, पहुँचे गुरुमुख सूर ॥ ६० ॥
गगन मंडल के बीच में, महल पडा इक चीन्हि ।
कहै कबिर सो पावई, जिहि गुरु परिचै दीन्हि ॥६१॥
गगन मंडल के बीच में, बिना क़लम की छाप।
पुरुष एक तहां रमि रहा, नहीं मंत्र नहि जाप ॥६२॥
गगन मंडल के बीच में, तुरी तत्त इक गाँव ।
लच्छ निसाना रूप का, परखि दिखाया ठाँव ॥६३॥
गगन मंडल के बीच में, जहां सोहंगम डोर ।
सब्द अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोर ॥६४॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास ।
तहां कबीरा संतजन, सत्तपुरुष के पास ॥६५॥

६२. छाप - चित्र । ६३. तुरीतत्व—तुरीय स्थिति पर ।

गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास ।
तहां कबीरा[1] बंदगी, कर कोई निजदास ॥६६॥

दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरम देव ।
चार वेद की गम नहीं, तहां कबीरा सेव ॥६७॥

मान सरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
मुक्ताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥६८॥

सुन महल में घर किया, बाजै सब्द रसाल ।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटै, दीन दयाल ॥६९॥

पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूर ।
जम सों बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥७०॥

सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय ।
सुख पाया साहेब मिला, आनंद उर न समाय ॥७१॥

जा बन सिंघ न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाय ।
रैन दिवस की गम नहीं, रहा कबीर समाय ॥७२॥

सीप नहीं सायर[2] नहीं, स्वाति बुंदभी नाँहि ।
कबीर मोती नीपजै, सुंन सरवर घट माँहि ॥७३॥

६८. मुक्ताहल मोती—अनबेधे मोती । ७२. बन—अगम पद । सिंह—जीवात्मा । पंछी—मन ।

१. पा० अंग । २. पा० सागर ।

काया सिप संसारमें, पानी बुंद सरीर ।
बिना सीप के मोतिया, प्रगटे दास कबीर ॥७४॥
घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट ।
कहैं कबिर परिचय भया, गुरू दिखाई बाट ॥७५॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय ।
साँई ते सनमुख भया, लगा कबीरा पाय ॥७६॥
जा कारन मैं जाय था, सो वो पाया ठौर ।
सो ही फिर आपन भया, को कहता और ॥७७॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहि बाट ।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥७८॥
नहीं हाट नहि बाट था, नहीं धरति नहि नीर ।
असंख जुग परलै गया, तब की कहैं कबीर ॥७९॥
चांद नहीं सूरज नहीं, हता नहीं ओंकार ।
तहां कबीरा संतजन, को जानै संसार ॥८०॥
धरति गगन पवनै नहीं, नहि होते तिथि वार ।
तब हरि के हरिजन हुते, कहैं कबीर विचार ॥८१॥
धरति हती नहि पग धरूं, नीर हता नहि न्हाऊं
माता ते जनम्या नहीं, छीर कहांते खाऊं ॥८२॥
अगन नहीं जहँ तप करूं, नीर नहि तहँ न्हाऊं ।
धरती नहीं जहँ पग धरूं, गगन नहिं तहँ जाऊं ॥८३॥

७५. औघट—औघट घाट, भँवर गुफा ।

पांच तत्त्व गुन तीन के, आगे मुक्ति मुकाम।
तहां कबीरा घर किया, गोरख दत्त न राम ॥८४॥
सुर नर मुनिजन औलिया, ये सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ॥८५॥
सुर नर मुनिजन देवता, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
ऊंचा महल कबीर का, पार न पावै सेस ॥८६॥
जब दिल मिला दयाल सों, तब कछु अंतर नाँहि।
पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माँहि ॥८७॥
ममता मेरा क्या करै, प्रेम उघारी पोल।
दरसन भया दयाल का, सूल भई सुख सोल ॥८८॥
सुन्न सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव।
सदा समुद सुख बिलसिया, बिरला जानै भेव ॥८९॥
सुन्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव।
सुधा सिंधु सुख बिलसहीं, बिरला जानै भेव ॥९०॥
लौंन गला पानी मिला, बहुरि न भरि है गून।
हरिजन हरि सो मिलि रहा, काल रहा सिर धुन ॥९१॥

८८. पोल—दरवाजा। सोल—सहल, सहज। ८९. समुँह—सन्मुख।
९०. सरोवर के किनारों पर बने हुए देवालयों के देवता सरोवर के आनन्द-विहार और शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते। उस आनन्द को तो मछली ही उठाती है। इसी प्रकार शून्य सरोवर के आनन्दामृत को केवल अभ्यासी ही पा सकता है। देवता उस सुख को क्या जानें।

गुन इन्द्री सहजे गये, सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥९२॥
जब लग पिय परिचय नहीं, कन्या कँरी जान।
हथलेवो हूं सालियो, मुस्किल पड़ि पहिचान ॥९३॥
सेजै सूनी रग रम्हा, मागा मान गुमान ।
हथ लेवो हरि सूं जुर्यो, अखै अमर वरदान ॥९४॥
पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मेला दूर।
निरमल कीन्ही आतमा, तातें सदा हजूर ॥९५॥
मैं लागा उस एक सों, एक भया सब माँहि ।
सब मेरा मैं सबनका, तहां दूसरा नाँहि ॥९६॥
भली भई जो भय पड़ी, गई दिसा सब भूल ।
पाला गलि पानी भया, ढूलि मिला उस कूल ॥९७॥
चितमनि पाईं चौहटे, हाड़ी मारत हाथ ।
मीरां मुझ पर मिहर करि, मिला न काहू साथ ॥९८॥
बरसि अंमृत निपजा हिरा, घटा पड़े टकसार ।
तहां कबीरा पारखी, अनुभव उतरै पार ॥९९॥

९३ हथलेवो हूं सालियो-पाणिग्रहण भी असरने लगता है। ९७ जो भय पडी-भो हो गई । पाला-अज्ञानी जीव । पानी-ज्ञानी। टमकूल-मालिक में। ९८ चितमनि-साहब। हड्डी—हिरस। मीरा—सद्गुरु। ९९. अमृत—अमी। हीरा-शुद्ध मन।

मकर तार सों नेहरा, झलकै अधर विदेह ।
सुरति सोहंगम मिलि रहि, पल पल जुरै सनेह ॥१००॥
ऐसा अविगति अलख है, अलख लखा नहिं जाय ।
जोति सरूपी राम है, सब में रह्यो समाय ॥१०१॥
मिलि गय नीर कबीर सों, अंतर रही न रेख ।
तीनों मिलि एकै भया, नीर कबीर अलेख ॥१०२॥
नीर कबीर अलेख मिलि, सहज निरंतर जोय ।
सच सब्द औ सुरति मिलि, हंस हिरंबर होय ॥१०३॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहना नाँहि ।
एक रही दूजी गई, बैठा दरिया माँहि ॥१०४॥
आया एक हि देस ते, उतरा एक ही घाट ।
बिच में दुबिधा हो गई, हो गये बारह बाट ॥१०५॥
तेजपुंज का देहरा, तेजपुंज का देव ।
तेजपुंज झिलिमिल झरै, तहां कबीरा सेव ॥१०६॥
खाला नाला हीम जल, सो फिर पानी होय ।
जो पानी मोती भया, सो फिर नीर न होय ॥१०७॥
देखो करम कबीर का, कछु पूरबला लेख ।
जाका महल न मुनि लहै, किय सो दोस्त अलेख ॥१०८॥
मैं था तब हरि नहि जब, अब हरि है मैं नाँहि ।
सकल अंधेरा मिटि गया, दीपक देखा माँहि ॥ १०९ ॥

१०२- नीर-मन । कबीर-जीव । अलेख-साहब ।

सूरत में मूरत बसै, मूरत में इक तत्त ।
ता तत तत्व विचारिया, तत्व तत्व सो तत्त ॥११०॥
फेर पड़ा नहीं अंग में, नहि इन्द्रियन के माँहि ।
फेर पड़ा कछु बूझ में, सो निरुवारै नाँहि ॥१११॥
साहेब पारस रूप है, लोह रूप संसार ।
पारस सों पारस भया, परखि भया टकसार ॥११२॥
मोती निपजै सुन्न में, बिन सायर बिन नीर ।
खोज करंता पाइये, सतगुरु कहै कबीर ॥ ११३॥
या मोती कछु ओर है, वा मोती कछु और ।
या मोती है सब्द का, व्यापि रहा सब ठौर ॥११४॥
दरिया माहीं सीप है, मोती निपजै माँहि ।
वस्तु ठिकानै पाइये, नाले खाले नाँहि ॥११५॥
चौदा भुवन भाजि धरे, ताहि कियो वैराट ।
कहै कबिर गुरु सब्द सो, मस्तक डारै काट ॥११६॥
हमकूं स्वामी मति कहो, हम है गरीब अधार ।
स्वामी कहिये तासु कूं, तीन लोक विस्तार ॥११७॥
हमकूं बाबा मति कहो, बाबा है बलियार ।
बाबा है करि बैठसी, धनी सहेगा मार ॥११८॥
यह पद है जो अगमका, रन संग्रामे जूझ ।
समुझे, कूं दरसन दिया, खोजत मुये अबूझ ॥११९॥

सीतल कोमल दीनता, संतन के आधीन ।
वासों साहिब यों मिले, ज्यों जल भीतर मीन ॥१२०॥
कबीर आदू एक है, कहन सुनन कूं दोय ।
जल सें पारा होत है, पारा से जल होय ॥१२१॥
दिल लागा जु दयाल सों, तब कछु अंतर नाँहिं ।
पारा गलि पानी भया, साहिब साधू माँहि ॥१२२॥
ऐसा अविगति रूप है, चीन्हें विरला कोय ।
कहे सुनै देखै नहीं, ताते अचरज मोय ॥१२३॥
सत्तनाम तिरलोक मे, सकल रहा भरपूर ।
लाजे ज्ञान सरीर का, दिखवै साहिब दूर ॥१२४॥
कबीर दुख सुख सब गया, गय सो पिंड सरीर ।
आतम परमातम मिले, दूधे धोया नीर ॥१२५॥
गुरु हाजिर चहुदिसि खड़े, दुनी न जाने भेद ।
कवि पंडित कूं गम नहीं, थाके बपुरे वेद ॥१२६॥
जा कारन हम जाय थे, सनमुख मिलिया आय ।
धन मैली पिव ऊजला, लाग सकी नहि पाय ॥१२७॥
[1]भीतर मनुवा मानिया, बाहिर कहूं न जाय ।
ज्वाला फेरी जल भया, बूझी जलती लाय ॥ १२८॥

१२७. धन–जीवात्मा ।
१. पा॰ तन भीतर मन मानिया, बाहिर कबहु न लाग ।
ज्वाला ते फिरि जल भया, बूझी जलती आग ॥

जिन जेता प्रभु पाइया, ताकूं तेता लाभ।
ओसे प्यास न भागई, जब लग धसै न आभ ॥१२९॥
अकास बेली अमृत फल, पंखि मुवे सब झूर।
सारा जग हि झखि मूआ, फल मीठा पै दूर ॥१३०॥
तीखी सुरति कबीर की, फोड़ गई ब्रह्मंड।
पीव निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ १३१ ॥
ना मैं छाई छापरी, ना मुझ घर नहि गाँव।
जो कोइ पूछे मुझसों, ना मुझ जाति न ठाँव ॥१३२॥

प्रेम को अंग

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाँहि।
सीस उतारे भुँय धरे, तब पैठे घर माँहि ॥ १ ॥
यह तो घर है प्रेमका, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरे, निकट प्रेमका स्वाद ॥ २ ॥
यह तो घर है प्रेमका, ऊँचा अधिक इकंत।
सीस काटि पग तर धरे, तब पैठे कोइ संत ॥ ३ ॥
सीस काटि पासंग८ किया, जीव सेर भरि लीन।
जिहि भावै सो आय ले, प्रेम आगु हम कीन ॥ ४ ॥

१२९. आभ जल। १३० आकाश-गगनमहल। बेली-सुरत। पंखी-मन।
१. खाला—मौसी। ४. देह और प्राण की ममता के त्यागे बिना कोइ भी प्रेम के आनन्द को नहीं ले सकता।

सीस उतारे भुँय धरे, ऊपर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा है तो आव ॥ ५ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जो रुचै, सीस देय ले जाय ॥ ६ ॥
प्रेम पियाला सो पिये, सीस दच्छिना देय ।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥ ७ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान ।
दिया नगारा सब्द का, लाल खड़े मैदान ॥ ८ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै, प्रेम न चीन्हे कोय ।
आठ पहर भींजा रहै, प्रेम कहावे सोय ॥ ९ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै, प्रेम न चीन्हे कोय ।
जा मारग साहिब मिले, प्रेम कहावे सोय ॥१०॥
प्रेम पियारे लालसों, मन दे कीजै भाव ।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥११॥
प्रेम बिकाता मैं सुना, माथा साटै हाट ।
पूछत बिलम न कीजिये, ततछिन दीजै काट ॥१२॥
प्रेम बनिज नहि करि सकै, चढै न नाम कि गैल ।
मानुष केरी खोलरी, ओढि फिरै ज्यों बैल ॥१३॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग ।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥१४॥

पिया पिया रस जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम [1] अमल माता रहै, पियें अमीरस सार ॥३५॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपे सो पीवसी, [1]नातर पिया न जाय ॥३६॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हारका, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३७॥
कबीर तासे प्रीति करु, जो निरवाहे ओर।
बनै तो विविधि न राचिये, देखत लागै खोर ॥३८॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है मैं नाँहि।
प्रेम गली अति सांकरी, तामें दो न समाँहि ॥३९॥
[2]आया बबुला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका सें मिला, तिनका तिनका पास ॥४०॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अलप सनेह।
जबही जलते बीछुरै, तबही त्यागै देह ॥४१॥
सौ [1]जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आंगनै, जानो समुँदर पार ॥४२॥
यह तन वह तन एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने [3]जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥४३॥

३७. छाक–प्यास। ३८. विविधि–अनेकों से। ४०. बबुला–बवंडर। तिनका–जीवात्मा।

१. पा० और न पीपा जाय। २. पा० उठा। ३. पा० दिल।

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम हम चितवौ नाँहि।
सुमिरन मनकी प्रीति है, सो मन तुमही माँहि ॥४४॥
मेरा मन तो तुझ सों, तेरा मन कहुं और।
कहैं कबिर कैसे बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥४५॥
ज्यौं मेरा मन तुझ सों, यौं तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यौं, संधि लखै ना कोय ॥४६॥
प्रीति जु लागी घुल गई, पैठि गई मन माँहि।
रोम रोम पियु पियु करै, मुख की सरधा नाँहि ॥४७॥
जो जागत सो सपन में ज्यौं घट भीतर साँस।
जो जन जाको भावता, सो जन ताके पास ॥४८॥
प्रीति ताहि सो कीजिये, (जो) आप समाना होय।
कबहूक जो अवगुन पड़े, गुनही लहे समोय ॥४९॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥५०॥
यह रस महँगा सो पिवै, छांडि जीव की बान।
माथा साटे जो मिले, तौ भी सस्ता जान ॥५१॥
सबै रसायन हम किया, प्रेम समान न कोय।
रंचक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥५२॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिलावै घोरि ॥५३॥
अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहि आवै आन ॥५४॥

साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाती बुंद।
तृषा गइ एक बुंदसें, क्या ले करो समुंद ॥५५॥
मिलना जगमें कठिन है, मिलि बिछुरौ जनि कोय।
बिछुरा साजन तिहि मिलै, जिहि माथै मनि होय ॥५६॥
जोइ मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय।
मनसे मनसा ना मिलै, (तो) देह मिलै क्या होय॥५७॥
जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहुँ नहि जाय।
जो दिल दिल सें बाहिरा, सो दिल कहां समाय ॥५८॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकैं, पियको लिया रिझाय ॥५९॥
जब लगि मरने सें डरै, तब लगि प्रेमी नाँहि।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समझि लेहु मन माँहि ॥६०॥
पिय का मारग कठिन है, [1]जैसा खांडा सोय।
नाचन निकसी बापुरी, [2]घूंघट कैसा होय ॥ ६१ ॥
प्रिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेढ।
नाचि न जानै बापुरी, कहै आंगना टेढ ॥ ६२ ॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना विधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु सें जो होय ॥ ६३ ॥
गुनवेता औ द्रव्य को, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीती (सो) जानिये, इनते न्यारी होय ॥६४॥

१. पा० खाडा हो जैसा। २. पा० फिर घूघट कैसा।

कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जो बास।
नैना ही अंतर पड़ा, प्रान तुम्हारे पास ॥६५॥
जो है जाका भावता, जब तब मिलि है आय।
तन मन ताको सौंपिये, (जो)कबहु न छाडी जाय ॥६६
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जाका भावता, सो ताही के पास ॥६७॥
तन दिखलावै आपना, कछु न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जु होय ॥६८॥
सही हेत है तासुका, जाको सतगुरु टेक।
टेक निबाहे देह भरि, रहै सब्द मिलि एक ॥६९॥
पासा पकड़ा प्रेमका, सारी किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥७०॥
खेल जु मँडा खिलाडिसों, आनंद बढ़ा अघाय।
अब पासा काहू पडौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥७१॥
आगि आँचि सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निबाहन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥७२॥
नेह निबाहै ही बनै, सोचै बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥७३॥
राईं बातां बीसवा, फिर बीसन का बीस।
ऐसा मनुवा जो करै, ताहि मिलै जगदीस ॥७४॥

७१. जुगबधना–दो सारों का एक जगह आना।

प्रेम पिछोरी तान के, सुख मंदिर में सोय।
घर कबीर को पाय के, कहा मुक्ति को रोय ॥७५॥
प्रीति पुरानि न होत है, जो उत्तम से लाग।
सो बरसां जलमें रहे, पथर न छोडे आग ॥७६॥
तुम पति जानो बीछुरे, साजन प्रीति घटाय।
बैपारी का ब्याज ज्यूं, दिन दिन दून बढाय ॥७७॥
गहरी प्रीति सुजान की, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय।
ओछी प्रीति अजानकी, घटत घटत घटि जाय ॥७८॥
कबीर सूरत मित्र की, दिन दिन चढ़ रहे चित्त।
तन ना मिले तो क्या भया, मन तो मिलता नित्त ॥७९॥
प्रीति जु तासों कीजिये, जाकी जात मजीठ।
प्रीति कुसुंब न कीजिये, भीड़ पड़े दे पीठ ॥८०॥
सजन सनेही बहुत हैं, सुखमें मिले अनेक।
बिपति पड़े दुख बाँटिये, सो लाखन में एक ॥८१॥
बलिहारी उस फूलकी, जामें दूनी बास।
अपना तन मन सौंपके, भया पुराना घास ॥८२॥
नेह निबाहन कठिन है, सबसे नीभत नाँहि।
चढ़बो मोम तुरंग पर, चलबो पावक माँहि ॥८३॥
प्रेम प्रीतिसें जो मिले, ताको मिलिये धाय।
कपट राखि के जो मिले, तासें मिले बलाय ॥८४॥

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
हम तुम एक नगर बसे, (जो)भीख माँग नित खाय।८५॥
एक दृष्टि दो नैन हैं, एक सब्द दो कान ।
हम तुम एके पटतरा, दो घट में इक प्रान ॥८६॥
पपिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
पंछी बिरुद न छांडही, क्यों छांड निजदास ॥८७॥
आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग ।
हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा बैराग ॥८८॥
जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय ॥८९॥
प्रेम पंथमें पग धरे, देत न सीस डराय ।
सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥

विरह को अंग ।

रात्यूं रुनी बिरहिनी, ज्यूं बचोंको कुंज
कबीर अंतर परगट्यो, बिरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

---

८७. बिरद—बाना ।९०. जन्म नसाय—आवागमन का नाश होता है ।

१. रुनी—उदास हुई । कुंज—क्रौंच । जैसे क्रौंच पक्षी अपने बच्चों के बिछुड़ने पर विलाप करता है ।

१. पा० रावेचा ।

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय।
हम तुम एक नगर बसे, (जो)भीख मांग नित खाय॥८५॥
एक दृष्टि दो नैन हैं, एक सब्द दो कान।
हम तुम एके पटतरा, दो घट में इक प्रान॥८६॥
पपिया तो पिउ पिउ करे, निस दिन प्रेम पियास।
पंछी बिरुद न छांडही, क्यौं छांड निजदास॥८७॥
आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग।
हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा बैराग॥८८॥
जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय।
बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय॥८९॥
प्रेम पंथमें पग धरे, देत न सीस डराय।
सपने मोह न्यापे नहिं, ताको जन्म नसाय॥९०॥

बिरह को अंग।

रात्यूं रूनी बिरहिनी, ज्यूं [1]बचौंको कुंज
कबीर अंतर परजल्यो, बिरह अग्नि को पुंज॥ १॥

८७. बिरद–बाना। ९०. जन्म नसाय–आवागमन का नाश होता है।

१. रूनी–उदास हुई। कुंज–क्रौंच। जैसे क्रौंच पक्षी अपने बच्चों के बिछुड़ने पर विलाप करता है।

१. पा० संचिया।

अमर कुंज कुरलाइया, गरजि भरा सब ताल।
जिनते [1]साहिब बिछुरा, तिनका कौन हवाल ॥ २ ॥
[2]चकवी बिछुरी रैन की, [3]आय मिली परभात।
जो जन बिछुरे नामसों, दिवस मिले नहि रात ॥ ३ ॥
वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माँहि।
जो नर बिछुरे राम सों, तिनको धूप न छाँहि ॥ ४ ॥
बहुत दिनन की जोहती, [4]बाट तुम्हारी राम।
जिय तरसै तुव मिलन को, मन नाँहीं बिसराम ॥ ५ ॥
विरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछे धाय।
एक सब्द कहो पीवका, [5]कब हि मिलेंगे आय ॥ ६ ॥
विरहिनि देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव।
जल बिन मछली क्यों जिये, पानी में का जीव ॥ ७ ॥
विरहिनि देय सँदेसरा, सुनहू राम सुजान।
वेगि मिलो तुम आय के, नहि तो तजिहौं प्रान ॥ ८ ॥
विरहिनि विरह जलाइया, बैठी ढूँढे छार।
पति को (य) कुइळा ऊबरे, जारे दूजी बार ॥ ९ ॥

२. अमर-आकाश में। आकाश में क्रौंच पक्षी वर्षा में चिल्लाते हैं। ४. छूप न छाहि न धूप ही अच्छी लगती है और न छाया।

१. पा० सतगुर (साईं) २. पा० रैन की बिछुरी चाकरी। ३. पा० आनि। ४. पा० रटत तुम्हारो नाम। ५. पा० कबरे।

बिरहिनि जलती देखि कै, साँई आये धाय।
प्रेम बुँद सों छिरकि के, जलती लेय बुझाय ॥१०॥
बिरहिनि थी तो क्यों रही, जरी न पिव के साथ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजै हाथ ॥११॥
बिरहिनि उठि उठि भुँइ परै, दरसन कारन राय।
लोहा माटी मिल गया, तब पारस किहि काम ॥१२॥
मूये पीछे मति मिलो, कहैं कबीरा राम।
लोहा माटी मिल गया, तब पारस किहि काम ॥१३॥
बिरह जलन्ती मैं फिरूँ, मोहि बिरह का दुक्ख।
छाँह न बैठूँ डरपती, मति जलि उठै रुक्ख ॥१४॥
बिरह तेज तनमें तपै, अंग सबै अकुलाय।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूंढि फिरि जाय ॥१५॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१६॥
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय।
गूँगा सपना देखिया, समझि समझि पछिताय॥१७॥
बिरह बड़ो बरी भयो, हिरदा धरै न धीर।
सुरति सनेही ना मिलै, मिटै न मन की पीर ॥१८॥
बिरह सबल दल साजिके, घेरि लियो मोहि आय।
नाहि मारै छाड़ै नहीं, तलफि तलफि जिय जाय॥१९॥

११. गहेलरी—पागल।

बिरह कुल्हाड़ी तन बहै, घाव न बांधै रोह।
मरने का संसै नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥२०॥
बिरह अगनि तन मन जला, लागि रहा तन जीव।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥२१॥
बिरह जलाई मैं जलूँ, जलती जलहर जाऊँ।
मो देखा जलहर जलै, सन्तो कहँ बुझाऊँ ॥२२॥
बिरहा पूत लुहार का, धुवै हमारी देह।
कुइला किया न छूटि है, जब लग होय न खेह ॥२३॥
बिरहा पीव पठाइया, कही साधु परमोधि।
जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि ॥२४॥
बिरहा आया दरदसों, कडुवा लागा काम।
काया लागी काल है, मीठा लागा राम ॥२५॥
बिरहा सेती मति अड़े, रे मन मोर सुजान।
हाड मांस रग खात है, जीवत करै मसान ॥२६॥
बिरही प्रानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥ २७ ॥
बिरहा बिरहा मति कहो, बिरहा है सुलतान।
जा घट बिरह न संचरे, सो घट जान मसान ॥ २८ ॥

२०. रोह–घावका भर आना। २२. जलहर—तालाव वगैरह।
२४. तालबेली—छटपटी, बेचैनी।

बिरहा मोसों यों कहै, गाढ़ा पकड़ो मोहि ।
चरन कमल की मौजमें, ले पहुँचावों तोहि ॥ २९ ॥

बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बियोग ।
दुख सिरहाने पाय तन, कौन बना संजोग ॥ ३० ॥

बिरहा कहै कबीरको, तू मति छाड़ै मोहि ।
पारब्रह्म के तेज में, जहाँ ले राखूँ तोहि ॥ ३१ ॥

कबीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान ।
बेगि मिलो तुम आयके, नहि तो तजि हौं प्रान ॥३२॥

कबीर हसना दूर करु, रोने से करु चीत ।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥ ३३ ॥

कबीर बिनगी बिरहकी, मो तन पडी बड़ाय ।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥ ३४ ॥

कबीर सुपनै रैनके, पडा कलेजे छेक ।
जब सोऊँ तब दुइ जना, जब जागूँ तब एक ॥ ३५ ॥

कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेय ।
जिहि जिहि औषध हरि मिलै, सो मो औषध देय ॥ ३६ ॥

कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि ।
बैद न बेदन जानसी, करक कलेजे माँहि ॥३७॥

---

३५. सोना—अज्ञान । जागना—ज्ञान । ३६. बैद—संसारी उपदेशक ।
३७. करक—कसक ।

जाहु वैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या वेदन निरमई, भला करेगा सोय॥ ३८॥
अंदेसो नहि भागसी, संदेसो कहिआय।
कै हरि आया भागसी, कै हरि पास गयाय॥ ३९॥
आय न सकि हौं तोहि पै, सकूँ न तुझे बुलाय।
जियरा योंही लेहुगे, विरह तपाय तपाय॥ ४०॥
या तन जारूँ मसि करूँ, धूंवा जाय सुरंग।
मति वह राम दया करै, वरसि बुझावै अंग॥ ४१॥
या तन जारूँ मसि करूँ, लिखूँ राम को नाँव।
लेखनि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाँव॥४२॥
साँई सेवत जरि गई, मांस न रहिया देह।
साँई जब लग सेयहीं, या तन है है खेह॥ ४३॥
कै विरहिनि को मीच दे, (कै)आप आय दिखलाय।
आठ पहरका दाझना, मो पै सहा न जाय॥ ४४॥
तन मन जोवन जारिके, भसम किया सब देह।
उठी कबीरा विरहिनी, अजहूँ ढूँढ़ै खेह॥ ४५॥
ईं जु विरह की लाकडी, समुझि समुझि धुँधवाय।
छूटि परूँ जो विरह सों, सगरी ही जलि जाय॥ ४६॥
लकडी जलि कुइला भये, मो तन अजहूँ आग।
विरह की ओदि लाकडी, सिलग सिलग उठि जाग॥४७॥

४२. करक–अस्थिपञ्जर।

निसदिन दाझे विरहिनी, अंतर गति की लाय।
दास कबीरा क्यों बुझे, सतगुरु गये लगाय ॥ ४८ ॥

तन मन जोवन यों जला, विरह अगिनि सों लागि।
मिरतक पीर न जानही, जानेगी वा आगि ॥ ४९ ॥

चोट सतावै विरह की, सब तनजरजर होय।
मारन हारा जानि है, कै जिस लागि सोय ॥ ५० ॥

अँखियन तो झाँई परी, पथ निहार निहार।
जिभ्या तो छाला पड्या, नाम पुकार पुकार ॥ ५१ ॥

नैनन तो झडि लाइया, रहट बहै निसुवास।
पपिहा ज्यों पिव पिव रटै, पिया मिलन की आस ॥५२॥

सब रग ताँती रबाव तन, विरह बजावै नीत।
और न कोई सुनि सकै, कै साँई कै चीत ॥५३॥

या तन का दिवला करूँ, बाती मेलूं जीव।
लोहू सींचूं तेल ज्यों, तब मुख देखूं पीव ॥५४॥

[1]अँखिया प्रेम कसाइयाँ, जिन जानी दुखदाय।
नाम सनेही कारनै, रो रो रात बिताय ॥५५॥

---

५३. रबाब–एक प्रकार का बाजा।

१. पा० आँखड़िया प्रेम कसाइया, जनि जानो दुखड़िया।
राम सनेही कारनै, रोय रोय रातड़िया।

[1]सोई आँसू साजना, सोई लोग [2]बिड़ाय ।
जो लोचन [3]लोही चुवै, [4]तो जानो हित आय ॥५६॥
हँसूँ तो दुःख न वीसरूँ, रोऊँ बल घटि जाय ।
मनही मॉहि विसूरना, ज्यों घुन काठ हि खाय॥५७॥
काठ हि घून जो खाइया, खात न किनहु दीठ ।
छाल उखाडी देखिये, भीतर जमिया चीठ ॥५८॥
चीठर जमिया चूनका, बैरी बिरहा खद ।
बीछुरिया सो साजना, बेदन काहू लह ॥५९॥
हसि हसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
हाँसी खेलाँ पिव मिले, (तो)कौन दुहागिन होय॥६०॥
हाँसी खेलाँ पिव मिले, (तो) कौन सहे खुरसान ।
काम क्रोध तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥६१॥
देखत देखत दिन गया, निसिभी देखत जाय ।
बिरहिनीं पिव पावै नही, जियरा तलफत जाय ॥६२॥
[5]रोवत रोवत मैं फिरूँ, नैन [6]गँवायो रोय ।
सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥६३॥
नैना अन्तर आव तू, निसदिन निरखूँ तोहि ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥६४॥

५७. बिसुरना—सुसकना । ५८. चीठ—मैल ।

१. पा० जोइ आसू साजन जन । २ पा० वडाहि । ३. पा० लोहू ।
४. पा० जानो हेत हियाहि । ५. पा० रपरबत । ६. पा० गँवाऊ ।

नैन हमारे बावरे, छिन छिन [1]लोरैं तुज्झ।
ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन मुज्झ ॥६५॥
रनयौं राम छिपाइयाँ, रहु रहु संख मझूर।
देवळ देवळ धाहरी, दिवस न ऊगै सूर ॥६६॥
तू मति जानै बीसरो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरुँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥६७॥
फारि पटोरा धज करूँ, कामळियाँ पहराऊँ।
जिन जिन भेषै हरि मिलै, सो सो भेष बनाऊँ ॥६८॥
गळौं तुम्हारे नाम पर, ज्यौं पानी में लौन।
ऐसा विरहा मेलि कै, नित दुख पावै कौन ॥६९॥
सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥७०॥
यो विरहिनि का पिव मुआ, दाग न दीया जाय।
मांस हि गळि गळि भुइ परा, करँक रही ऊपटाय ॥७१॥
भळी भई जो पिव मुआ, नित उठि करता रार।
छूटी गळकी फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥७२॥
काग करंक ढँढोरिया, मुठि इक रहिया हाड।
जिस पिंजर विरहा बसै, माँस कहां रे डाड ॥७३॥

६८. पटोरा—रेशम के कपड़े।

1. पा० लोटैं।

मांस गया पिंजर रहा, [1]तमकन लागे काग।
साहिब अजहूँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥७४॥
काग करंक न चूथि रे, उड़िरे परेरों जाय।
मैं दुख दाझी विरह की, (तू)[2]दाघा मास न खाय॥७५॥
रगत मांस सब भषि गया, नेक न किन्ही कान।
अब विरहा कूकर भया, लागो हाड चबान ॥७६॥
पिय बिन जिय तरसत रहे, पल पल विरह सताय।
रैन दिवस मोहि कल नहिं, सिसकि सिसकि दम जाय॥७७॥
जो जन विरही नाम के, तिनकी गति हैं येह।
देहीसें उद्यम करै, सुमिरन करै विदेह ॥७८॥
मैं तुमको ढूंढत फिरूँ, कहूं न मिलिया राम।
हिरदा माँहि उठि मिले, कुसल तुम्हारे काम ॥ ७९ ॥
अंक भरे भरि भेटिया, [3]मनमें बांधी धीर।
कहैं कबिर वह क्यों मिले, जब लग दोय सरीर ॥ ८० ॥
जीव विलंबा जीव सों, अलख लख्यो नहि जाय।
साहिब मिल न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८१॥
जीव विलंबा जीव सों, पिय जो लिया मिलाय।
लेख समाना (अ) लेख में, अब कछु कहा न जाय ॥८२॥
सब को(य) विरहिनि पीयरी, तू बिरहिनि क्यू लाल।
[4]परचा पाया पीव का, यों हम भई निहाल ॥ ८३ ॥

---

१. पा० ताकन। २. पा० दाझा। ३ पा० मन नहि बाधें धीर।
४. पा० अविनासी की सेज पर, मोजी भया निहाल।

अविनासी की सेज का, कैसा है उनमान ।
कहिवे को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ ८४ ॥
अविनासी की सेज पर, केलि करै आनंद ।
कहैं कबिर वा सेज पर, बिलसत परमानंद ॥ ८५ ॥
तन मन जोवन जरि गया, बिरह अगिनि घट लाग ।
बिरहिन जानै पीर को, क्या जानैगी आग ॥ ८६ ॥
आग लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार ।
कबीर जलि कंचन भया, कांच भया संसार ॥ ८७ ॥
तन मन जोवन जारिके, भसम किया सब देह ।
बिरहिनि जरिबरि मरि गई, क्या तू ढूँढै खेह ॥ ८८ ॥
लकड़ी जली कुइला भई, कुइला जलि भइ राख ।
मैं बिरहिनि ऐसी जली, कुइला भई न राख ॥ ८९ ॥
दीपक पावक आनिया, तेल भि आना संग ।
तीनूं मिलिके जोईया, उड़ि उड़ि परै पतंग ॥ ९० ॥
हवस करै पिय मिलनकी, औ सुख चाहै अंग ।
पीड सहे बिनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग ॥ ९१ ॥
चूड़ी पटकूं पलँग सें, चोली लाऊं आगि ।
जा कारन या तन धरा, ना सूती गल लागि ॥ ९२ ॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
चित चकमक चहुटै नहीं, धूँवा है है जाय ॥ ९३ ॥

---

९१ हवस इच्छा । उछंग-गोदी ।

सबही तरु तर जायके, सब फल लीनो चीख।
फिर फिर मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख ॥ ९४ ॥
कबीर जिन कछु जानिया, सुख निंदरी विहाय।
[1]भेरे अवसी बूझिया, पड़ी पड़ी बिललाय ॥ ९५ ॥
राम वियोगी विकल तन, ताहि न चीन्हें कोय।
तबोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥ ९६ ॥
पील कँदौरी सांइया, कँवल कहै इस रोग।
छौने लँघन नित करूं, राम पियारे जोग ॥९७॥
जलो हमारा जीवना, यों मति जीवो कोय।
सब कोइ सूता निंद भरि, हमकुं निंद न होय ॥९८॥
जिहि साईं का सोच है, सो तन फूले नाँहि।
जन कबीर सिमटा रहै, ज्यौं अजा सिंघ पाँहि ॥९९॥
मेरे मन होरी जरै, सब को खेलै काग।
खेत सु मिरगा खा गया, राजा मांगे भाग ॥१००॥
फट रे हिया फाटै नहीं, सांई तनो वियोग।
काला मुँह लीये फिरै, कह परमोधे लोग ॥१०१॥

९५. भेरा=बांस या लकडी का ठूंड जो कि पानी में बहाया जाता है। इहा भेरा से तात्पर्य शरीर का है।

९७. साईं के वियोग में मैं कदूरी की तरह पीली हो गई। अज्ञानी लोग कहते हैं कि इसे पीलिया रोग हो गया है। मैंने प्यारे राम के मिलने के लिये पाच ज्ञान इन्द्रिया और मन के विषयों को त्याग दिया है।

१. पा- मैं अबूझी बूझीया, पूरी पडी बलाय।

फाटे दीदे मैं फिरूं, नजर न आवै कोय।
जिस घट मेरा सांइया, सो क्यों छाना होय॥१०१॥
बिरहा बुरा जिनि कहो, बिरहा है सुलतान।
जा घट हरि बिरहा नहीं, सो घट सदा मसान॥१०३॥
जा तनमें बिरहा वसे, ता तन लोहु न मांस।
इतना बहुत जु ऊवरा, हाड चाम अरु स्वास॥१०४॥
पहिले अगनी बिरह की, पीछे प्रेम पियास।
कहैं कबिर तब जानिये, राम मिलन की आस॥१०५॥
जितना अवगुण मैं किया, तितना करै न कोय।
काला हूवा मूलडा, धोय न सकहूं रोम॥१०६॥
विरहीनी मर जायगी, आतुर हाल शरीर।
वेगी दर्शन दीजिये, जीवै दास कबीर॥१०७॥
मैं दीवानी नाम की, कहै दिवानी कोय।
मोहि दिवाना आ मिला, (तब)वैदी चंगी होय॥१०८॥
कबीर पीर पिरावनी, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर जो प्रीति की, रही कलेजे छाय॥१०९॥
सो सर मेरे मन बस्या, जिहि सर मारा कालिह।
सर विनु सलु पाऊं नहीं, तिहि सर अजहू मारि॥११०॥
मो चित तिल नहि वीसरौं, तुम हरि दूर थयांह।
यहि अँग औलू भाजसी, जद तद तुम मिलियांह॥१११॥

१११- औलू-मधुरस्मृति।

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
खेत बिचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
कबीर अनहूआ हुआ, बहु रीता संसार ।
पड़ा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
कबीर वा दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
मृतु मंडल में आय के, बिसरि गया जगदीस ॥२२॥
कबीरँ बेड़ा जरजरा, कूड़ा खेवन हार ।
हरुये हरुये तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥२३॥
कबीर पांच पखेरुआ, राखै पोष लगाय ।
एक जु आयो पारधी, लइ गय सबै उड़ाय ॥२४॥
कबीर पैंडा दूर है, बीचि पड़ी है रात ।
ना जानौं क्या होयगा, ऊँगते परभात ॥ २५ ॥
कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार ।
आप आपको काटि है, कहै कबीर बिचार । २६ ॥
कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाडै ओट ।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, घनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
कबीर नाव तो झांझरि, भरी बिराने भार ।
खेवट सौं परिचै नहीं, क्यौं कर उतरै पार ॥ २८ ॥

२४. पांच पखेरू—पांच प्राण ।

कबीर रमरी पात्र में, कह सोवै सुख चैन।
सांस नगारा कूच का, वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावन हार ॥ ३० ॥
कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।
कान पकरिकै ले चले, ज्यौं अजिया हि खटीक ॥३१॥
कबीर पानी हौज का, देखत गया बिलाय।
ऐसे ही जिव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
कबीर चित्त हि चमकिया, किया पयाना दूर।
कायथ कागज काढिया, दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
कबीर केवल नाम कह, सुद्ध गरीबी चाल।
कूर बड़ाई बूडसी, भारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
कबीर पूंजी साहकी, तू जिन करै खुवार।
खरी बिगुरचन होयगी, लेखा देती बार ॥ ३५ ॥
मरेंगे मरि जायंगे, कोय न लेगा नाम।
ऊजड जाय बसाहिंगे, छोडि बसन्ता गाम ॥ ३६ ॥
लेखा देना सोहरा, जो दिल साँचा होय।
साँई के दरबार में, पल्ला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
कायथ कागज काढिया, लेखा वार न पार।
जबलग सांस सरीरमें, तब लग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

३१. अजिया-बकरी। खटीक-कसाई। ३३. कायथ-चित्रगुप्त।

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि।
खेत बिचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
कबीर अनहूआ हुआ, बहु रीता संसार।
पड़ा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
कबीर 'वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस।
मृतु मंडल में आय के, बिसरि गया जगदीस ॥२२॥
कबीर बेड़ा जरजरा, कूड़ा खेवन हार।
हरुये हरुये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
कबीर पांच पखेरुवा, राखै पोष लगाय।
एक जु आयो पारधी, लइ गय सबै उड़ाय ॥२४॥
कबीर पैडा दूर है, बीचि पड़ी है रात।
ना जानौ क्या होयगा, ऊगँते परभात ॥ २५॥
कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार।
आप आपको काटि है, कहै कबीर बिचार। २६॥
कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यौं, धनी सहै सिर चोट ॥ २७॥
कबीर नाव तो झाझरि, भरी बिराने भार।
खेवट सौं परिचै नहीं, क्यौं कर उतरै पार ॥ २८॥

२४. पाच पखेरू–पाच प्राण।

कबीर रसरी पांव में, कह सोवै सुख चैन।
सांस नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावन हार ॥ ३० ॥
कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।
कान पकरिके ले चले, ज्यौं अजिया हि खटीक ॥ ३१ ॥
कबीर पानी हौज का, देखत गया बिलाय।
ऐसे ही जिव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
कबीर चित्त हि चमकिया, किया पयाना दूर।
कायथ कागज काढिया, दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
कबीर केवल नाम कह, सुद्ध गरीबी चाल।
कूर बड़ाई बूड़सी, भारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
कबीर पूंजी साहकी, तू जिन करै खुवार।
खरी बिगुरचन होयगी, लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
मरेंगे मरि जायंगे, कोय न लेगा नाम।
ऊजड़ जाय बसाहिंगे, छोडि बसन्ता गाम ॥ ३६ ॥
लेखा देना सोहरा, जो दिल साँचा होय।
साँई के दरबार में, पला न पकड़े कोय ॥ ३७ ॥
कायथ कागज काढिया, लेखा वार न पार।
जबलग सांस सरीरमें, तब लग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

३१. अजिया–बकरी। खटीक–कसाई। ३३. कायथ–चित्रगुप्त।

जिनके नौबत बाजती, मैंगल बंधति वारि।
एकहि गुरुके नाम बिन, गये जनम सब हारि॥ ३९॥
ढोल दमामा दुरबरी, सहनाई सँग मेरि।
औसर चले बजायकें, है कोय राखै फेरि॥ ४०॥
एक दिन ऐसा होयगा, सब सो परै बिछोह।
राजा राना राव रँक, सावध क्यों नहि होय॥४१॥
ऊजड़ खेड़े टेकरी, घड़ि घड़ि गये कुम्हार।
रावन जैसा चलि गया, लंका को सरदार॥ ४२॥
आज काल के बीचमें, जंगल होगा वास।
ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरैंगे घास॥ ४३॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास॥ ४४॥
पानी केरा बुद बुदा, इस मानुसकी जात।
देखत ही छिप जायंगे, ज्यों तारा परभात॥ ४५॥
रात गँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय॥ ४६॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का मीत॥ ४७॥
निःशंक बैठा, नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जलका बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार॥४८॥

३९ मैंगल—हाथी। ४०. दुरबरी—तासा।

यह औसर चेत्यो नहीं, पशु ज्यों पाली देह ।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़े मुख खेह ॥४९॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु सों किया न हेत ।
अब पछितावा क्या करै, चिड़ियां चुगि गइ खेत ॥५०॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँ, काल कहै फिर काल ।
आज काल के करत ही, औसर जासी चाल ॥५१॥
काल करै सो आज कर, सबहि साज तुव साथ ।
काल काल तू क्या करै, काल काल के हाथ ॥५२॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब ।
पलमें परलय होयगी, बहुरि करेगा कब्ब ॥५३॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥५४॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय ।
ना जानों क्या होयगा, पल के चौथे भाय ॥५५॥
ऊँचा दीसै [१]धौहरा, माँड़ी चीती पोल ।
एक गुरु के नाम बिना, जम मारेंगे रोल ॥५६॥
ऊंचा मंदिर मेड़ियां, चूना कली ढुलाय ।
एकहि गुरु के नाम बिन, जदि तदि परलै जाय ॥५७॥
ऊंचा महल चुनाइया, सुबरन कली ढुलाय ।

५६- धौल्हरा–मीनार । माड़ीचीती–चित्रकारी की हुई । पोल–दरवाजा । रोल–खेल । १- पा० धौल्हरा ।

ते मन्दिर खाली पडे, रहै मसानां जाय ॥५८॥
[1]ऊंचा महल चूनावते, करते होडम होड ।
ते मंदिर खाली पडे, गये पलकमें छोड ॥५९॥
[2]सातों शद्द जु बाजते, घरि घरि होते राग ।
ते मंदिर खाली पडे, बैठन लागे काग ॥६०॥
कहा चुनावै मेडियां, चूना माटी लाय।
मीच सुनैगी पापिनी, दौरि कि लेगी आय ॥६१॥
कहा चुनावै मेडियां, लंबी भींत उसारि[3] ।
घर तो साढे तीन हथ, घना तु पौने चारि ॥६२॥
पांच तत्व का पूतला, मानुस धरिया नाम ।
दिना चार के कारनै, फिर फिर रोकै ठाम ॥६३॥
पाकी खेती देखिके, गरवै कहा किसान।
अजहू झोला बहुत है, घर आवे तब जान ॥६४॥
[4]हाड जले लकडी जले, जले जलावन हार ।
कौतिक हारा भी जले, कासों करूं पुकार ॥६५॥
घर रखवाला बाहिरा, चिडियां खाया खेत।
आधा परधा ऊबरै, चेति सकै तो चेत ॥६६॥
मौत बिसारी बावरी, अचरज कीया कौन ।
तन माटीमें मिलि गया, ज्यौं आटामें लौन ॥६७॥

१. पा० सुबरन कली ढुलावते, । २. पा० पाचौ शद्द जु बाजते, ।
३. पा० मडा ।

जनमै मरन बिचारि के, कूरे काम निवारि ।
[1]जिन पथा तोहि चालना, सोई पंथ सँवारि ॥६८॥
जिन गुरुकी चोरी करी, गये नाम गुन भूल ।
ते बिधना बागल रचे, रहे अरथ मुख झूल ॥६९॥
राम नाम जाना नहीं, पाला सकल कुटुंब ।
धंधा ही में पचि मरा, बार भई नहि बुंब ॥७०॥
रामनाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज ।
बूडोगे रे बापुरे, बडे बडों की लाज ॥७१॥
रामनाम जाना नहीं, ता मुख आन धरंम ।
कै मूसा कै कातरा खाता गया जनंम ॥७२॥
राम नाम जाना नहीं, मेला मना बिसार ।
ते नर हाली बालदी, सदा पराये बार ॥ ७३ ॥
राम नाम जाना नहीं, बात बिनूठी भूल ।
[2]हरिसा हिवू बिसारिया, अंत पडी मुख धूल ॥ ७४ ॥
राम नाम जाना नहीं, चूके अब की घात ।
माटी मिलन कुम्हारकी, घनी सहेगा लात ॥ ७५ ॥
माटी कहै कुम्हारको, क्या तू रौंदै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा, मै रौंदोगी तोहि ॥ ७६ ॥

७० बुंब—हका, सुयश ।

१. पा० जिन जिन पंथौं चाल्ना, सो निज पंथ सँवारि ।

२. पा० हेरत इहानी हारिया, पटत पडी मुख धूल ।

लकड़ी कहै लुहारसों, तू मति जारै मोहिं।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहि ॥ ७७ ॥
कहा किया हम आयके, कहा करेंगे जाय।
इत के भये न ऊतके, चाले मूल गँवाय ॥ ७८ ॥
जग जहदा में राचिया, झूठे कुलकी लाज।
तन छीजै कुल विनसि है, रटै न नाम जहाज ॥ ७९ ॥
यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै थे साथ।
टपका लागा फुटि गया, कछू न आया हाथ ॥ ८० ॥
यह तन काचा कुंभ है, चोट चहूं दिस खाय।
एक हि गुरुके नाम बिन, जदि तदि परलै जाय ॥ ८१ ॥
यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया रहिवास।
कबीर नैन निहारिया, नहिं जीवनकी आस ॥ ८२ ॥
दुनिया भांडा दुख का, भरा मुँहा मुँह मूख।
आदी अल्लह राम की, कुरलै वौनी कूख ॥ ८३ ॥
दुनिया के मैं कुछ नहीं, मेरे दुनिया कात।
साहिब दर देखै खड़ा, दुनिया दोजख जात ॥ ८४ ॥
दुनिया सेती दोसती, होय भजनमें भंग।
एकाएकी राम सों, कै साधन के संग ॥ ८५ ॥
दुनियाके धोखै मुआ, चला कुटुंबकी कानि।
तब कुलकी क्या लाज है, जब ले धरा मसानि ॥ ८६ ॥

७९. जहदा—जहाद, साम्प्रदायिक कल्ह। ८४. कात—कबीर।

कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखै कुल जाय।
राम निकुल कुल भेटिया, सब कुल गया बिलाय॥ ८७॥
कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय।
तब कुल काको लाजि है, चारि पाँव का होय॥ ८८॥
कुल करनी के कारनै, ढिग ही रहिगो राम।
तब कुल काको लाजि हैं, (जब)जम की धूमाधाम॥ ८९॥
कहत सुनत जग जात हैं, विषय न सूझै काल।
कहैं कबिर सुन मानिया, साहिब नाम सम्हाल॥ ९०॥
पानी का सा बुद बुदा, देखत गया बिलाय।
ऐसा जियरा जायगा, दिन दस ढीली लाय॥ ९१॥
काया मंजन क्या करैं, कपड़ा धोयम धोय।
ऊजल होय न छूटसी, सुख निंदरि नहि सोय॥ ९२॥
ऊजल पहिनै कापड़ा, पान सुपारी खाय।
कबीर गुरुकी भक्ति बिन, बाँधा जमपुर जाय॥ ९३॥
मलमल खासा पहिरते, खाते नागर पान।
टेढ़ा होकर चालते, करते बहुत गुमान॥ ९४॥
महलन मांहीं पोढते, परिमल अंग लगाय।
ते सपने दीसे नहीं, देखत गये बिलाय॥ ९५॥
महलन मांहीं पोढते, परिमल अंग लगाय।
छत्रपती की छारमें, गदहा लोटे जाय॥ ९६॥
जंगल ढेरी राखकी, उपरि उपरि हरियाय।
तेभी होवे मानवी, करते रंग रलियाय॥ ९७॥

मेरा संगी कोय नहि, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिय विस्वास न होय ॥९८॥
थलि जो चरता मिरगला, बेधा इक जूं सोंन।
हम तो पथी पंथ सिर, हरा चरेगा कौन ॥९९॥
जिसको रहना उत घरा, सो क्यों तोड़ै मीत।
जैसे परघर पाहुना, रहै उठाये चीत ॥१००॥
इत परघर उत है घरा, बनिजन आये हाट।
करम करीना बेचि के, उठि करि चालो बाट॥१०१॥
ज्यौं कोरी रेजा बुनै, [1]नीरा आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तो दौर ॥१०२॥
कोठे ऊपर दौरना, सुख निंदरि नहि सोय।
पुंनै पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१०३॥
मैं मेरी तू जनि करै, मेरी मूल विनासि।
मेरी पगका पैखडा, मेरी गलकी फांसि ॥१०४॥
मैं मैं बडी बलाय है, सको तो निकसु भागि।
कबलग राखो रामजी, रुई लपेटी आगि ॥१०५॥
मोर तोर की जेवरी, बल बंधा संसार।
[2]कदा सुकुलवा सुतकलित, दाझिन बारबार ॥१०६॥
मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार।
दास कबिरा क्यों बंधे, जाके नाम अधार ॥१०७॥

---

१०४. पैखडा–बेडी।

१. पा० बुनता। २. पा० कायस कूटे वस्तु फल।

नान्हा कातौ चित्त दे, महँगे मोल विकाय ।
ग्राहक राजा राम है, और न नीरा जाय ॥१०८॥
तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आय ।
को काहू का है नहीं, देखा ठोंकि बजाय ॥१०९॥
राम कहेते खिझ मरै, कुष्ट होय गलि जाय ।
सूकर ह्वै करि औतरै, नाक बूडता खाय ॥११०॥
पुर पट्टन काया पुरी, पाच चोर दस द्वार ।
जमराजा गढ़ मेलसी, सुमरि लेहु करतार ॥१११॥
पीपर सूना फूल बिन, फल बिन सूनो राय ।
एकाएकी मानुषा, टप्पा दीया आय॥११२॥
राज दुवारे बांधिया, मूड़ी धुनै गयंद ।
मनुष जनम कव पायहू, कब भजिहू गोविंद ॥११३॥
आये हैं ते जायंगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंघासन चढ़ि चले, (एक)बांधे जात जँजीर ॥११४॥
या मन गहि जो थिर रहै, गहिरी धूनी गाड़ि ।
चलती बिरिया उठि चला, हस्ती घोड़ा छाड़ि ॥११५॥
तू मति जानै बावरे, मेरा है सब कोय ।
पिंड प्रान सो बधि रहा, सो नहि अपना होय ॥११६॥
दीन गँवायो दूनि सँग, दुनी न चाली साथ ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥११७॥
मैं भौरा तुहि बरजिया, बन बन बास न लेय ।
अटकेगा कहुं बेलसों, तड़प तड़प जिय देय ॥११८॥

वाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता वास।
सो तो भौंरा उड़ि गया, तजि वाड़ीकी आस ॥११९॥
ऐसी गति संसार की, ज्यौं गाडर को ठाट।
एक पड़ी जिहि गाड़ में, सबै जाहि तिहि बाट ॥१२०॥
एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस।
लंकापति रावन गया, वीस भुजा दस सीस ॥१२१॥
कालचक्र चक्की चलै, बहुत दिवस औ रात।
सगुन अगुन दोय पाटला, तामें जीव पिसात ॥१२२॥
राम भजो तो अब भजो, बहोरि भजोगे कब्ब।
हरिया हरिया रूखड़े, इंधन हो गये सब्ब ॥१२३॥
भै बिनु भाव न ऊपजै, भै बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भै गया, मिटी सकल रस रीति ॥१२४॥
भयसे भक्ति करै सबै, भयसे पूजा होय।
भय पारस है जीवको, निरभय होय न कोय ॥१२५॥
डर करनी डर परमगुरु, डर पारस डर सार।
डरता रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥१२६॥
खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकवाद।
बांझ हिलावै पालना, तामें कौन सवाद ॥१२७॥
यह त्रिरियाँ तो फिरि नहि, मन में देखु बिचार।
आया लाभ हि कारनै, जनम जुआ मति हार ॥१२८॥

१२१. हीस—हविश, इच्छा। १. पा० डर।

बैल गढन्ता नर गढा, चूका सींग रु पूछ।
एक हि गुरुके नाम बिनु, धिक दाढी धिक मूछ ॥१२९॥

यह मन फूला विषय बन, तहां न लावो चीत।
सागर क्यों ना उडि चलो, सुनी वैन मन मीत ॥१३०॥

कहैं कबीर पुकारि के, चेत नाहीं कोय।
अबकी बिरियाँ चेति है, सो साहिबका होय ॥१३१॥

धोखे धोखे जुग गया, जनमहि गया सिराय।
थिति नहि पकडो आपनी, यहदुःख कहासमाय ॥१३२॥

केतो कहू बुझाय कै, परहथ जीव बिकाय।
मैं खैंचू सत लोकको, [1]सीधाजमपुर जाय ॥१३३॥

झूठा सब संसार है, कोउ न अपना मीत।
सतनाम को जानि ले, चलै सो मौजल जीत ॥१३४॥

एकदिन ऐसा होयगा, कोय काहुका नाँहि।
घरकी नारी को कहै, [2]तनकी नारी जाहि ॥१३५॥

आठ प्रहर योंही गया, माया मोह जंजाल।
सतनाम हिरदे नहीं, जीत लिया जम काल ॥१३६॥

मंदिर माँही झलकती, दीवा की सी ज्योति।
हंस बगऊ चलि गया, काढो घरकी छोति ॥१३७॥

---

१३५. तन की नारी—नाडी।

[1] पा० बाधा। [2] पा० घरकी।

बारी बारी आपने, चले पियारे मीत।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवे नीत ॥१३८॥
सेस नागके सहस फन, फन फन जिभ्या दोय।
नरके एकै जीभ है, रहे ताहि में सोय ॥१३९॥
परदे रहती पदमिनी, करती कुलकी कान।
छड़ी जु पहुँची कालकी, छोड़ भई मैदान ॥१४०॥
मछरी यह छोड़ौ नहीं, धीमर तेरो काल।
जिहि जिहि डाबर घर करो, तहँ तहँ मेले जाल ॥१४१॥
पानीमें की माछरी, क्यौं नैं पकर्या तीर।
कढ़िया खटकी कालकी, आई पहुँचा कीर ॥१४२॥
हे मतिहीनी माछरी, राखि न सकी शरीर।
सो सरवर सेवा नहीं, जाल काल नहि कीर ॥१४३॥
हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय।
कदि समुद्रसे रूसना, छीलर चित्त दियाय ॥१४४॥
हे मतिहीनी माछरी, छीलर माडी आलि।
डाबरिया छूटै नहीं, सकै तु समुँद सँभाल ॥१४५॥

---

१३८. शास्त्र का कथन है कि शेष नाग भी अपनी दो हजार जिह्वाओं से हरि का भजन करता है। वह भी अपनी। जिह्वाओं को प्रपंच से रोके रहता है। नर के एक जीभ है परंतु यह उसे भी नहीं रोक सकता।

१४२. कीर—धीमर। १४५. आल—क्रीड़ाविहार।

मछली फिरि फिरि बाहुरी, ताकि समुंदर तीर ।
दरिया भीतर घर किया, कहा करैगा कीर ॥१४६॥
आंखड़ियाँ रतनालियां, चेजा करे पताल ।
मैं तोहि बूझौं माछली, तू क्यों बंधी जाल ॥१४७॥
सूखन लागे केवड़ा, टूटन लागै डार ।
पानी की कल जानता, चला सो सींचन हार ॥१४८॥
भाई बीर बटाउवा, भरि भरि नैनन रोय ।
जाका था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१४९॥
मरती बिरियाँ पुंन करे, जीवत बहुत कठोर ।
कहैं कबिर क्यों पाइये, काढै खांडे चोर ॥१५०॥
कबीर यह चिन्तामनी, [1]मत संसार गँवाय ।
जो पहिले सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाय ॥१५१॥
जब रँग था तब ना रंगा, हरि रँग मान मजीठ ।
अब पछताये क्या हुआ, जब रंग दिन्हा पीठ ॥१५२॥
सुमरिन का संसै रहा, पछितावा मन माँहि ।
कहैं कबीरा रामरस, सघरा पीया नाँहि ॥१५३॥
विषय वासना उरझिकर, जनम गँवाया बाद ।
अब पछितावा क्या करै, निजकरनी कर याद ॥१५४॥
कबीर दरदीवान जो, क्यों करि पावे दाद ।
पहिले बुरी कमायके, पीछे करि फिरियाद ॥१५५॥

१४७. चेजा–घर । १५५. दाद–धन्यवाद ।
१. पा० जनि संसारी जाय ।

एक बुन्द ते सब किया, नर नारी का नाम।
सो तूं अन्तर खोजि ले, सकल वियापक राम ॥१५६॥

एक बुंद ते सब किया, यह देहका विस्तार।
सो तू क्यों बीसारिया, अंधा मूढ गँवार ॥१५७॥

सब घट भीतर राम है, ऐसा आप सुजान।
आप आप से बंधिया, आपै भया अजान ॥१५८॥

पांच धातुका पिंजरा, सो तो अपना नाँहि।
अपना पिंजर कहँ बसे, अगम अगोचर माँहि ॥१५९॥

सगा हमारा रामजी, सहुदर है पुनि राम।
और सगा सब सगमगा, कोइ न आवै काम ॥१६०॥

चले गये सो ना मिले, किसको पूछूं बात।
मात पिता सुत बान्धवा, झूठा सब संघात ॥१६१॥

राम बिसारो बावरा, अचरज किन्ही येह।
धन जोवन चल जायगा, अंत होयगी खेह ॥१६२॥

मनुस जन्म तोकूं दियो, भजिबेको हरिनाम।
कहैं कबिर चेत्यो नहीं, लगो औरहि काम ॥१६३॥

मनुस जन्म तोकूं दियो, भजिबेको गोविन्द।
अपनी करनी आपको, कहा बंधाये फंद ॥१६४॥

कबीर केवल नामकी, जबलगि दीपक बाति।
तेल घटा बाती बुझी, तब सोवे दिनराति ॥१६५॥

मनुसा जन्महि पायके, भज्यो न रघुपतिराय ।
तेली केरा बैल ज्यू, फिरिफिरि फेरा खाय॥१६६॥
जो तूं परा है फंदमें, निकसेगा कब अंध ।
माया मद तोकूं चढा, मत भूले मति मंद ॥१६७॥
कबीर काया पाहुनी, हंस बटाऊ माँहि ।
ना जानूं कब जायगी, मोहि भरोसा नाँहि॥१६८॥
[1]माटी केरा पूतला, मानुष धरिया नाम ।
एक कला के बीछुरे, बिकल भया सबठाम ॥१६९॥
यह अवसर चेत्यो नहीं, चूक्यो मोटी घात ।
माटी मिलत कुंमार की, बहुत सहेगो लात ॥१७०॥
दरद न लेवै जात को, मुआ न राखे कोय ।
सगा उसीको कीजिये, (जो)नेह निबाहू होय॥१७१॥
मनुषा जनम हि पाय के, जब लगि भज्यो न राम ।
जैसे कुवा जल बिना, ताको नाही काम ॥१७२॥
जिन घर नौबत बाजती, होत छतीसों राग ।
सो घर भी खाली पडे, बैठन लागे काग ॥१७३॥
क्या करिये क्या जोडिये, थोडे जीवन काज ।
छांडि छांडि सब जात है, देह गेह धन राज ॥१७४॥
जागो लोको मत सुवो, ना करु निंदसे प्यार ।
जैसा सपना रैनका, ऐसा यह संसार ॥१७५॥

१. पा० पाच तत्वका पूतला ।

सब कोई मरि जात है, काल काल की फाँस।
सत्तनाम पुकारतां, कोइक उबरा दास ॥१७६॥
एक बुंद के कारनै, रोता सब संसार।
[१](अ)नेक बुंद खाली गये, तिनका नहीं बिचार ॥१७७॥
मरूं मरूं सब को(इ) कहै, मेरी मरै बलाय।
मरना था सो मरि चुका, अब को मरनै जाय ॥१७८॥
मन मूआ माया मुई, संशय मुआ शरीर।
अविनाशी जो ना मरे, तो क्यों मरे कबीर ॥१७९॥
मरते मरते जग मुआ, सुत वित दारा जोय।
राम कबिरा यों मुआ, एक बराबर होय ॥१८०॥
ना मूआ ना मरि गया, नहि आवै नहि जाय।
यह चरित्र करतारका, उपजै और समाय ॥१८१॥
जाय मरै सो जीव है, रमता राम न होय।
जन्म मरनसें न्यारा है, मेरा साहिब सोय ॥१८२॥
हरि मरि हैं तो, हम हूं मरि हैं।
हरि न मरे, हम काहे को मरि हैं ॥१८३॥
नर नारायन रूप है, तू मति जानै देह।
जो समझे तो समझ ले, खलक पलकमें खेह ॥१८४॥
अर्ध कपाले झूलता, सो दिन कर ले याद।
जठरा सेती राखिया, [२]नाँहि पुरुष कर बाद ॥१८५॥

१ पा० बहुत। २. पा० ताहि पुरुष कर याद।

अहिरन की चोरी करै, करै सूई का दान।
ऊंचा चढ़ि कर देखता, केतिक दूर विमान ॥१८६॥

कबीर पट्टण कारिवां, पांच चोर दस द्वार।
जम राना गढ़ मेलसी, बोल गले गोपाल ॥१८७॥

आया अन आया भया, जब राता संसार।
पड़ा भुलावा गाफिला, गये कुबुद्धि हार ॥१८८॥

पानी ज्यौं रि तलावका, दस दिसि गया बिलाय।
यह सब यौं ही जायगा, सकै तो ठाहर लाय ॥१८९॥

माय बिहानी बाप बिड़, हम भी मांझ बिडांहि।
दरिया केरी नाव ज्यूं, संजोगे मिलि जांहि॥१९०॥

आंखि न देखे बावरा, सब्द सुनै नहि कान।
सिरके केस उजल भये, अबहूं निपट अजान ॥१९१॥

क्यौं खोवै नरतन वृथा, परि विषयन के साथ।
पांव कुल्हाड़ी मारही, मूरख अपने हाथ ॥१९२॥

चेत सवेरे बावरे, फिर पाछे पछताय।
तुझको जाना दूर है, कहैं कबीर जगाय ॥१९३॥

मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार।
सत्य सब्द नहि खोजई, जावै जमके द्वार ॥१९४॥

राजपाट धन पाय कर, क्यौं करता अभिमान।
पाड़ोसीकी जो दशा, लइ सो अपनी जान ॥१९५॥

यह नर गर्व भुलाइया, देखी माया झौ
कहै कबिर अब चेत हू, सुमिरि पाछलो कौल ॥१९६॥

समुझाये समझे नहीं, धरे बहुत अभिमान ।
गुरुका शब्द उछेदके, कहत सकल हम जान ॥१९७॥

ज्ञानी होय सो ही, बूझै सब्द हमार ।
कहै कबिर सो बांचि है, और सकल जम धार ॥१९८॥

साधु महातम ना कहै, गुरुवन दिया लखाय ।
कहै कबिर वा [1]गुरुका, [2]चेला चौरासि जाय॥१९९॥

स्वामी सेवकसे कहै, सुनरे चेत अचेत ।
पीतल ही का पारखू, नहि हीरासे हेत ॥२००॥

कबीर मनुवा मोर है, संसय रूपी सांप ।
खाया पीया पचि गया, अन्तर प्रगटे आप ॥२०१॥

१- पा० गुरुआ । २- पा० चला ।

उपदेस को अंग।

जीवदया चित्त राखिके, साखी कहै कबीर।
भौसागर के जीव को, आनि लगावै तीर॥ १॥
अंतर याहि विचारिया, साखी कहो कबीर।
भौसागर में जीव है, सुनि कै लागै तीर॥ २॥
काल काल तत्काल है, बुरा न करिये कोय।
अनबोवै लुनता नहीं, बोवै लुनता होय॥ ३॥
काल काम तत्काल है, बुरा न कीजै कोय।
भले भलाई पै लहै, बुरे बुराई होय॥ ४॥
जो तोको काँटा बुवै, ताको बो तू फूल।
तोहि फूलको फूल है, वाको है तिरसूल॥ ५॥
दुरबल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीवकी साँस से, लोह भसम है जाय॥ ६॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुःख होय॥ ७॥
या दुनियामें आयके, छांडि देय तू पैंठ।
लेना है सो लेय ले, ऊठि जात है पैंठ॥ ८॥
खाय पकाय लुटाय ले, यह मनुवा मिजमान।
लेना है सो लेय ले, यही गोय मैदान॥ ९॥

---

३. अनबोवै-बिना बीज डाले। लुनता नहीं-काटता नहीं। ९. गोय-गेंद।

खाय पकाय लुटायके, करिले अपना काम।
चलती बिरिया रे नरा, संग न चलै छदाम॥१०॥
लेना होय सो रल्द ले, कही सुनीमति मान।
कही सुनी जुगजुग चली, आवा गवन बँधान॥११॥
सत ही में सत बांईई, रोटी में ते टूक।
कहैं कबिर ता दासको, कबहु न आवै चूक॥१२॥
देह धरे का गुन यही, देह देह कुछु देह।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सुदेह॥१३॥
कहैं कबीर पुकारि कै, दो बातें लिखि लेय।
कै साहिब की बदगी, भूखोंको कछु देय॥१४॥
कहै कबीरा देय तू, जबलग तेरी देह।
देह खेह है जायगी, (फिर)कौन कहेगा देह॥१५॥
देह खेह है जायगी, (फिर)कौन कहेगा देह।
निश्चय कर उपकारही, जीवन का फल येह॥१६॥
हाट बड़ा हरि भजन करि, द्रव्य बडा कछु देह।
अकल बडी उपकार करि, जीवन का फल येह॥१७॥
गांठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना है सो लेह॥१८॥
यहां बिसाहन करि चलो, आगे बिसमी बाट।
स्वर्ग बिसाहन ना मिले, ना बनिया ना हाट॥१९॥

१२. सत–आटा।

धर्म किये धन ना घटे, नदी न घट्टै नीर।
अपनी आँखों देख लो, यों कथि कहैं कबीर॥ २०॥

कबीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर।
खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर॥ २१॥

स्वामी है संग्रह करै, दूजे दिन का नीर।
तरै न तारै और को, यों कथि कहै कबीर॥ २२॥

या दुनिया दो रोजकी, मत कर यासें हेत।
गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन सुख देत॥ २३॥

हस्ती चढिये ज्ञान का, सहज दुलीचा डार।
स्वान रूप संसार है, भुंकन दे झक मार॥ २४॥

कबीर काहेको डरे, सिरपर सिरजन हार।
हस्ती चढि डरिये नहीं, कूकर भुसे हजार॥२५॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपुहि सीतल होय॥२६॥

जगमें बैरी कोय नहि, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय॥२७॥

कहने को कहि जान दे, गुरु की सिख तूं लेय।
साकट जन औ स्वान को, फेर जवाब न देय॥२८॥

कबीर तहाँ न जाइये, जहँ जो कुळ को हेत।
साधुपनो जानै नहीं, नाम बाप को लेत॥२९॥

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ सिद्ध को गाँव।
स्वामी कहै न बैठना, फिर फिर पूछै नाँव॥३०॥

कबीर संगी साधु का, दल आया भरपूर।
इंद्रिन को तब बांधिया, या तन कीया धूर ॥३१॥
इष्ट मिले अरु मन मिले, मिले सकल रस रीत।
कहैं कबिर तहँ जाइये, यह संतन की प्रीत ॥३२॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहैं कबिर नहि उलटिये, वही [1]एकही एक ॥३३॥
गारी मोटा ज्ञान, जो रंचक उरमें जरै।
कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँयन परै ॥३४॥
कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै।
गारी सों क्या हानि, हिरदै जु यह ज्ञान धरै॥३५॥
गारी ही सें उपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो सन्त है, लागि मरै सो नीच ॥३६॥
हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा तो हरि सों मिलै, जीता जमके [2]द्वार ॥३७॥
[3]जैसा घट तैसा मता, घट घट और सुभाव।
जा घट हार न जीत है, ता घट ब्रह्म समाव ॥३८॥
जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥३९॥
कथा कीरतन कलि विषे, भौ सागर की नाव।
कहैं कबिर जन तरनको, नाँही और उपाव ॥४०॥

१. पा० एक को। २ पा० लार। ३. पा० जैता घट तेता मता।

कथा कीरतन करनकी, जाके निसदिन रीत।
कहै कबिर वा दाससों, निश्चै कीजै प्रीत॥ ४१॥
कथा कीरतन छाँडि कै, करै जु और उपाव।
कहै कबिर ता साधके, पास कोइ मति जाव॥ ४२॥
कथा कीरतन रातदिन, जाके उद्यम येह।
कहै कबिर ता साधुके, चरन कमलकी खेह॥ ४३॥
कथा करो करतारकी, निसदिन साँझ सकार।
काम कथा को परिहरो, कहै कबीर विचार॥४४॥
कामकथा सुनिये नहीं, सुनि कै उपजै काम।
कहै कबीर विचार कै, [1]बिसरि जात है नाम॥४५॥
कथा करो करतार की, सुनो कथा करतार।
आन कथा सुनिये नहीं, कहै कबीर विचार॥४६॥
आन कथा अंतर परै, ब्रह्म जीवमें सोय।
कहै कबिर यह दोष बड़, सुनि लीजै सब कोय॥४७॥
कथा कीरतन कलि विषे, तरवे को उपकार।
सुनै सुनावै प्रेम सों, यह उपदेस हमार॥४८॥
कथा कीरतन सुननको, जो कोय करै सनेह।
कहै कबिर वा दासको, मुक्तिमें नहि संदेह॥ ४९॥
बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावो ठौर।
समझाया समझै नहीं, देय धका दो और॥ ५०॥

१. पा० भूल जात हरि नाम।

बहते को मत बहन दो, कर गहि ऐंचहु ठौर ।
कह्यो सुन्यो माने नहीं, सब्द कहो दुइ और ॥ ५१ ॥
बंदे तूं कर बंदगी, तो पावै दीदार ।
औसर मानुस जनमका, बहुरि न वारंबार ॥ ५२ ॥
बार बार तो सों कहा, सुनरे मनवा नीच ।
बनजारेका बैल ज्यु, पैंडा माही मीच ॥ ५३ ॥
बनजारे को बैल ज्यूँ, टाडो उतर्यो आय ।
एकन के दूना भया, (एक)चाला मूल गँवाय ॥५४॥
मन राजा नायक भया, टाडा लादा जाय ।
है है है है है रही, पूँजी गई बिलाय ॥ ५५ ॥
बनजारे के बैल ज्यूँ, भरमि फिर्यो चहुँ देस ।
खाँड लादि भुस खात है, बिन सतगुरु उपदेस ॥ ५६ ॥
जीवत कोय समुझै नहि, मुवा न कह संदेस ।
तनमनसें परिचय नहीं, ताको क्या उपदेस ॥ ५७ ॥
जो कोय समुझै सैनमें, तासें कहिये बैन ।
सैन बैन समुझै नहीं, तासो कछु न कैन ॥ ५८ ॥
जिहि जिवरी ते जग बँधा, तूं जनि बँधै कबीर ।
जासी आटा लौन ज्यौं, सोन समान शरीर ॥ ५९ ॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिनको तैसा लाभ ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आभ ॥६०॥

जिन ढूंढ़ा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥ ६१ ॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहीं सब्द समाय ।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अन्त बिलाई खाय ॥ ६२ ॥
.(अल)मस्त फिरै क्या होत है, सुरति सब्द में पोय ।
चतुराई नहीं छूटसी, सुरति सब्द में पोय ॥ ६३ ॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल्ल ।
काम दहन मन बस करन, गगन चढ़न मुसकल्ल ॥ ६४ ॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जु ईंट ।
कबीर अन्तर मेमकी, लागी नेक न छींट ॥ ६५ ॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत ।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥ ६६ ॥
करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय ।
बोवै पेड़ बबूल का, आम कहां ते खाय ॥ ६७ ॥
मैं कथि कहि कहि कहि गये, ब्रह्मा बिस्नु महेस ।
सतनाम तत सार है, सब काहू उपदेस ॥ ६८ ॥
[1]जिनमें जितनी बुद्धि है, तितनो देत बताय ।
वाको बुरा न मानिये, और कहाते लाय ॥ ६९ ॥
काल (का) जीव मानै नहीं, कोटिन कहू बुझाय ।
मैं खैंचूं सतलोक को, बांधा जमपुर जाय ॥ ७० ॥

१. पा० जाको ।

आतम पूजा जिव दया, पर आतम की सेव।
कहैं कबिर सतनाम भज, सहज परम पद लेव ॥ ७१ ॥

सतनाम सुमिरन करै, सतगुरु पद निज ध्यान।
आतम पूजा जिव दया, लहे सो मुक्ति अमान ॥ ७२ ॥

चातुर को चिंता घनी, नहि मूरख को लाज।
सर अवसर जाने नहीं, पेट भरन सूं काज ॥ ७३ ॥

कंचन को कछु ना लगे, आग न कीड़ा खाय।
बुरा भला होय वैश्नव, कदी न नरके जाय ॥७४॥

भूख गई भोजन मिले, ठंड गई कंथाय।
जोबन गइ तिरिया मिले, ताको आग लगाय ॥७५॥

मांगन को भल बोलनो, चोरन को भल चूप।
माली को भल बरसनो, धोबी को भल धूप ॥७६॥

धोती पोती बीनती, गुरु सेवा सतसंग।
ये औरनसें ना बने, खाज खुजावन अंग ॥७७॥

तीन तापमें ताप है, तिनका अनँत उपाय।
ताप आतम महाबली, संत बिना नहि जाय ॥७८॥

हिय हीरा की कोठरी, बारबार मत खोल।
मिले हिराका जौंहरी, तब हीराका मोल ॥७९॥

हां न जाको गुन लहे, तहां न ताको ठांव।
धोबी बस के क्या करे, दीगंबर के गांव ॥८०॥

अति हठ मत कर बांवरे, हठसें बात न होय।
ज्यूं ज्यूं भींजे कामरी, त्यूं त्यूं भारी होय ॥८१॥

सबसे हिलिये सबसे मिलियें, सबका लीजे नाम।
हांजी हांजी सबसे कहिये, बसिये अपने ठाम ॥८२॥

वाद विवादां मति करे, करु निज अपना काम।
गुरु चरनों चित लाय के, भज ले केवल राम ॥८३॥

बालू जैसी करकरी, ऊजल जैसी धूप।
ऐसी मीठी कछु नहीं, जैसी मीठी चूप ॥८४॥

रितु बसंत याचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहि जात ॥८५॥

जो जल बाढे नावमें, घरमें बाढे दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयाना काम ॥८६॥

काम क्रोध तृष्णा तजै, तजै मान अपमान।
सद्गुरु दाया जाहि पर, जम सिर मरदे मान ॥८७॥

काया सों कारज करे, सकल काम की रीत।
कर्म भर्म सब मेटके, सत्य नाम सों प्रीत ॥८८॥

गुरु मुख सब्द प्रतीति कर, हर्ष सोक बिसराय।
दया क्षमा सत सील गहि, अमरलोक को जाय ॥८९॥

साख छपैटे जो रहैं, उन्हें नीच मति लेख।
सांई के मन भावहीं, ज्यों कीकीमें रेख ॥९०॥

भाव मुआ तो मरन दे, सदा चलैगा नाम ।
कबीर द्वारे बैठि के, करिले अपना काम ॥९१॥
मान अभिमान न कीजिये, कहैं कबीर पुकार ।
जो सिर साधू ना नमै, सो सिर काटि उतार ॥९२॥
सांझ सबेरे बखत दो, सीस नॅवावन जाय ।
कबीर रात जु ना पड़ै, साधु धरै जो पाय ॥९३॥
गुरु को पूजै गुरुमुखी, बाना पूजै साध ।
पट दरसन जो पूजहीं, ताका मता अगाध ॥९४॥

सब्द को अंग ।

कबीर सब्द सरीर में, बिन गुन बाजै तांत ।
बाहर भीतर रमि रहा, ताते छूटी भ्रांत ॥ १ ॥
सब्द सब्द बहु अन्तरा, सार सब्द चित देह ।
जा सब्दै साहिब मिले, सोइ सब्द गहि लेह ॥ २ ॥
सब्द सब्द बहु अन्तरा, सब्द सार का सीर ।
सब्द सब्द का खोजना, सब्द सब्द का पीर ॥ ३ ॥
सब्द बराबर धन नहीं, जो कोय जानै बोल ।
हीरा तो दामों मिले, सब्द हि मोल न तोल ॥४॥

सब्द कहै सो कीजिये, [1]बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटपार ॥ ५ ॥
सब्द न करै मुलाहिजा, सब्द फिरै चहुँ धार।
आपा पर जब चीन्हिया, तब गुरु सिष व्यवहार ॥ ६ ॥
सब्द हमारा हम सब्द के, सब्द ब्रह्म का कूप।
जो चाहै दीदार को, परख सब्द का रूप ॥ ७ ॥
सब्द दुराया ना दुरै, कहूं जु ढोल बजाय।
जो जन होवै जौहरी, लेहैं सीस चढ़ाय ॥ ८ ॥
सब्द पाय सुरति राखहिं, सो पहुचै दरबार।
कहै कबिर तहां देखिये, बैठा पुरुष हमार ॥ ९ ॥
सब्द उपदेस जु मैं कहूं, जु कोय मानै संत।
कहै कबीर विचारि के, ताहि मिलावौं कंत ॥१०॥
सब्द भेद तब जानिये, रहै सब्द के माँहि।
सब्दै सब्द परगट भया, दूजा दीखै नाँहि ॥११॥
सब्द खोजि मन बस करै, सहज जोग है येह।
सत्त सब्द निज सार है, यह तो झूठी देह ॥१२॥
सब्द गुरु का सब्द है, काया का गुरु काय।
भक्ति करै नित सब्द की, सतगुरु यौं समझाय ॥१३॥
सब्द सब्द सब कोय कहै, सब्द का करो बिचार।
एक सब्द सीतल करै, एक सब्द दे जार ॥१४॥

१. पा० गुरवा बडे।

एक सब्द सुख खानि है, एक सब्द दुख रासि।
एक सब्द बंधन कटै, एक सब्द गल फांसि ॥१५॥

निझर झरै अनहद बजै, तब ऊपजै ब्रह्मज्ञान।
अविगत अंतर प्रगट है, लगा प्रेम निज ध्यान ॥१६॥

रैन समानी भानु में, भानु अकासे माँहि।
अकास समाना सब्दमें, सब्द परे कछु नाँहि ॥१७॥

खोजी हूआ सब्द का, धन्य संत जन सोय।
कहै कबिर गहि सब्द को, कबहु न जाय बिगोय ॥१८॥

दारू तो सब को(य) करै, यह सुभाव की नाँहि।
जो दारू सतगुरु दई, वही सब्द के माँहि ॥१९॥

मता हमारा मंत्र है, हम सा है सो लेह।
सब्द हमारा कल्पतरू, जो चाहै सो देह ॥२०॥

सोइ सब्द निज सार है, जो गुरु दिया बताय।
बलिहारी वा गुरुन की, सीप बिगोय न जाय ॥२१॥

यह तो मोती जानियो, पुहे पोत के साथ।
यह तो मोती सब्द का, बेधि रहा सब गात ॥२२॥

सीखै सुनै बिचारि ले, ताहि सब्द सुख देय।
बिना समझे सब्द गहै, कछु न लाहा लेय ॥२३॥

यही बड़ाई सब्द की, जैसे चुंबक भाय।
बिना सब्द नहि ऊबरै, केता करै उपाय ॥२४॥

सही टेक हैं तासुकी, जाको सतगुरु टेक ।
टेक निबाहैं देह भरि, रहै सब्द मिलि एक ॥ २५ ॥
काल फिरै सिर ऊपरै, जीवहि नजरि न आय ।
कहैं कबिर गुरु सब्द गहि, जमसें जीव बचाय ॥ २६ ॥
ऐसा मारा सब्द का, मुआ न दीसै कोय ।
कहैं कबिर सो ऊबरै, धड़पर सीस न होय ॥ २७ ॥
संत संतोषी सर्वदा, सब्द हि भेद विचार ।
सतगुरु के परताप ते, सहज सीलमत सार ॥ २८ ॥
सरसा सर जन बेधिया, सर बिन गम कछु नाँहि ।
लागी चोट जो सब्द की, करक कलेजे माँहि ॥ २९ ॥
सारा बहुत पुकारिया, पीर पुकारै और ।
लागी चोट जो सब्द की, रहा कबीरा ठौर ॥ ३० ॥
लागी लागी क्या करै, लागत रही लगार ।
लागी तब ही जानिये, निकसी जाय दुसार ॥ ३१ ॥
बिन सर औंर कमान बिन, मारा है जु कसीस ।
बाहर घायन दीसई, बेधा नख सिख सीस ॥ ३२ ॥
मैं कलिका कोतवाल हूँ, लेहु सब्द हमार ।
जो या सब्दहि मानि है, सो उतरै भौ पार ॥ ३३ ॥
सब को सुख दे सब्दका, अपनी अपनी ठौर ।
जा घटमें साहिब बसै, ताहि न चीन्है और ॥ ३४ ॥

२९. सर = सतगुरु शब्द का बाण । ३२. कसीस—खींचकर ।

सीतल सब्द उचारिये, अहं आनिये नाँहि।
तेरा प्रीतम तुझहि में, दुसमन भी तुझ माँहि॥ ३५॥
हरिजन सोई जानिये, जिव्हा कहै न मार।
आठ पहर चितवत रहै, गुरु का ज्ञान विचार॥ ३६॥
टीला टीली ढाहि के, फोरि करै मैदान।
समझ सफा करता चलै, सोइ सब्द निरवान॥ ३७॥
कुबुधि कमानी चढि रहै, कुटिल बचन के तीर।
भरि भरि मारै कान में, साले सकल सरीर॥ ३८॥
कुटिल वचन सब तें बुरा, जारि करै सब छार।
साधु बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार॥ ३९॥
कर गहन दुरजन वचन, रहै सन्तजन टारि।
विजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि॥ ४०॥
कुटिल वचन नहि बोलिये, सितल बैन ले चीन्हि।
गंगा जल सीतल भया, परवत फोडा तीन्हि॥ ४१॥
सीतलता तब जानिये, समता रहै समाय।
विष छाँडै निरविष रहै, सब दिन दूखा जाय॥ ४२॥
खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल वचन साधू सहै, औरसे सहा न जाय॥ ४३॥
जिव्हा में अमृत बसै, जो कोय जानै बोल।
विष बासुकिका ऊतरै, जिव्हा तनै हिलोल॥ ४४॥

४० करगटन—करसन।
४४. सर्प का विष जीभ से चूस लिया जाता है।

जिव्हा सक्कर दूध जिम, जिव्हा प्यारी जागि।
जिव्हा भाजन रलि मिले, जिव्हा लागै आगि ॥ ४५ ॥
सहज तराजू आनि कै, सब रस देखा तोल।
सब रस मांहीं जीभ रस, जु कोय जानै बोल ॥ ४६ ॥
मुख आवै सोई कहैं, बोलै नहीं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बांधि तरवार ॥ ४७ ॥
बोलै बोल बिचारिके, बैठे ठौर सँभारि।
कहैं कबिर ता दासको, कबहु न आवै हारि ॥ ४८ ॥
रैन तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
सार सब्द के जानते, करम भरम मिटि जाय ॥ ४९ ॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मति भरमो जग कोय।
सार सब्द जानै बिना, कागा हंस न होय ॥ ५० ॥
सार सब्द निज जानिके, जिन कीन्ही परतीति।
काग कुमत तजि हंस है, चले सु भौजल जीति ॥ ५१ ॥
सार सब्द जानै बिना, जिव परल में जाय।
काया माया थिर नहीं, सब्द लेहु अरथाय ॥ ५२ ॥
सार सब्द को खोजिये, सोइ सब्द सुख रूप।
अन समझ तो कुछ नहीं, वह तो दुखका रूप ॥ ५३ ॥
सार हि सब्द बिचारिये, सोई सब्द सुख देय।
अन समझा सब्दै कहै, कछू न लाहा लेय ॥ ५४ ॥

कर्मफंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान ।
जाहि सद्ध ते मुक्ति होय, सो न परा पहिचान ॥ ५५ ॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यह कलजुग अनुमान ।
सार सद्ध एक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥ ५६ ॥
पृथिवी अपहु तेज नहीं, नहीं वायु आकास ।
अलल पच्छि तहां है रहै, सत्त सब्द परकास ॥ ५७ ॥
सतगुरु सब्द परमान, अनहद बानी ऊचरै ।
और झूठ सब ज्ञान, कहैं कबीर बिचारिकै ॥ ५८ ॥
ज्ञानी सुनहु संदेस, सद्ध विवेकी पेखिया ।
कह्यो मुक्तिपुर देस, तीन लोक के बाहिरै ॥ ५९ ॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनिके मगन है ।
नहि आवै नहि जाय, सुंन सद्ध थिति पावहीं ॥ ६० ॥
ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही सें पाइये ।
सत्त सब्द निज सार, और सबै बिस्तार है ॥ ६१ ॥
जगमें बहु परपंच, तामें जीव भुलान सब ।
नाहि पावै कोय संच, सार सब्द जानै बिना ॥ ६२ ॥
गहै सद्ध निज मूल, सिंधुहि बुंद समान है ।
सुक्षम में अस्थूल, बीज ब्रिछ बिस्तार ज्यूं ॥ ६३ ॥
सब्द हमारा आदिका, हमसें बली न कोय ।
आगा पीछा सो करै, जो बल हीना होय ॥ ६४ ॥

घर घर हम सबसें कहा, सब्द न सुनै हमार।
ते भवसागर बूडहीं, लख चौरासी धार ॥६५॥
मैं फकीर बिचलौ नहीं, सब्द मोर समरत्थ।
ताको छोक पठाइ हो, (जो) चढे सब्द के रत्थ॥६६॥
सब्द सम्हारे बोलिये, सब्द के हाथ न पांव।
एक सब्द औषध करै, एक सब्द करै घाव ॥६७॥
एक सब्द सो प्यार है, एक सब्द कुप्यार।
एक सब्द सब दुसमना, एक सब्द सब यार ॥६८॥
सब्द जु ऐसा बोलिये, तनका आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपन को सुख होय ॥६९॥
जिहि सब्दे दुख ना लगे, सोई सब्द उचार।
तपत मिटी सीतल भया, सोइ शब्द ततसार ॥७०॥
कागा काको धन हरै, कोयल काको देत।
मीठा सब्द सुनाय के, जग अपनो करि लेत ॥७१॥
जिभ्या जिन बसमें करी, तिन बस कियो जहान।
नहि तो औगुन ऊपजे, कहि सब संत सुजान ॥७२॥
कहने को चूकै नहीं, जेतो जिस की दौर।
सबै सब्द सहिदान हैं, परख सब्द सों ठौर ॥७३॥
सब्द गहै सो मरद है, मेहरी सब संसार।
पढ़ि पंडित रंडिया भये, बिन भेटे भरतार ॥७४॥

विश्वास को अंग।

जाके मन विस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झक झोलहीं, तऊ न हो मन भंग ॥ १ ॥
सत्तनाम की लौ लगी, जगसें दूर रहाय।
मोहि भरोसा नामका, बंदा नरक न जाय ॥ २ ॥
सत्तनाम सें मन मिला, जम सें परा दुराय।
मोहि भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ॥ ३ ॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय।
मन मन्दिर में पैठि के, तान पिछोरी सोय ॥ ४ ॥
भूखा भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग।
भांडा घड़िया मुख दिया, सोही पूरन जोग ॥ ५ ॥
सिरजन हारे सिरजिया, आटा पानी लौन।
देनेहारा देत है, मेटनहारा कौन ॥ ६ ॥
साँई इतना दीजिये, जामें कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ ७ ॥
हरिजन गाँठि न बाँधहीं, उदर समाना लेय।
आगे पीछे हरि खड़े, [1]जो मागें सो देय ॥ ८ ॥
कबीर चिंता क्या करूं, चिन्ता सों क्या होय।
मेरी चिन्ता हरि करै, चिन्ता मोहि न कोय ॥ ९ ॥

१. पा० जब मांगे तब देय।

चिन्तामनि चित में बसै, सोई चित में आनि।
बिना प्रभु चिन्ता करै, यह मूरख की बानि ॥१०॥
चिन्ता छोडि अचिन्त रहु, देनहार समरत्थ।
पसू पखेरू जन्तु जीव, तिन के गांठि न [१]हत्थ ॥११॥
अंडा पालै काछुई, बिन थन राखै पोख।
यौं करता सब को करै, पालै तीनौं लोक ॥१२॥
पौ फाटी पगरा भया, जागै जीवा जून।
सब काहू को देत है, चोंच समानै चून ॥१३॥
खोजि पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलेंगे आय।
अजिया गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोंपळ खाय ॥१४॥
पांडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम वास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा विस्वास ॥१५॥
पद गाये लौलीन है, कटै न संसै फांस।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना विस्वास ॥ १६ ॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये ते दूर।
जिन गाया विस्वास गहि, ताके सदा हजूर ॥ १७ ॥
गावन ही में रोवना, रोवन ही में राग।
एक बन हि में घर करै, एक घर ही बैराग ॥ १८ ॥
घट में जोति अनूप है, रिजक मौत जिव साथ।
कहा सार हैं मनुसका, कहय धनी के हाथ ॥ १९ ॥

१०. चिन्तामनि—साहब। ११. गरत्थ—खानापीना। १. पा० गरत्थ।

साईं दीया सहज में, सोई रिजक हलाल।
हैंवां सबै हराम है, तजि संसै जिव साल॥ २०॥
सब ते भली मधूकरी, भांति भांति का नाज।
दावा कीसी का नहीं, बिना बिलायत राज॥ २१॥
जाके दिल में हरि बसै, सो जन कलपै काहि।
एकै लहरि समुद्रकी, दुख दारिद्र बहिजाहि॥ २२॥
आगे पीछे हरि खड़ा, आप सहारे भार।
जन को दुःखी क्यों करै, समरथ सिरजन हार॥ २३॥
भक्त भरोसे राम के, निधड़क ऊँची दीठ।
तिनकूं करम न लागई, राम ठकोरी पीठ॥ २४॥
सौदा कीजै राम सों, भरिये गून हलाय।
जो कबहूं टाडा लुटै, पूजी बिलै न जाय॥ २५॥
राखनहारा राम है, जाय जंगल में बैठ।
हरि कोपै नहिं ऊबरै, सात पताले पैठ॥ २६॥
डोरी लागी भय मिटा, मन पाया बिसराम।
चित्त चहूटा राम सों, याही केवल धाम॥ २७॥
करम करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर पटकै कोय॥ २८॥
करम करीमा लिखि रहा, नर सिर भाग अभाग।
जो कबहूं चिन्ता करै, तौड़ न आगै आग॥ २९॥

२०. हलाल-धर्मयुक्त। हैंवा-बलात्कार।
२५. टाडा—बैलों की कतार। २९. आग—आगि, सामने।

जो सांचा विसवास है, तौ दुख क्यौं ना जाय।
कहै कबीर विचारि के, तन मन देहि जराय॥ ३० ॥
विस्वासी है गुरु भजे, लोहा कंचन होय।
नाम भजे अनुराग ते, हरष सोक नहि दोय॥ ३१ ॥
काहे को तलफत फिरै, काहे पावै दुख।
पहिले रिजक बनायके, पीछे दीनो मुख॥ ३२ ॥
अब तूं काहेको डरै, सिरपर हरिका हाथ।
हस्ती चढकर डोलिये, कूकर भुसे जु लाख॥ ३३ ॥
मेरो चित्यो हरि ना करे, क्या करूं मैं चिंत।
हरि को चिंत्यौ हरि करे, ता पर रहू निचिंत॥ ३४ ॥
राम किया सोई हुआ, राम करै सो होय।
राम करै सो होयगा, काहा कल्पौ कोय॥ ३५ ॥
ऐसा कौन अभागिया, जो विश्वासै और।
राम बिना पग धरनकूं, कहो कहां है ठौर॥ ३६ ॥
कियै बिना मागे बिना, जान बिना सब आय।
काहे को मन कल्पिये, सहजे रहा समाय॥ ३७ ॥
मुरदे को भी देत है, कपडा पानी आग।
जीवत नर चिंता करै, ताका बडा अभाग॥ ३८ ॥
पीछे चाहै चाकरी, पहिले महिना देय।
ता साहिब सिर सौंपते, क्यूं कसकाता देह॥ ३९ ॥

भजन भरोसे आपके, मगहर तजा शरीर।
तेज पुंज परकास में, पहुंचे दास कबीर ॥ ४० ॥

सती को अंग।

अब तो ऐसी ह्वै परी, मन अति निरमल कीन्ह।
मरने का भय छाँडि के, हाथ सिंधोरा¹ लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल दमामा बाजिया, सब्द सुना सब कोय।
जो सर² देखी साने भगै, दोउ कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चित धरि एक विवेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिव का सुमिरि सुनेह।
सब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई सुधि देह ॥ ४ ॥
सती सूर तन ताइया, तन मन कीया घान।
नाम⁵ जपत चिता मिटी, निकसा तनसे प्रान ॥ ५ ॥
सती विचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
सूती ले पिय संग में, चहुँ दिसि आग लगाय ॥ ६ ॥

---

१. सिंधोरा-सिंदूरदान। स्त्री सती होने के समय अपने आप को शृंगार से सुसज्जित कर लेती है। २. सर—चिता।
५ घान—घानी, पेरना।

सती पुकारै [1]सर चढ़ी, सुनरे मीत मसान।
[2]लोग बटाऊ सब गये, हम तुम रहे निदान ॥ ७ ॥
सती डिगै तो नीच घर, सूर डिगै तो कूर।
साधु डिगै तो सिखरतें, [3]गिरि मय चकना चूर ॥८॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो रॉड।
साधू भीख न मांगई, जो मांगै सो भांड ॥ ९ ॥
मैं तोहि पूछूं हे सखी, जीवत क्यों न जराय।
मूये पीछे सत करै, जीवत क्यौं न कराय ॥१०॥
ऐसी भाँति जो सति है, सो निज मुक्ति परमान।
मुक्ति देत संसार को, सोइ सती तूं जान ॥११॥
साध सती औ सूरमा, इनका मता अगाध।
आसा छांड़े देहकी, तिनमें अधिका साध ॥१२॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गजदंत।
ते निकसै नहि बाहुरे, जो जुग जाहि अनंत ॥१३॥
साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरै पीठ।
तीनों निकसी बाहुरे, तिनका मुख नहि दीठ ॥१४॥
साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोय नाँहि।
अगम पंथ को पग धरैं, [4]गिरि तो कहां समाहि ॥१५॥

१. पा० सत। २. संगी थे सो चलि गये। ३. पा० होय चरनकी धूर।
४. लौटे तो कित जांहि।

कबीर सतियाँ कुसतियाँ, जरै मरै की कार।
सतियां सोई जानिये, जरै सँभारि सँभारि ॥१६॥
सत तो तासों कीजिये, जहँवां मन पतियाय।
ठाम ठाम के सच सों, कुल कलंक चढ़ि जाय ॥१७॥
आँखड़ियां काजल भरी, मुख में भरी तंबोल।
बलिहारी गुरु आपनी, साहिब सेति किलोल ॥१८॥
सतिया सोई अस तिया, जलती है इक बार।
नित जलना है संत कूं, नाम पुकार पुकार ॥१९॥
सहज जलना सतिया तना, सूखै काठ मिलाय।
लै बैठी पिय आपना, चहुं दिस आग लगाय ॥२०॥
सतिया का सुख देखना, जले पीव के संग।
आपै आग लगाव है, तऊ न मोड़े अंग ॥२१॥
सती भई है सच कूं, सरीर कीन्ही सान।
बाट बटाऊ चलि गये, हम तुम रहे निदान ॥२२॥
सती बिचारी सत किया, ले अपना वे भेष।
एक एक जब है मिली, अंतर रही न रेख ॥२३॥
सती सूर तन साहिया, तन मन किया जु ध्यान।
दिया महोला पीव कूं, [1]मड़हट करै बखान ॥ २४ ॥
सूर सती स्वर्ग पाइ है, जाय मिले सब कोय।
कबीर सौदा नाम सूं, सिर बिन कदी न होय॥ २५ ॥

२४. महोला, महफिल, स्थान। १. पा० मरघट।

सती चमाकै अगनिसूं, सूरा सीस डुलाय।
साधु जु चूकै टेक सों, तीन लोक अथडाय ॥ २६ ॥
ये तीनों उलटे बुरे, साधु सती औ सूर।
जगमें हांसी होयगी, मुख पर रहै न नूर ॥ २७ ॥

पतिव्रता को अंग ।

पतिवरता के एक है, व्यभिचारिनि के दोय।
पतिवरता व्यभिचारिनी, कहु क्यों मेला होय ॥ १ ॥
पतिवरता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली व्यभिचारिनी, ताके खसम अनेक ॥ २ ॥
पतिवरता मैली भली, काली कुचल कुरूप।
पतिवरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥ ३ ॥
पतिवरता मैली भली, गले काँचकी पोत।
सब सखियनमें यों दिपै, ज्यों सूरज की जोत ॥ ४ ॥
पतिवरता पतिको भजै, पति भजि धर विस्वास।
आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥ ५ ॥
पतिवरता पतिको भजै, और न आन सुहाय।
सिंघ बचा जो लँघना, तो भी घासन खाय ॥ ६ ॥

३. कुचल—फटे पुराने कपड़ोंवाली। १. पा० दस।

पतिवरता तब जानिये, रती न खंडे नैन।
अंतर तो सूची रहै, बोलै मीठा बैन ॥ ७ ॥
पतिवरता ऐसी रहै, जैसे चोली पान।
जब मुख देखै पीवका, चित्त न आवै आन ॥ ८ ॥
पतिवरता व्यभिचारनी, इक मंदिर में बास।
वह रंग राती पीवके, घर घर फिरै उदास ॥ ९ ॥
पतिवरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोइ सुहागिन होय ॥ १० ॥
पतिवरता तो पिव भजै, [1]पिया पिया रट लाय।
जीवत जस है जगत में, अंत परम पद पाय ॥ ११ ॥
नना अंतर आव तूँ, नैन झाँपि तुहि लेव।
ना मैं देखौं और को, ना तुहि देखन देव ॥ १२ ॥
कबीर सीप समुद्रकी, रटै पियास पियास।
[2]और बुँद को ना गहे, स्वाति बुँद की आस ॥ १३ ॥
कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहि लेय।
पानी पीवै स्वाति का, सोभा सागर देय ॥ १४ ॥
कबीर भेरै बैठिके, सबसों कहूँ पुकारि।
धरा धरै सो धरकुटी, अधर धरै सो नारि ॥ १५ ॥
धरिया कूँ धीजूँ नही, गहूँ अधर की बाँहि।
धरिया अधर पिछानिया, कछू धरावहि नाँहि ॥ १६ ॥

१५, धरा—कृत्रिम, बनावटी, । धरै—पूजै । धरकुटी—व्यभिचारिणी ।

१. पा० पीव पीव । २. पा० समुँद्र हि तिनका बर गिनो ।

नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत ।
पतिवरता पिवको भजै, मुख सें नाम न लेत ॥ १७ ॥
सुरति समानी नाम में, नाम किया परकास ।
पतिवरता पिव को मिली, पलक न छाँडै पास ॥ १८ ॥
साँईं मोर सुलच्छना, मैं पतिवरता नारि ।
देहु दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥ १९ ॥
मीत अहो है तुझसें, बहु गुनियाला कंत ।
जो हसि बोलूँ और से, नील रँगाऊँ दंत ॥ २० ॥
साँईं मेरा एक तूँ, और न दूजा कोय ।
दूजा साँईं क्या करूँ, तुझ सम और न कोय ॥ २१ ॥
साँईं मेरा एक तूँ, और न दूजा कोय ।
दूजा साँईं जो करूँ, जो [1]कुलदूना होय ॥ २२ ॥
मो चित पलहु न वीसरूँ, तुम परदेस हि जाय ।
यह अँग और न भेलसी, जबतब तुम मिलि आय ॥२३॥
कबीर रेख सींदूर अरु, काजर दिया न जाय ।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥ २४ ॥
आठ पहर चौसठ घड़ी, मेरे और न कोय ।
नैना माहीं तूँ बसै, नींद ठौर नहिं होय ॥२५॥
बार बार क्या आखिये, मेरे मन की सोय ।
कलि तो कखल होयगी, साँई और न होय ॥२६॥

२६. आखिये—आख्यान, कहना । १. पा० कलि ।

जो यह एक न जानिया, बहु जाने क्या होय ।
एकै ते सब होत है, सब ते एक न होय ॥२७॥
जो यह एकै जानिया, तो जानो सब जान ।
जो यह एक न जानिया, सबही जान अजान ॥२८॥
सब आये उस एकमें डार पात फल फूल ।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकडा जब मूल ॥२९॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
माली सींचै मूलको, फूलै फलै अघाय ॥३०॥
जो मन लागै एक सों, तौ निरुवारा जाय ।
तूरा दो मुख बाजता, घना तमाचा खाय ॥३१॥
एक नाम को जानि कर, दूजा दिया बहाय ।
जप तप तीरथ व्रत नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥३२॥
मैं अबला पिव पिव करूँ, निरगुन मेरा पीव ।
सुन्न सनेही राम बिन, और न देखूँ जीव ॥३३॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहु न होय अकाज ।
पतिवरता नंगी रहै, वाही पति को लाज ॥३४॥
मैं सेवक समरत्थ का, कोइ पुरबला भाग ।
सूती जागी सुंदरी, साँई दिया सुहाग ॥३५॥
एक चित होय न पिव मिलै, पतिवरत ना आवे । ...
चंचल मन चहुँ दिसि फिरै, पिय कहो कैसे पावे ॥३६॥

१. पा० सदा ।

सुंदरि तो साँई भजै, तजै खलक की आस।
ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छाडै पास ॥३७॥
चढ़ी अखाडे सुन्दरी, मांडा पीवसें खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जलै ज्यौं तेल ॥३८॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाँहि।
पतिवरता के तन नहीं, सुरति बसै पिव माँहि ॥३९॥
दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस।
पतिवरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥४०॥
भोरे भूली खसम को, कबहुँ न किया विचार।
सतगुरु आनि बताइया, पूरबला भरतार ॥४१॥
जो गावै सो गावना, जो जोडै सो जोड।
पतिवरता साधू जना, यहि कलिमें हैं थोड ॥४२॥
घर परमेस्वर पाहुना, सुनो सनेही दास।
खट रस भोजन भक्ति करि, कबहूँ न छाडै पास ॥४३॥
एक जानि एकै समझ, एकै कै गुन गाय।
एक निरख एकै परख, एकै सों चित लाय ॥४४॥
जीवत मिरतक हो रहो, तन मन सेती नेह।
कहै कबिर ता नारि की, चरन कमल की खेह ॥४५॥
ऊँची जाति पपीहरा, पीये न [1]नीचा नीर।
कै सुरपति को जाँचई, कै दुख सहै सरीर ॥४६॥

१. पा० दूजा।

पड़ा पपीहा सुरसरी, लगा बधिक का बान।
मुख मूँदे सुरति गगन में, निकसि गये यूँ प्रान ॥४७॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छाँड़े तो कुछ नहीं, पन छाँड़े है लाज ॥४८॥
पपिहा का पन देख करि, धीरज रहे न रंच।
मरते दम जलमें पड़ा, तऊ न बोरी चंच ॥ ४९ ॥
चातक सुत हि पढ़ावई, आन नीर मति लेय।
मम कुल याही रीत है, स्वाति बुँद चित देय ॥५०॥
चातक सुत हि पढ़ावई, सुनो बात यह तात।
आन नीर नहि पीवना, यह सपूत की बात ॥ ५१ ॥
चातक चित हि सुभि गई, सुत सपूत की बात।
आन नीर परसौं नहीं, [1]सुनो तात यह बात ॥ ५२ ॥
दोजख हमहि अंगिनिया, या दुख नाहीं मुज्झ।
मेरे भिस्त न चाहिये, बाँछि पियारे तुज्झ ॥ ५३ ॥
पिय सनमुख सेवा करे, सो पतिवरता जान।
पिय तजि किन जित जो रमे, वर्ते संग तेहि मान ॥ ५४ ॥

१- पा० तात अपने की बात।

बिभिचारिन को अंग।

कबीर कलियुग आयके, कीया बहुत जमीत।
जिन दिल बाँधा एक सें, ते सुखसोय निचिंत ॥ १ ॥

गुरु [1] मरजाद न भक्तिपन, नहि पित्रका अधिकार।
कहैं कबिर बिभिचारिनी, निच नया भरतार ॥ २ ॥

बिभिचारिनि बिभिचार में, आठ पहर हुसियार।
कहैं कबिर पतिव्रत बिन, क्यों रीझै भरतार ॥ ३ ॥

बिभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन दोय।
कहैं कबिर पतिव्रत बिन, नारी गई बिगोय ॥ ४ ॥

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मनमें बसै, खसम खुसी क्यों होय ॥ ५ ॥

सेज बिछावै सुन्दरी, अन्तर परदा होय।
तन सौंपे मन दे नहीं, सदा दुहागिन सोय ॥ ६ ॥

कबीर मन दीया नहीं, तन कर डाला जेर [7]।
अन्तरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥ ७ ॥

मुखसें नाम रटा करै, निस दिन साधुन संग।
कहु धौं कौन कुफेर तें, नाहीं लागत रंग ॥ ८ ॥

---

७ जेर—अधीन। १ पा० मीत।

कबीर पंथ निहारतां, आनि पडी है साँझ।
जन जन को मन राखतां, वेस्या रहि गइ बाँझ॥ ९॥

रात भगावै राँडिया, गावै विषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरु न आवै चीत॥ १०॥

कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै विभिचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, परम पुरुष भरतार॥ ११॥

सत्तनाम को छाँडिकर, करै और की आस।
कहैं कबिर ता नारि को, होय नरकमें बास॥ १२॥

नौ सत साजे सुन्दरी, तन मन रही सजोय।
पिय के मन माने नहीं, [१]पिर्दय किये क्या होय॥१३॥

सौ बरसाँ भक्ति करै, एक दिन पूजै आन।
सो अपराधी आतमा, पडै चौरासी खान॥ १४॥

सत्तनाम को छाँडि कै, करै आन को जाप।
ताके मुंहडे दीजिये, नौसादर को बाप॥ १५॥

सत्तनाम को छाँडि कै, करै और को जाप।
वेस्या केरा पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप॥ १६॥

सत्तनाम को छाँडि कै, राखै करवा चौथि।
सो तो हुंगी सूकरी, तिन्हें रामसों कौथि॥ १७॥

१३. नौसत=सोलेह शृंगार। १५. नौसादर को बाप=मैला।
१. पा० पटम।

सत्तनाम को छाँडि कै, राति जगावन जाय।
साँपिनी ह्वै करि औतर, अपना जाया खाय ॥ १८ ॥
आन भजै सो आँधरा, राम भजै सो साध।
तत्त भजै सो वैस्नवा, तिनका मता अगाध ॥ १९ ॥
करै मुहाली लापसी, जाय आनकी जाति।
ज्वारा हँसै मलकता, आई मेरी घात ॥ २० ॥
कामी तरि क्रोधी तरै, लोभी तरै अनन्त।
आन उपासी कृतघनी, तरै न गुरू कहन्त ॥ २१ ॥
काज कनागत कारटा, आनदेव को खाय।
कहै कबिर समुझै नहीं, बाँधा जमपुर जाय ॥ २२ ॥
देवि देव मानै सबै, अलख न मानै कोय।
जा अलेख का सब किया, तासो बेमुख होय ॥ २३ ॥
देवि देव ठाढे भये, हम को ठौर बताव।
जो कोइ मुझ सुँ विमुख है, तिन को लूटौ खाव ॥ २४ ॥
मन छूटै छूटा फिरै, वै नर भूत खबीस।
भूतन पिंडा राखका, पडा पटकि के सीस ॥ २५ ॥
माइ मसानि सिढि सितला, भैरू भूत हनुमन्त।
साहिब सों न्यारा रहै, जो इन को पूजन्त ॥ २६ ॥

---

२२ काज=मृतकभोज। कनागत=श्राद्ध। कारटा=महापाप का कर्म करानेवाले। २५. खबीस=मुरदा खानेवाले।

सूरमा को अंग।

कबीर सोई सूरमा, मन सों माँडै जूझ।
पाँचों इन्द्री पकडि के, दूरि करै सब दूझ ॥ १ ॥
कबीर सोई सूरमा, (जिन)पाँचों राखी चूर।
जिन के पाँचो मोकली, तिन सों साहिब दूर ॥ २ ॥
कबीर सोई सूरमा, जाके पाँचों हाथ।
जाके पाँचों बस नहीं, तो हरि संग न साथ ॥ ३ ॥
कबीर रनमें आय के, पीछे रहे न सूर।
साँई के सनमुख रहै, जूझैं सदा हजूर ॥ ४ ॥
कबीर घोडा प्रेमका, चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग ले काल सिर, भली मचाई मार ॥ ५ ॥
कबीर तुरी पलानिया, चाबुक लीन्हा हाथ।
दिवस थका साँई मिले, पीछे पडि है रात ॥ ६ ॥
कबीर हीरा वनजिया, महँगे मोल अपार।
हाड गली माटी मिली, सिर साटैं बेवहार ॥ ७ ॥
कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम।
सीस नँवाया धनी को, साधी बड़ी मुहीम ॥ ८ ॥

---

१. दूझ=दाझन, जलन। २. चूर=वशमें। मोकली=खुली हुई।
८. गनीम=शत्रु। मुहीम=आक्रमण।

नाम कुल्हाड़ी कुबुधि बन, काटि किया मैदान।
कबीर जीते मान गढ़, मारे पांचौ खान ॥९॥
कबीर तोड़ा मान गढ़, लूटी पाँचौ खानि।
ज्ञान कुल्हाड़ी करम बन, काटि किया मैदान ॥१०॥
कबीर पाँचौ मारिये, जो मारे सुख होय।
भला भलो सब कोय कहै, बुरा न कहसी कोय ॥११॥
गगन दमामा बाजिया, पड़त निसानै चोट।
कायर मागैं कछु नहीं, सूरा मागै खोट ॥१२॥
गगन दमामा बाजिया, पड़त निसानै घाव।
खेत पुकारैं सूरमा, अब लड़ने का दाव ॥१३॥
गगन दमामा बाजिया, हनहनिया के कान।
सूरा घरैं बधावनाँ, कायर तजैं पिरान ॥१४॥
सूरा सोइ सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा ह्वै पड़े, तऊ न छाड़ै खेत ॥१५॥
सूरा सोइ सराहिये, अंग न पहिरे लोह।
जूझै सब बंद खोलि के, छाडै तन का मोह ॥१६॥
सूरा जूझै गिरद सों, इक दिस सूर न होय।
यों जूझैं बिन बाहरा, भला न कहसी कोय ॥१७॥
सूरा सीस उतारिया, छाँडी तनकी आस।
आगे सें गुरु हरपिया, आवत देखा दास ॥१८॥

---

१४. हनहनिया के कान=कानों को बहरा करता हुआ।

सूरा के मैदान में, कायर फंदा आय।
ना भाजै ना लड़ि सकै, मनही मन पछिताय ॥१९॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
सूरा सों सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥२०॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
कायर भाजै पीठ दै, सूर करै संग्राम ॥२१॥
सूरा के मैदान में, कायर का [1]क्या काम।
तीर तुपक बरछी बहै, बिनसि जायगा चाम ॥२२॥
तीर तुपक सों जो लड़ै, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ति करै, सूर कहावै सोय ॥२३॥
तीर तुपक सों जो लड़ै, सो तो सूरा नाँहि।
सूरा सोइ सराहिये, बाँटि बाँटि धन खाँहि ॥२४॥
सूरा सनमुख बाहता, कोइ न बाँधै धीर।
पर दल मोरन रन अटल ऐसा दास कबीर ॥२५॥
सूरा नाम धराय करि, अब क्यों डरपै बीर।
मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ॥२६॥
सूरा लड़ै कमंद है, धड़ सों सीस उतारि।
कहैं कबिर मारा मुआ, कहैं जु मारि हि मारि ॥२७॥
सूरा तो साँचे मतै, सहै जु सनमुख धार।
कायर अनी चुभाय कै, पीछै झरवै अपार ॥२८॥

१. पा० नहिं।

सूरा थोड़ा ही भला, सत का रोपै पग्ग।
घना मिला किहि कामका, सावन का सा बग्ग ॥२९॥

सूर चढ़ा संग्राम को, कबहु न देवैं पीठ।
आगे चलि पाछे फिरे, ताको मुख नहिं दीठ ॥३०॥

सूर सनाह न पहिरई, जब रन बाजा तूर।
माथा काटै धड़ लड़ै, तब जानीजै सूर ॥३१॥

सूर सनाह न पहरई, मरता नहीं डराय।
कायर भाजैं पीठ दे, सूर मुँहामुँह खाय ॥३२॥

सूर न सेरी ताकई, नेजा घालै घाव।
सब दल पाछा मोड़ि के, माँझी सेती चाव ॥३३॥

सूरे सार सँवाहिया, पहरा सहज सँजोग।
ज्ञान गयंद हि चढ़ि चला, खेत परन का जोग ॥३४॥

खेत न छाँड़ै सूरमा, जूझै दो दल माँहि।
आसा जीवन मरन की, मन में राखे नांहि ॥३५॥

अब तो जूझे ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपने, सोच न कीजै सूर ॥३६॥

भागै भला न होयगा, मुँह मोड़ै घर दूर।
साईं आगे सीस दे, सोच न कीजै सूर ॥३७॥

---

३१. सनाह=कवच।

३३. सेरी=गली। नेजा=भाला। माझी=दोनों दलोंके बीचमें रहनेका।

भागे भला न होयगा, कहु सूरातन सार।
भरम बकतर दूर करो, सुमिरन सेल सँभार ॥३८॥
भागे भला न होयगा, मुडि चाल्यै घसि दूर।
खडग उपाड़े ना डरे, सो साचा है सूर ॥३९॥
जाय पूछो उस घायलाँ, दिवस पीर निसि जागि।
बाहनहारा जानि है, के जानै जिस लागि ॥४०॥
घायल तो घूमत फिरे, राखा रहै न ओट।
जतन करै जीवे नहीं, लगी मरम की चोट ॥४१॥
साध सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट।
सीस कटावे धड लडै, सुन जो पावै चोट ॥ ४२ ॥
सेल जु जाही मारिये, नहिं काहू की ओट।
ओलाजा लोपी नहीं, खाली पडै न चोट ॥ ४३ ॥
निसंक है रन में रहै, ज्यों दरिया में दोट।
साहिब तबही पाइये, सहिये सिर पर चोट ॥४४॥
ओटा लिया न ऊगरै, सुनरे मनुवा बूझ।
निकसि रहो मैदान में, कर पाचों से जूझ ॥ ४५ ॥
घायल की गति और है, औरन की गति और।
मेघ बान हिरदै लगा, रहा कबीरा ठौर ॥४६॥
चित चेतन ताजी करै, लौ की करै लगाम।
सब्द गुरू का ताजना, पहुँचे संत सुठाम ॥४७॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उंजियारा होय ॥४८॥
धड़ से सीस उतारि के, डारि देय ज्यों ढेल।
कोइ सूर को सोहसी, घर जानेका खेल ॥४९॥
लड़ने को सब ही चले, सस्तर बांधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझेगा कोय एक ॥५०॥
जूझेंगे तब कहेंगे, अब कुछ कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥५१॥
मेरे संसय कोय नहीं, गुरु सो लागा हेत।
काम क्रोध सों जूझता, चौड़े मांडा खेत ॥५२॥
जब लग धड़ पर सीस है, सूर कहावे कोय।
माथा टूटे धड़ लड़े, कमँद कहावे सोय ॥५३॥
रन हि घसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास।
घरे बधावा बाजिया, और न दूजी आस ॥५४॥
सांई सेंति न पाइये, बातन मिले न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहु न होय ॥५५॥
जेता तारा रैन का, येता बैरी मुज्झ।
धंड सूली सिर कंगुरे, तउ न बिसारूं तुज्झ ॥ ५६ ॥
ऐसो मार कबीर की, मुआ न दीसै कोय।
कहैं कबिर सो ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥ ५७ ॥

सीतलता सँजोय ले, सूर चढ़ै संग्राम।
अबकी भाजन सरत है, सिर साहिब के काम॥ ५८॥
जोग सूँ तो जौहर भला, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिन खाँडै संग्राम॥ ५९॥
पँज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर॥ ६०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, खींचै संत सुजान॥ ६१॥
कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै मैदान।
सूरा है सो खींचहीं, नहि कायर का काम॥ ६२॥
कड़ी कमान कबीर की, न्यारे न्यारे तीर।
चुनि चुनि मारे बगतरी, मूरख गिनै न तीर॥ ६३॥
कड़ी कमान कबीर की, काचा टिकै न कोय।
सिर सौंपी सूरा लड़ै, कालै निरभय होय॥ ६४॥
कड़ी है धारा राम की, काचा टिकै न कोय।
सिर सौंपै सीधा लड़ै, सूरा कहिये सोय॥ ६५॥
बाँकी तेग कबीर की, अनी पड़ै दो टूक।
मार भीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक॥ ६६॥

---

५८. संजोग ले=धारण करके। अबकी भाजन=अब की बेर।
५९. जौहर—सतीत्व धर्मकी रक्षा के लिये जीते जी जलना।
६०. पन असमाना—पाचों शब्द, दूसरे पक्षमें पंचज्ञानेंद्रियां।

बाँका गढ़ बाँका मता, बाँकी गढ़की पोल।
काछ कबीरा नीकसा, जमसिर घाली रोल॥ ६७॥

रकार बहे लोहा झरे, टूटे जिरह जँजीर।
अविनासी की फौज में, गूँजे दास कबीर॥ ६८॥

सार बहे लोहा झरे, टूटे जिरह जँजीर।
जम ऊपर साटे करी, चढ़िया दास कबीर॥ ६९॥

ज्यों ज्यों गुरुगुन सँभलो, त्यों त्यों लागे तीर।
साँटी साँटी झरि पड़ी, मलका रहा सरीर॥ ७०॥

ज्यों ज्यों गुरु गुन सँभले, त्यों त्यों लागे तीर।
लागे पन भागे नहीं, सोई साध सुधीर॥ ७१॥

चौपड़ मांडी चौहटे, अरध उरध बाजार।
सतगुरु सेती खेलतां, कबहु न आवे हार॥ ७२॥

जो हारौं तो सेव गुरु, जो जीतौं तो दाव।
सतनाम सों खेलतां, सिर जावे तो जाव॥ ७३॥

खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़े बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग॥ ७४॥

भाव मालका सुरति सर, धरि धीरज कर तान।
मन की मूठ जहाँ मुँडी, चोट तहां ही जान॥ ७५॥

भुजा फरूके सुन्न में, बाजै अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचेगा कोय सूर॥ ७६॥

कहै दरबारी बावरी, क्यों पावै वह धाम।
सीस उतारै संचरै, नाहि और को काम ॥ ७७ ॥

सीस खिसै सांई लखै, मल बाँका असवार।
कमद कबीरा किलकिया, केता किया हुमार ॥ ७८ ॥

लालच लोभ न मोह मद, एकल [1]भला अनीह।
हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा बन का सिंह ॥ ७९ ॥

रन रोही अति ही हुआ, साजन मिला हजूर।
सूरा सूरा ठाहरा, भाजि गई भकमूर ॥ ८० ॥

सब ही साथी कलतरो, धीर न बंधै कोय।
भागा पीछै बाहुरै, ठाठ गुसाँई सोय ॥ ८१ ॥

[2]खाँडा तिस को चाहिये, [3]फिर खाँडे को देय।
[4]कायर को क्या चाहिये, दाँतों तिनका लेय ॥ ८२ ॥

कोनै परा न छूटि है, सुनरे जीव अबूझ।
कबीर मँड मैदान मे, करि इन्द्रियन सों जूझ ॥ ८३ ॥

इक मरिवो इक मारिवो, येही विपमा सिद्धि।
ना ये कायर मरेंगे, चालै तरकस विद्धि ॥ ८४ ॥

कायर हुआ न छूटि है, कूचि सुरातन माँहि।
मरम भलाका दूरि करि, सुमिरन सेल सनाँहि ॥ ८५ ॥

---

७८. कमद=घड। ७९. एकल=एकाकी। मल–मिलता है।
१. पा० मल। २. पा० सेल जो जाहि मारिये। ३. पा० उलटि सेल को देय। ४. पा० ताही सेल न मारिये।

कायर मया न छूटि हो, सुरता, कछू समाय ।
मरम माळका दूरि करि, सुमिरन सेल मँजाय ॥८६॥
कायर को कौतुक भला, काढे कसै सनाह ।
भीर परै भगि जायगा, जीवन का है लाह ।८७॥
कायर का घर फ़सका, मभकी चहुं पछीत ।
सूरा के कछु डर नहीं, गज गीरी की भींत ॥८८॥
कायर बहुत पमावई, अधिक न बोलै सूर ।
सार खलक कै जानिये, किहि के मुँहडै नूर ॥८९॥
कायर सेरी ताकवै, सूरा माँडै पाँव ।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥९०॥
[1]कायर भागा पीठ दे, सूर [2]रहा रन माँहि ।
पटा लिखाया [3]गुरु पै, खरा खजीना खाँहि ॥९१॥
भागि कहाँ को जाइये, भय भारी घर दूर ।
बहुरि कबीरा खेत रहु, दल आया भरपूर ॥९२॥
भागे भलो न होयगी, कहां धरोगे पाँव ।
सिर सौंपो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥९३॥
सति जो डरपै अगिन ते, सूरा सर हि डराय ।
हरिजन भागै भक्ति सों, देस दुनी ते जाय ॥९४॥

---

८८. गजगीरी की भींत—ऐसी चौड़ी दीवार जिस पर हाथी चल सकता हो ।

१. पा० कायर भागे काल्सुं । २. पा० रहे । ६. पा० प्रेमका ।

मानुस खोजत मैं फिरा, मानुस बड़ा सुकाल ।
जाको देखत दिल थिरै, ताका पड़ा दुकाल ॥९५॥
सूर चढ़े संग्राम को, बाना पहिन अनेक।
सांई के मुख सामने, मुवा जु कोई एक ॥९६॥
सूर चढ़े संग्राम कूं, अरिदल माँहि धसाय ।
सिर साहिब को दे रहै, सहज सुरति मत खाय ॥९७॥
सूर चढ़े संग्राम कूं, पीछे पांव न देह ।
साहिब लाजे भाजतां, दृष्टि पड़ा तोहि देह ॥९८॥
सूर चढ़े संग्राम कूँ, पाँव न पीछा देह ।
सिर के साटे जूझहीं, अगम ठौरकूं लेह ॥९९॥
जो सिर सौंपा साईं को, वह सिर भया सनाथ ।
कबीर दे उबरन भये, जाका ताके हाथ ॥१००॥
जाका ताकूं दीजिये, कभी उबरना होय।
पहिले देवै सो खरा, पीछै तो सब कोय ॥१०१॥
सूरा सोई जानिये, पांव न पीछे पेख ।
आगे चलि पीछा फिरै, ताका मुख नहि देख ।१०२॥
देखा देखी सूर चढ़े, मर्म न जानै कोय ।
सांई कारन सीस दे, सूरा जानौं सोय ॥१०३॥
सिर साटै का खेल है, सो मरन का काम ।
पहिले मरना आग में, पीछै कहना राम ॥१०४॥

हरि का गुन अति कठिन है, ऊंचा बहुत अरुथ्थ।
सिर काटी पगतर धरै, तब जा पहुंचे हथ्थ ॥१०५॥
ऊंचा तरवर गगन फल, पछी [1]मूआ झूर।
बहुत सयाने पचि गये, [2]फल [3]लागा पै दूर ॥१०६॥
दूर भया तो क्या भया, सिर दे नियरा होय।
जबलग सिर सौंपै नहीं, चाख सकै नहि कोय ॥१०७॥
दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेला होय।
सिर सौंपै उन चरन में, कारज सिद्धि होय ॥१०८॥
यह रन मांही पैठ कर, पीछै रहै न सूर।
साहिब के सनमुख रहै, धर दे सीस हजूर ॥१०९॥
जबलग धड पर सीस है, सूरा कहिये नांहि।
माथा टूटै धड लड़ै, सूरा कहिये ताहि ॥११०॥
कबीर सांचा सूरमा, कबू न पहिरै लोह।
जीवन के बंध खोल के, छांडै तन का मोह ॥१११॥
कठिनाई कछु है नहीं, जो सिर बदले लेह।
राम नाम नहि छांडिये, जो सिर करवत देह ॥११२॥
मारग कठिन कबीर का, धरि न सकै पग कोय।
आय चले कोइ सूरमा, जा घड़ सीस न होय ॥११३॥
रन जँग बाजा बाजिया, सूरा आये धाय।
पूरा सो तो लडत है, कायर भागे जाय ॥११४॥

१. पा० मुआ बिसूर। २. पा० फल निरमल अति दूर। ३. पा० मीठा।

सब कोइ सूर कहावई, धीर न बंधे कोय।
आगे पीछे बावरा, फिट्टे कहै सब कोय ॥११५॥

रग बग टोपी सब कसी, रन कूं चले बजाय।
फिर फिर भवन चितावई, बाना बिरद लजाय ॥११६॥

कायर का काचा मता, घडी पलक मन और।
आगा पीछा है रहै, जागि मिलै नहि ठौर ॥११७॥

कायर कचरी बैठि के, मूछाँ मरडै मरड।
सूरा तब ही जानिये, निकसे सरडै सरड ॥११८॥
सूरा कायर दुइ भला, एक जीव इक मान।
सूर मचावै मामला, कायर देवै जान ॥११९॥
कान हसिया मुख बकिया, इक दिन घायल होय।
टप लागी नहि चुप रहै, सूरा कहिये सोय ॥१२०॥
हाक बनी जब खेत में, तब रन दीसै प्रीत।
सारा लश्कर खलबलै, कायर दीन्ही पीठ ॥१२१॥
सूर निसाना गाडिया, लडै धनीकी रीज।
सिर बहै नीरत सडै, चहु दिस चमके बीज ॥१२२॥
धरनि अकासा थर हरै, गरजै सुँनके बीच।
कहैं कबिर जब सिर दिया, लेहौ लश्कर जीत ॥१२३॥
पारथ सूरा मै सुना, जाके सारंगपान।
बाहिर बैरी बहु हने, एक न मारै बान ॥१२४॥

सूरा सबहि निकसिया, बाना पहिरि अनेक।
साहिब के सुख कारनै, मूया कोई एक ॥१२५॥

साधू सब ही सूरमा, अपनी अपनी ठौर।
जिन ये पांचौ चूरिया, सो माथे का मौर ॥१२६॥

सूरा सो सनमुख लड़ै, देखि धनी की प्रीति।
जीता जानै जगत कूं, जक्त न जानै रीति ॥१२७॥

कबीर चढ़ै सिकार को, हाथै लाल कमान।
मूरख नर सो रहि गये, मारे संत सुजान ॥१२८॥

कबीर चढ़ै सिकार को, हाथे लाल कमान।
मेरा मारा फिर उठे, बहुरि न गहूं कमान ॥१२९॥

मारा है मरि जायगा, प्रेम सुरंगी बान।
मेरा मारा फिरि उठे, बहुरि न गहुं कमान ॥१३०॥

सब्द सुरति का तीर है, तरकस भरे जँजीर।
गीदड़ियाँ पर बाहताँ, केते खोये तीर ॥१३१॥

जूझन चाले सूरमा, धरनी किया मुकाम।
मर्दों के मैदान में, नहि कायर को काम ॥१३२॥

मलका है गजबेलका, खरा सरान चढाय।
सारा लस्कर ढूंढ़िया, को सिरदार न पाय ॥१३३॥

कायर काम न आवई, ये सूरका खेत।
हाथ पाँव बिन जूझना, काया सीस समेत ॥१३४॥

जे मूआ गुरु हेत सूं, ताकूं बूझ न वार।
साधू साहिब ह्वै रहा, माय रही सिर मार ॥१३५॥
जो मूआ हरि हेत में, कोइ न बूझै सार।
हरिजन हरि सा ह्वै रहा, माया रहि सिर मार ॥१३६॥
सिर साटै का खेल है, छांडि देय सब बान।
सिर साटै साहिब मिलै, तोहु हानि मति जान ॥१३७॥
नाम करन नाना भये, रहे महा रन मॉय।
भलका मारे प्रेमका, खरा खज़ीना खाय ॥१३८॥
धीरा है धमका सहै, ज्यौं अहरनका घाव।
सिर के साटै जब लड़ै, कबहूं काज न खाव ॥१३९॥
धनुक बान की चोट है, पानी का परसंग।
जिन कूं लागी होय सी, तिन कूं और हि रंग ॥१४०॥
रम रहे सूरा भये, सूर भये जो सूर।
सूरा पूरा रहि गये, भागि गये सब कूर ॥१४१॥
सूरा खांडा जो गहे, जब रन बाजे तूर।
सीस पड़े तो धड़ लड़ै, तब तू सांचा सूर ॥१४२॥
सबै कहावै लस्करी, सब लस्कर कूं जाय।
सेल धमका जो सहै, खरा मुसारा खाय ॥१४३॥
[1]जूझे ते नर भागिया, लिया पीठ पर घाव।
जागीरी सब ऊनरी, धनी न कहसी आव ॥१४४॥

१ पा० भागता था जूझिया, पीठ जु लागा घाव।

जूझै ते नर जूझिया, लिया सीस पर घाव ।
जागीरी दूनी भई, दिया सीस पर घाव ॥१४५॥
चोट सहै जो सेल की, ऊठी देह अवास ।
चोट सब्द की जो सहै, सोइ सुहागी दास ॥१४६॥
रन चढि सब्द पुकार ही, हो हो हो हुंकार ।
सिर बिन धड़ बिन भिड़ पड़ै, ता मांहीं भयकार ॥१४७॥
कोइ मारै तिर तोप सूं, होत दुवादस घाव ।
कबीर मारै सब्द सूं, तळ मूडी पर पाव ॥१४८॥
मन तरकस तन तोपसी, सुरति पलीता लाय ।
करो भड़ाका नाम का, काल कुबुध उड़ि जाय ॥१४९॥
ज्ञान कामठा गुन [1]चिला, तन तरकस मन तीर ।
सब्द भालका सार का, मारै दास कबीर ॥१५०॥
आस वास मन मेलिया, जब रन घसिया सूर ।
दल मोड़े सर ऊगरे, मुजरा साम हजूर ॥१५१॥
सूर लड़ै गुरु दाव सें, इक दिस जूझन होय ।
जूझे बीना सूरमा, भला न कहसी कोय ॥१५२॥
सूरा तो बहुतक मिले, घायल मिला न कोय ।
घायल कूं घायल मिले, नाम भक्ति दृढ होय ॥१५३॥
बाहिर घाव दिसै नहीं, पड़ा कलेजे घाव ।
वाकूं औषध का करै, घायल जीवै नाहिं ॥१५४॥

१५०. कामठा—पकड़नेकी मूठ । चला—चिल्ला, डोरी । तरकस—भाथा ।
भालका—भाला ।
१. पा० चला ।

बान तीरछा भेदिया, लागा भलका सार।
भरम बकतर भेदि कर, निकसि गया भौ पार ॥१५५॥
लागा भलका नाम का, रही गया उर माँहि।
लागा ताकुं साल सी, औरों कुं गम नांहि ॥१५६॥

स्वारथ को अंग।

स्वारथ का सब को सगा, सारा ही जग जान।
बिन स्वारथ आदर करै, सो नर चतुर सुजान ॥ १ ॥
निज स्वारथ के कारनै, सेव करै संसार।
बिन स्वारथ भक्ति करै, सो भावै करतार ॥ २ ॥
स्वारथ कूं स्वारथ मिले, पड़ि पड़ि लूंबालूंब।[१]
निस्नेही निरधार को, कोय न राखै झूंब ॥ ३ ॥
माया कूं माया मिले, कर कर लंबे हाथ।
निस्पेही निरधार को, गाहक दीनानाथ ॥ ४ ॥
माया कूं माया मिले, लंबी करके पांख।
निरगुन को चीन्है नहीं, फूटी चारों आंख ॥ ५ ॥
संसारी सें प्रीतड़ी, सरै न एकौ काम।
दुबिधा में दोनों गये, माया मिली न राम ॥ ६ ॥

१- पा० पांडि पडि वायंवाय।

परमारथ को अंग।

परमाय पाको रतन, कबहुँ न दीजै पीठ।
स्वारथ सेंमळ फूल है, कली अपूठी पीठ ॥ १ ॥
मरूँ पर माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारनें, मोहि न आवें लाज ॥ २ ॥
सीव रीव सब अर्थ की, परमारथ की नाँहि।
कहै कबिर परमार्थी, बिरला को(य) कलि माँहि॥३॥
सुख के संगी स्वारथी, दुख में रहते दूर।
कहै कबिर परमार्थी, दुख सुख सदा हजूर ॥ ४ ॥
जो कोय करे सो स्वारथी, अरस परस गुन देत।
बिन किये करै सूरमा, परमारथ के हेत ॥ ५ ॥
आप स्वारथी मेदिनी, भक्ति स्वारथी दास।
[१]कबीर जन परमार्थी, डारी तन की आस ॥ ६ ॥
स्वारथ सूका लाकड़ा, छाँह बिहूना सूल।
पीपल परमारथ भजो, सुख सागर को मूल ॥ ७ ॥
धन रहै न जोबन र[illegible], रहै न गाँव न ठाम।
कबीर जग [illegible] जस रहै, करदे किसिका काम ॥ ८ ॥

---

१. सेंमळे फूलकी कली उलटी होती है जो कि अपनी ओर खिलती है। भाव यह है कि स्वार्थ से केवल अपने को और परमार्थ से सारे संसार को लाभ पहुंच सकता है।

१. पा० कबीर नाम सनारथी, छाँडी तन की आस।

विपर्यय को अंग।

सांझ पड़ी दिन ढल गया, बाघन घेरी गाय।
गाय बिचारी ना मरै, बाघ न भूखा जाय ॥ १ ॥
पापी को दोजख नहीं, धरमी दोजख जाय।
यह परमारथ बूझि के, मति कोय धरम कराय॥ २ ॥
पांच पचीसों मारिया, पापी कहिये सोय।
या परमारथ बूझि के, पाप करै सब कोय ॥ ३ ॥

---

१ साझ-अत अवस्था। दिन-जीवन। बाघ-काल। गाय-आत्मा।
अत अवस्था आने से जीवन का अत हो गया, अत काल ने आत्मा को आ दबाया। ऐसी दशा में भी न तो आत्मा ही मरती है और न काल ही भूखा रहता है।

जिस प्रकार निर्जन वन में रक्षक के अभाव से रात को सिंह गाय को दबाता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को काल बार२ चपेटा करता है। यद्यपि आत्मा का नाश नहीं होता, तथापि देह से प्राणपुरुष का वियोग काल कर देता है, इसी का नाम मृत्यु है। यह एक आश्चर्य है कि न तो आत्मा ही मरती है और न काल ही भूखा रहता है।

२ पापी-पाच ज्ञानेन्द्रिय और पचीस प्रकृतियों को मारनेवाला। (वश में करनेवाला) दोजख-नर्क। धर्मी-पाच और पचीसों को अपने२ विषयों में लगानेवाला।

३ पाच और पचीसों को मारनेवाला पापी कहलाता है। यद्यपि पापी शब्द सुनने में बुरा लगता है, परन्तु इसका अर्थ अच्छा है, इस लिये सबों को ऐसा पापकर्म सदैव करना चाहिये।

आपा मेटै हरि मिलै, हरि मेटै सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कोई ना पतियाय ॥ ४ ॥
घर जारैं घर उबरैं, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥ ५ ॥
तिल समान तो गाय है, बछुड़ा नौ नौ हाथ।
मटकी भरि भरि दुहि लिया, पूंछ अठारह हाथ ॥ ६ ॥

४ आपा—अहंकार। हरि—पापों के हरणकर्ता, साहब।

अहंकार को दूर करनेवाला साहब के दरबार में पहुंच जाता है। और मालिक से प्रेम तोडनेवाले का सब कुछ चला जाता है। प्रेम की इस अकथ कहानी पर कोई विश्वास नहीं करता।

५ घर—प्रपंच, विकार। घर—आत्मा। मूवा—जीवितमृतक।

प्रपंच के विकारों को जला देने से जीवात्मा का उबार (उद्धार) होता है। और प्रपंच के विकारों को बढ़ाने से जीव चौरासी में चला जाता है, यह एक भारी आश्चर्य है कि जीवन्मृतक काल को भी खा लेता है।

भावार्थ—अहंकारादिक विकारों का त्यागना जीतेजी मरना है। जो ऐसा करता है उसे काल चौरासी में नहीं ले जा सकता।

६ वाणीरूप गायत्री तो तिल के समान स्वल्प है, परन्तु उसके बछडे रूप व्याकरण लम्बे २ नव हैं। और उसका अर्थरूप दूध भी बहुत अधिक होने के कारण अपार है। और तो और उसकी पूंछ भी अठारह पुराणों के रूप में अठारह हाथ की है।

झाल उठी झोली जली, खपरा फूटम फूत ।
जोगी था सो रमि गया, आसन रही भभूत ॥ ७ ॥

आग जु लागी नीरमें, कादौं जरिया झार ।
उत्तर दिसि का पंडिता, रहा विचार विचार ॥ ८ ॥

धौं लागी सायर जले, पंखी बैठे आय ।
दाधी देह न पालि है, सतगुरु गये लगाय ॥ ९ ॥

जल दाझा चीखल जला, बिरहा लागी आग ।
तिनका बपुरा ऊबरा, गल पूला के लाग ॥१०॥

७ झाल ज्ञान विरह । झोली—अंतःकरण के विकार । खपरा–काया । जोगी–जीवात्मा । आसन–संसार । भभूत–अनुभव ।

ज्ञान विरह के उदय से ज्ञानो पुरुषों के हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं । अनंतर उनके विदेहमुक्त हो जाने पर भी–जोगी के चले जाने पर भभूति की तरह उनका अनुभव संसार के लिये प्रसाद रूप रह जाता है ।

८ नीर रूप हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के जल उठने से सम्पूर्ण कर्मों का कीचड जल गया, इसके फल स्वरूप ज्ञानी जन निर्मल होकर विदेहमुक्त हो गये, परन्तु उपासनाकुशल उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करनेवाले उत्तरीय पंडित तो विचार विचार ही करते रह गये ।

९ ज्ञानी के हृदय रूप सागर में ज्ञान विरह की अग्नि के लगने से इन्द्रियों के गुण रूप पक्षी जल गये । सद्गुरु ने जिसको यह अग्नि लगा दी वह अपने शरीर की परवा कदापि नहीं करता ।

१० जल–काया । चीखल—कीचड, चिंता । तिनका=जीव । पूला मालिक ।

हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रकट होने से तन और मनके विकार–चिन्ता आदिक जल गये । केवल जीवात्मा सद्गुरु साहब के शरण पहुंचने से बच गया ।

आहेरी घौं लाइया, मिरग पुकारैं रोय।
जा बनमें की लाकड़ी, दाझत है बन सोय ॥११॥
पानी माहीं परजली, रई अपरबल आग।
बहती सरिता रह गई, मच्छ रहे जल त्यागि ॥१२॥
नदिया जलि कोइला भई, समुंदर लागी आग।
मच्छी बिरछा चढि गई, कह कबीरा जागि ॥१३॥
पच्छी उड़ानी गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोंच बिन, भूलि गया वह देस ॥१४॥

११ अहेरी–सद्गुरु। घौं—वन की अग्नि, ज्ञान विरह। मृग–पंच इन्द्रिय। बन—कामादिक विकार।

सद्गुरु ने ज्ञान विरह की ऐसी आग लगाई कि उसमें कामादिक विकार रूपी जंगल की लकड़ियाँ रूप इन्द्रियाँ जल गईं। अपनी रक्षा का तो उपाय उन्होंने बहुत कुछ किया फिर भी न बच सकीं।

१२ पानी—हृदय। आगि– ज्ञान विरह। सरिता–सुरति। मच्छ–मन। जल—माया।

ज्ञान विरह की अग्नि हृदय में ऐसी प्रज्वलित हुई कि सुरति एकाएक ठहर गई। और मन भी माया को छोड़ भागा।

१३ हृदय समुद्र में ज्ञान विरह की ऐसी आग लगी कि आशा की नदी जलकर कोयला हो गई। और मछली रूप सुरती दौड़ कर अछै पुरुष रूप बड़े पेड़ पर चढ़ गई।

१४ सुरति पिंड को छोड़कर गगन मंडल चढ़ गई, अनंतर वहां अंतरगति से निजानन्दामृत का ऐसा पान किया कि उसे इस देश की सुधि तनिक भी न रही।

आकासे औंधा कुवा, पाताले पनिहार।
जल हंसा कोय पीवई, बिरला आदि बिचार ॥१५॥
सिव सक्ति मुख को जुवें, पच्छिम दिसि उठे धूर।
जलमें सिंघ जो घर करें, मछरी चढ़े खजूर ॥१६॥
जिहि सर घटा न बूड़ता, मैंगल मलि मलि न्हाय।
देवल बूड़ा कलस सों, पँछि पियासा जाय ॥१७॥
चोर भरोसे साहुके, लाया बस्तु चोराय।
पहिले बांधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥१८॥

१५ गगन मंडल में नीचे मुख का एक अमृतकूप है। गुरुगम युक्ति के बिना उस अमृत को कुंडली शक्ति पी लेती है। कोई बिरले [illegible] आदि-विचार से उस अमृत का पान करते हैं।

१६ मेरुदंड में प्राणों के संचार से मन और मनसा का लय होता है। और गगन मंडल में सुरति के चढ़ने से हृदय में ज्ञान का संचार होता है।

१७ सद्गुरु के बिना जिसे निजानन्द सागर में मन जरा भी नहीं पैठता था अब तो वह हाथी के समान विहारपरायण होकर उससे जरा भी निकलना नहीं चाहता। और शरीर भी नख से शिखा तक उस आनन्द से आनन्दित हो गया, परन्तु संसारी उड़ाकू मन को इससे कुछ आनन्द नहीं मिलता।

१८ चोर=मन। साहु=शरीर।

शरीर की सहायता से मन नाना प्रकार के अनर्थ कर बैठता है, अतः शरीर को संयत बनाना भी अत्यावश्यक है, शरीर के निरोध से मन असहाय बनकर स्वयं हतोत्साह हो जाता है।

चोर भरोसे साहु के, वस्तु पराई लेय ।
जब लग साह न बांधई, चोर वस्तु नहि देय ॥१९॥

भँवरा बारी परिहरी, मेवा विलँबा जाय ।
बावन चंदन घर किया, भूलि गया बनराय ॥२०॥

एक दोस्त हमहू किया, जिहि गल लाल कबाय ।
सब जग धोबी धोय मरे, तोभी रंग न जाय ॥२१॥

बगुली नीर बिटारिया, सायर चढा कलंक ।
और पँखेरु पीविइया, हंस न बोरे चंच ॥२२॥

१९ मन शरीर के उपभोग के लिये माया का संचय करता है; अतः जब तक शरीर संयत न बनाया जाय तब तक मन नहीं रुक सकता ।

२० सद्गुरु की कृपा से अब मन ने विषयवाटी को त्याग दिया और नित्यानन्द रूप मेवे को खाने लगा । और पारब्रह्म रूप चन्दन का ऐसा निवासी बन गया कि अब संसार की तनिक भी सुधि नहीं करता ।

२१ मैंने ऐसे प्रेमी मन का संग किया जिसके गले तक प्रेम का लाल जामा है । अनेक संसारी लोगों ने उस रंग को फीका करने का उद्योग किया; परन्तु वह ज्यों का त्यों बना रहा ।

२२ कुबुद्धि ने नीर को अपने कर्तव्य से च्युत कर दिया, अतः शरीर को भी कलंक लग गया । संसारी लोग चाहें कुबुद्धि के पीछे पड़े रहें; परन्तु सन्तजन तो उसका संग कदापि नहीं करते । आत्मा का माया और माया के गुणों से कभी अंत होता नहीं ।

जल में अँन जो ना चुरै, घृत में पाक न होय।
कहैं कबिर या साखि को, अर्थ करै सब कोय ॥२३॥

तीन गुनन की बादरी, ज्यों तरुवर की छांहि।
बाहर रहै सो ऊबरै, भींजे मन्दिर माँहि ॥२४॥

ऐसी ब्याई सो हुई, बेस्या सो रहि पेट।
सगो ससुर पाँयन परौं, भइ सतगुरु सों भेंट ॥२५॥

सूम सदा ही उद्धरै, दाता जाय नरक्क।
कहै कबिर यह साखि सुनि, मति कोय जाव सरक्क ॥२६॥

---

२३ कबीर साहब कहते हैं कि इस साखीका अर्थ सब कोई कर सकते हैं, अर्थात् इस बात को सब कोई जान सकते हैं।

२४ तरुवर की छाया की तरह तीन गुन की बदली रूप माया की छाया भी स्थिर नहीं रहती। जो इस माया मन्दिर से बाहर रहते हैं वे भींजने नहीं पाते और जो इसके अन्दर रहते हैं वे गुणरूप जल से पूरी तरह भींज जाते हैं।

२५ विवाहिता स्त्रीरूप सुमति का गर्भपातरूप ज्ञान वध नाश हो गया। और वेश्यारूप माया के गर्भ से अज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न हो गया। और सद्गुरु से भेंट होने पर अहंकार रूप श्वशुर भी पैरों में आ पड़ा।

२६ सूम—वीर्य का दान नहीं करनेवाला साधुजन। दाता—वीर्य दान करनेवाला कामी पुरुष।

दाता नरक सूम बैकुंठे, मच्छर अंजर जरै ।
कबीर साखी कठिन है, हिरदै रसै तब अर्थ करै ॥२७॥
बैसन्दर जाड़े मरै, पानी मरै पियास ।
भोजन तो भूखा मरै, पायर मरै इगास ॥२८॥
नलिनी सायर घर किया, दौं लागी बहु तब्र ।
जल ही मांहीं जलि मुई, पूरब जन्म लखन्न ॥२९॥
रैनि पुरै बासर घटै, बन अंधियारा होय।
लागि रहा फूला फला, पथ नहि काटा कोय ॥३०॥

---

२७ नहीं जलनेवाली मत्सरता (दूसरों में तुच्छता बुद्धि) को जलानेवाले पूर्वोक्त सूम की सद्गति होती है और पहले कहे हुए दाता को तो नर्क ही जाना पड़ता है। कबीर साहब कहते हैं कि कठिनता के कारण जिस–के हृदय में यह अर्थ बैठता है वही इस साखी का अर्थ कर सकता है।

२८ कामाग्नि का शील से नाश होता है और तृष्णा के शमन से तृष्णा का नाश होता है। तथा इन्द्रियों के शमन से विषयभोग की निवृत्ति होती है। इसी प्रकार भय से मूर्ख का दमन होता है।

२९ आत्मा को शरीराध्यास ही के कारण लोभ मोहादिक से अनेक सताप उठाने पड़ते हैं। यह कुछ भाग्य की बात है कि माया ही से इसका सर्व नाश होता है।

३० जवानी बीत गई और बुढ़ापा भी धीरे २ बीत रहा है। और निर्बलता के कारण इन्द्रिया भी असमर्थ हो गई। अज्ञानी लोग न मना से ससार में आसक्त रहते हैं। पुत्र और पौत्रादिकों के सुख को उठाते हुए भी चौरासी से नहीं छूटने पाते।

उलटा ज्ञान विचार के, देखो अपना देस।
हरदी चूने मिलाय के, रहै न दूजी लेस।।३१।।

कबीर उलटा ज्ञान का, कैसे करूँ विचार।
अस्थिर बैठा पंथ कटै, चला चली नहि पार।।३२।।

सायर माहीं सर गया, मच्छी खाया सोय।
सो मच्छी तरुवर चढी, बूझै बिरला कोय।।३३।।

हरि घोडा ब्रह्मा कडी, बासक पीठि पलान।
चांद सुरज दुइ पावडा, चढसी संत सुजान।।३४।।

३१ संसार से उपरत होकर निजपद की ओर बढ़ो। आत्मा और आत्मचिंतन के प्रताप से द्वैत का लेश तक नहीं रहता।

३२ इस उल्टे ज्ञान का वर्णन नहीं किया जा सकता। जो संसार से उपरत होकर बैठ जाते हैं वे तो चौरासी के मार्ग को पार कर लेते हैं, और जो अनेक विडंबनाओं में पडकर इधर उधर दौड धूप करते रहते हैं वे इस मार्ग का अन्त नहीं पाते।

३३ हृदय में समाये हुए गुरु के सब्द को सुरति ने ग्रहण कर लिया इस कारण वह सर्वोच्चपद को पहुंच गई, इस बात को बिरले पुरुष जानते हैं।

३४ आत्मयोगी लोग तमोगुण के घोडे को रजोगुण की कडी लगाकर कुंडलनी सर्पिणी को वश में करते हैं। अनंतर इंगला और पिंगला के पावडे बनाकर सुषुमणा में सुरति को चढ़ाते हैं।

घटी बढ़ी जानै नहीं, मन में राखै जीत ।
गाडर[१] लड़ै गयन्द सों, देखो उलटी रीत ॥३५॥
कूकर बहुबहु जरि मुआ, सलसै चढ़ी सियार ।
रोवत आवै गदहरा, रोधत आय विलार ॥३६॥
मा मारी धी घर करै, गौ सो बच्छा खाय ।
ब्राह्मन मारै मद पिये, तो अमरापुर जाय ॥३७॥
माता मूये एक फल, पिता मुये फल चार ।
भाई मूये हानि है, कहैं कबीर विचार ॥३८॥

३५ गाडर-काया । गयन्द मन ।

अपने ऊपर आई हुई अनेक आपत्तियों को सहनेवाला मनुष्य शारीरिक-संयम के कारण मन पर विजय पा सकता है । शरीर से मन को रोकना हाथी से भेड़ का लड़ना है ।

३६ ज्ञानी वीरों की ज्ञानाग्नि से कामादिक कुत्तों के झुंड जल जाते हैं । और संशय रूपी सियार जीते जी चिता पर चढ़ जाता है । गर्व रूपी गदहा रोता है और वादरूप बिल्लार उसको सान्त्वना देता है ।

३७ जो अधिकारी पुरुष ममतारूप माता को मारता है तथा बुद्धिरूप लड़की को अपने हृदयरूप गृह की गृहिणी बनाता है । इसी प्रकार सुमतिरूप गौ के विवेक बछड़े को खाता है, तथा जो वादरूप ब्राह्मण को मारकर गुरुमत रूपी मद्य को खूब पीता है वह स्वर्ग को अवश्य पहुंचता है ।

३८ माता रूप ममता के मरने से चित्शक्तिरूप एक उत्तम फल मिलता है । और पिता=चित्त, क्रोध के मरने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चार फलों की प्राप्ति होती है; परन्तु मानरूप भाई के मरने से तो मुक्ति में हानि हो जाती है । यह उपदेश सद्गुरु कबीर ने खूब विचार कर दिया है ।

अचर चरै चर परिहरै, मरै न चारै जाय।
बारह मास बिलोवना, घूमै एकै भाय ॥३९॥
ऊनै आई बादरी, बरसन लगा अंगार।
ऊठि कबीरा धाह दे, दाझत है संसार ॥४०॥
बेटि को भाटी ले गइ, बेटा को (ले गइ) भंगार।
माता को लोइ ले गइ, कबीर सिरजनहार ॥४१॥
अब तो ऐसी है पड़ी, ना तुम्बरी ना बेलि।
जारन आनी लाकड़ी, ऊठी कोंपल मेलि ।४२॥
बिन पाँवन का पंथ है, मंझ सहर अस्थान।
बिकट घाट औघट घना, पहुँचै संत सुजान ॥४३॥

---

३९ जो पुरुष सदा के लिये निश्चल तत्व में स्थिर होकर ससार से नाता तोड देता है वह न मरता है और न चिन्तित ही होता है।

४० माया की बदरी झुक आई और उससे विकार के अंगारे बरसने लगे। ऐ बीर! इससे निकल भाग, देखो, सारा ससार इससे जल रहा है।

४१ बेटी-भलाई को भाटी-भलाई ले गई। और बेटा-वाद को भगार-भजन ले गया। इसी प्रकार माता-ममता को लौ-लगन ले गई। और कबीर-जीव को सिरजनहार ले गया।

४२ सद्गुरु की दया से मायारूप बेलि और तृष्णारूप तुमडी दोनों का उच्छेद हो गया। और कायारूप काठी में योग की अग्नि के लगते ही उससे भक्ति की कोंपल निकल आई।

४३ सद्गुरु का स्थान-निवास मध्यशहर अर्थात् हृदयकमल में है; परन्तु उसका मार्ग बिना पाव का है अर्थात् निष्काम कर्म के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है। और उसका घाट द्वार भी औघट अटपट है। ऐसी स्थिति में कोई सुजान सन्त ही वहा पहुच सकते हैं। "क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति" इति श्रुतेः।

ऊंचा चढि असमान को, मेरु ऊलंघे ऊडि ।
पशु पंछी जिव जन्तु सब, रहा मेरुमें गूडि ॥४४॥
धरति समानी अधर में, अधर धरा के मांहि ।
अधर धरा जब देखिया, दीसै दूसर नांहि ॥४५॥
या देखा वा देखिया, वा देखा या थीर ।
यह वह दो एकै भया, सतगुरु मिलै कबीर ॥४६॥

४४ अभ्यासी को उचित है कि गगन मंडल में चढकर और सुरति के पाखों से उडकर मेरु अर्थात् मेरु दंड से पार हो जाय; क्यों कि पशु पक्षी और सब जीव, जन्तु मेरुदण्ड में ही गड़े पड़े हैं ।

भावार्थ—पशु पक्षियों से यहा पाशविक भावनाएं ली गई हैं जो कि मनुष्यों को ससार की ओर खींचती हैं । मूलाधार से सहस्रार तक मेरु की सीमा है । सहस्रदल कमल निरंजन का है इसमें मन का निवास है । इसके परे सुरति कमल है, जहापर " सुरति कमल में (पर) सत्ति बोले " इसके अनुसार सद्‌गुरु का धाम है । वहा पहुचने से पाशविक भावनाएं दूर हो सकती हैं ।

४५ अभ्यासी की धरती–सुरति अधर–निरति (शब्द) में समा गयी, मिल गयी । ऐसा होने से वह अधर (शब्द) धरा–सुरति में ही आ गया । इस प्रकार अभ्यासी की सुरति और निरति की एकता के कारण समाधि लाभ होने से—" तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् " (योग दर्शन) इसके अनुसार स्वरूपावस्थिति होने से " दीसै दूसर नाहि " दूसरा प्रपंच कुछ भी नहीं दीखता ।

४६ जीव के स्वरूप का बोध होने पर साहेब का भी साक्षात्कार हो जाता है । और साहेब के साक्षात्कार के अनन्तर ही इस जीव को सच्ची स्थिरता प्राप्त होती है । कबीर साहेब कहते हैं कि यह दुर्लभ लाभ तब ही प्राप्त हो सकता है जब सद्‌गुरु मिलें, सद्‌गुरु के मिलने पर ही यह और वह अर्थात् जीव मालिक दोनों एक रूप हो जाते हैं ।

पानी हूने पातला, धूँवा हू ते झीन।
पवन हू वेग उतावला, दोस्त कबीरा कौन ॥४७॥
पुहुप वास ते पातला, सूक्षम जाको रंग।
कबीर तासें मिलि रहा, कबहु न छाडै संग ॥४८॥
पहिले मा का खसम भया, पिछे भया है पूत।
अंतर गत को समुझि के, छोडि चले अवधूत ॥४९॥

४७ इस जीव ने ऐसे मन के साथ मित्रता की है—जो पानी से भी पतला और धूआ से झीना है। और जिसका वेग पवन से भी अधिक है, ऐसे चचल मन के साथ रहनेवाले जीवात्मा को कदापि शान्ति नहीं मिल सकती।

"चचल हिं मन कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढ, तस्याह निग्रह मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्" (गी०)

४८ यह जीव ऐसे मन के साथ मिला जुला रहता है, और उसका साथ कभी नहीं छोडता क्यो कि फूलों की महक से भी पतला है, और जिसका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है। और यही कारण है कि उसको ठीक तरह से यह जीव नहीं जान पाता है।

४९ ससार के ऐसे सूक्ष्म रहस्य को समझकर त्यागी पुरुष इसे छोड देते हैं। देखिये यह कैसा आश्चर्य है। "तदेव जायाया जायात्व यदस्या जायते पुमान्" तथा "आत्मा वै जायते पुत्र" इन श्रुतियों के अनुसार पुरुष ही पुत्र रूप से अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता है। पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् इस कथन से स्त्री माता हो जाती है। "भौ बालक भग द्वारे आया, भग भोगी के पुरुष कहाया" ससार की यही विचित्र लीला इस साखी में कहा गई है, 'पहले माका खसम भया, पिछे भया है पूत' अर्थात् स्त्री प्रसग के समय पुरुष अपनी माता का पति बनता है। और वही पुत्रोत्पत्ति के समय पाछे उसका लडका बन जाता है। इसी उलट फेर से डरकर त्यागी पुरुष अलग ही रहते हैं।

खसम छाड़ि बेटा भया, माता मिहरी होय।
मूरख मन समुझै नहीं, बड़ा अचंभा मोय ॥५०॥
पानी में की माछली, चढ़ि सो परवत गई।
अग्नी पीया पुष्ट भई, जल पीया मर गई ॥५१॥
कफ काया चित चकमका, झाड़ीं बारंबार।
तीन बार धूंवा उठे, चौथे पड़े अंगार ॥५२॥

५० ऊपर की साखी के कथन अनुसार पुत्र की उत्पत्ति के समय पति ही अपनी स्त्री का पुत्र बनता है। इस नाते से स्त्री उस पुरुष की माता बन जाती है। कबीर साहेब कहते हैं कि इस गूढ़ रहस्य को मूर्ख लोग अपने मन में नहीं समझते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है।

५१ संसारी जीवों की सुरति एक विचित्र मछली है, जो कि संसार के विषयों की अग्नि को पी कर मस्त बनी रहती है। सद्गुरु की दया होने पर उनकी सुरति में ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह पर्वत के समान सब से ऊंचे सद्गुरु के धाम में चढ़ जाती है, और वहां पहुंचने पर उसको जल के समान अत्यंत प्रिय निजानंद रूपी अमृत पीने को मिलता है। आश्चर्य है कि वह जल के पीते ही सदा के लिये मर जाती है। अर्थात् संसार की सुधि भूल जाती है।

५२ सद्गुरु कहते हैं कि काया के कपड़े पर चित्त के चकमक को बार २ झाड़ो, अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा तन में मन का निरोध करो। इस प्रकार बार २ अभ्यास करने से मन की त्रिगुणावस्था दूर हो जायगी। त्रिगुणावस्था का रहना अग्नि की वह धूम्रावस्था है कि जिसमें प्रकाश का अभाव रहता है। इसी बात को इस साखी में तीन बार

गुरु दाझ्या चेला जल्या, विरहा लागी आग ।
तिनका बपुरा ऊबरा, गळ पूरी के लाग ॥५३॥
बहनी सें बेटी भई, बेटी सें भइ नार ।
नारी सें माता भई, मनसा लहर पसार ॥५४॥

५३ ज्ञानी के हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रगट होने पर उसके दृष्टि में गुरुभाव और शिष्यभाव नहीं रहता, यही गुरु और चेले का जलना है । इस प्रकार पूर साहेब की शरण में जाने से यह तुच्छ दास विकराल कालाग्नि से बाल २ बच जाता है ।

भावार्थ—" पूरा साहेब सेइये, सब विधि पूरा होय "

५४ मन की लहर का दोड़ाव इस प्रकार से होता है कि पहले बहनी= प्रज्ञा से बेटी=इच्छा होती है, और बेटी से नारी=प्रकृति बन जाती है। पश्चात् उसी नारी से माता रूप उत्पत्ति होती है। इस प्रकार की मन की तरंगों का वर्णन महात्माओं ने किया है।

† (धूंवा) उठे इस पद से बताया गया है। त्रिगुणावस्था के दूर होने पर गुणातीत का पद प्राप्त होता है, इसीको तुरीय पद और चौथा पद भी कहते हैं। चौथे पद को प्राप्त होने पर आत्मा का स्वय प्रकाश सामने आ जाता है। यही यहा पर " चौथे पदे अगार " इस पद से अंगारा पडना बताया गया है।

भावार्थ—त्रिगुणावस्था मन का है और चौथा पद आत्मा का है " तीन लोक में है यम राजा, चौथे लोक में नाम निशान, एखे कोई विरला पद निर्बान। "

चार चरन नौ पख है, दो मस्तक है ताहि।
इक मुख सीप सँवारही, इक मुख भोजन खाहि॥५५॥
माता का सिर मूंडिये, पिता कूँ दीजै मार।
बन्धु मारि डारै कुआ, पंडित करो विचार॥५६॥
कबीर कोठी काठ की, चहुँ दिस लागी लार।
धुई पड़े सो ऊबरे, दाझे देखन हार॥५७॥

५५ इस मन पक्षी के मन बुद्धि चित्त और अहंकार रूप चार चरण हैं, और प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप दो पाखें हैं। साकार और निराकार रूप दो मस्तक हैं। उनमें से निराकार रूपी मुख से यह शून्य रूपी सीप का सुख भोगता है और दूसरे साकार मुख से यह नाना प्रकार के भोग रूपी भोजन करता है।

भावार्थ—मन पक्षी तन लग उड़े, विषय वासना माहि।
ज्ञान बाज का झपट में, जब लग आयो नाहि॥

५६ कबीर साहेब कहते है कि हे पंडितो! आप लोग इस साखी के अर्थ का विचार करिये, सुनिये और समझिये। माता रूप ममता का शिर मूड डालिये और पिता अज्ञान को मार डालिये, इसी प्रकार अहंकार रूपी बंधुओं को भी मारकर कुयें में डाल दीजिये। ऐसा करने से ही आप लोगों का कल्याण होगा।

५७ कबीर साहब कहते हैं कि ज्ञान विरही पुरुषों का ऐसा स्थिति होती है कि उनकी कामना रूपी काठ का कोठी के चारों ओर ज्ञान विरह का अग्नि जलती रहती है। ऐसी स्थिति में उस अग्नि के घेरे में आ जाने वाले ज्ञान विरही संसार की आंच से बच जाते हैं। और दूर से देखने वाले सत्यसंगी लोग जल मरते हैं, अर्थात् सत्यसंगियों को भी ज्ञान विरह की लपट लग जाती है।

दव लागी दरियाव में, नदिया कुइला होय।
मच्छी परवत चढि गई, बूझै बिरला कोय ॥५८॥
दव लागी दरियाव में, उठी अपरबल आग।
सलिता बहती रहि गई, मीन दिया जल त्याग ॥५९॥
कीडी चली जु सासरे, नौ मन काजल लाय।
हस्ती लीन्हा गोद में, ऊँट लपेटे जाय ॥६०॥

५८ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के लगते ही उनकी सांसारिक कामना रूप नदी जलकर कोयला बन गई। और उनकी सुरति रूप मछली पर्वत रूपी ऊँचे सद्गुरु के देश म पहुंच गई। इस रहस्य को कोई विरले ही पुरुष समझ पाते हैं।

५९ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान विरह की ऐसी प्रचंड अग्नि जल उठी कि उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई, इस कारण उनकी कामना रूप नदी का बहाव रुक गया और उनकी सुरति रूप मछली भी संसार समुद्र को छोड भागी।

भावार्थ—ज्ञान विरही जनों के हृदय में सदैव ज्ञान विरह की ज्वाला उठती रहती है। केवल सद्गुरु के दर्शन के अतिरिक्त उनके हृदय में किसी प्रकार की कामना नहीं रहती और उनकी सुरति भी संसार अलग हो जाती है।

६० सद्गुरु की कृपा से ज्ञान विरही जनों की सुरति रूप चिंटी ने सत्य लोक रूप ससुराल का रास्ता पकड लिया। उसके विचित्र शृंगार को सुनिये—उसने अपनी विवेक की आखों में नवधा भक्ति का काजल लगा लिया और मन रूपी हाथी को पकडकर गोद में बैठा लिया अर्थात् मन को अपने वश में कर लिया। और अहंकार रूपी ऊंट की गर्दन पकडकर उसको हाथ में अधर लटका लिया।

भावार्थ—नवधा भक्ति के धारण करने से तथा मन और अहंकार के दमन करने से ही प्रेमियों की सुरति सत्य लोक को पहुंच सकती है।

रपट भैंस पीपल चढ़ी, पाढ़े भागे दो ऊंट।
गड्डे दीनी आंचकी, भये भैंस दो टूट ॥६१॥
भैंरें लगि सायर तरी, तरी नेह बिन नीर।
प्रीतम कूं प्यारी मिली, यों कहि दास कबीर ॥६२॥
तत्त समाना तत्त में, अनहद समाना आप।
ब्रह्म समाना ब्रह्म में, आप समाना आप ॥६३॥

६१ इस साखी में विवेकदशा और और अविवेकदशा का वर्णन किया गया है। विवेकस्थिति में प्रकृति रूप भैंस तत्काल ही पीपल रूप पुरुष पर आरूढ़ हो जाती है, अर्थात् प्रकृति का पुरुष में लय हो जाता है। और राजस तथा तामस अन्धकार रूपी दोनों ऊंट भी भग जाते हैं। अर्थात् दोनों का अभाव हो जाता है। इसके विपरीत अविवेक दशा में अविवेक रूपी गड्ढा प्रवृत्ति रूप भैंस को ऐसा झटका मारता है कि उसके दो टुकड़े हो जाते हैं। इन दोनों टुकड़ों का नाम सांख्यशास्त्र में प्रकृति और विकृति है।

" मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः " (सांख्यकारिका)

६२ प्रेमियों की सुरति प्रेम की नौका पर चढ़ कर संसार समुद्र को तर जाती है। यह संसार समुद्र बिना स्नेह के पानी का है। कबीर साहिब कहते हैं कि इस प्रकार संसार से पार पहुंच कर प्यारी सुरति अपने प्रियतम साहिब से मिल जाती है।

६३ ज्ञानियों की मुक्तिदशा में उनके पाञ्चभौतिक तत्त्व (कार्य) पञ्च महाभूतों में मिल जाते हैं। और उनका आप अनहद में समा जाता है। इसी प्रकार कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म का भी ब्रह्म में लय हो जाता है। ऐसी स्थिति के प्राप्त होने पर उनका स्वरूप अपने आप में स्थित हो जाता है। अर्थात् सबों से असंग होकर अलिप्त हो जाता है। इसी को कैवल्य मुक्ति कहते हैं।

आग लगी आकास में, जरि जरि पड़े अंगार।
कहैं कबिर॰ उठ जाग रे, जळन लगा संसार ॥६४॥

भेरे चढ़िया सरप के, भौसागर के मांहि।
जो छाडै तौ बूडि है, गहि तो डसि है बांहि ॥६५॥

हम जाये ते भी मुआ, हम भी चालनहार।
हमरे पीछे पूंगरा, तिन भी बांधा भार ॥६६॥

साथी हमरे चालि गये, हम भी चालन हार।
कागद में बाकी रही, ताते लागी वार ॥६७॥

रस को अंग।

कबीर हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौ लाय।
रोम रोम म रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥ १ ॥

कबीर हरि रस भरि पिया, कोय न पीवै नीर।
भाग बड़ा सो पीवसी, भरि भरि पिवै कबीर ॥ २ ॥

कबीर हरि रस बटत है, सरवन दोना ओढ़ि।
राम चरन काँठा गहो, मति करहू घों छोटि ॥ ३ ॥

कबीर हरिरस जिन पिया, माँगै सीस कलाल।
दिल ओछा जिन दूबला, बहुत बिगूचे माल ॥ ४ ॥

हरिरस महँगा जन पिये, देवै सीस कलाल ।
घट ओछा दिन दूबला, बंठेगा बहु काल ॥ ५ ॥
हरिरस पीया जानिये, उतरै नाँहि खुमारि ।
मतवाला घूमत फिरै, नहि जो तन की सारि ॥ ६ ॥
हरिरस महँगा पीजिये, छाँडि जीवकी वानि ।
सिर के साटे हरि मिले, तबलग मुहँगा जानि ॥ ७ ॥
सिर दीये जो पाइये, देत न कीजे कानि ।
सिर के साटे हरि मिले, तबलग मुहँगा जानि ॥ ८ ॥
पिया पियाला प्रेमका, अन्तर लिया लगाय ।
रोम रोम में रमि रहा, दूजा रस क्या प्याय ॥ ९ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया, जरा न किया जतंन ।
आवै छकि तब जानिये, रंका घड़ा रतंन ॥१०॥
थोरे ही से छाकिया, भाँडा पीया धोय ।
फूक पियाला जिन पिया, रहे कलालों सोय ॥११॥
राता माता नाम का, पीया प्रेम अघाय ।
मतवाला दीदार का, माँगे मुक्ति बलाय ॥१२॥
राता माता नाम का, मद का माता नाँहि ।
मद का माता जो फिरै, सो मतवाला काहि ॥१३॥

---

१०. हृदय में प्रेम की मस्ती का आना रंक के घडे में रत्नों का भर जाना है ।

मतवाला घूमत फिरै, रोम रोम रस पूर।
छाँड़ै आस सरीर की, देखै राम हजूर ॥१४॥
महमंता अविगत रता, आसा अकल अजीव।
नाम अमल माते रहे, जीवन मुक्त अतीत ॥१५॥
महमंता नहि त्रिन चरै, सालै चित्त सनेह।
वारिज बंधा कलाल के, डारि रहा सिर खेह ॥१६॥
आठ गाँठि कोपीन के, साधु न मानै संक।
नाम अमल माता रहै, गिनै इन्द्र को रंक ॥१७॥
दावे दाझन होत है, निरदावै निहसंक।
जो जन निरदावै रहै, कहै इन्द्र को रंक ॥१८॥
पिया पिया सब कोय कहै, हरिजन माता एक।
फूल करावा जे पिये, पड़ा कलेजे छक ॥१९॥

मन को अंग।

कबीर मन तो एक है, भावै तहां लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ १ ॥
कबीर यह मन मसखरा, कहूँ तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिले, तहाँ न चालै कोस ॥ २ ॥
कबीर मन परबत भया, अब मैं पाया जान[1]।
टाँकी लागी प्रेमकी, निकसी कंचन खान ॥ ३ ॥

---

१६. वारिज–हाथी। १. पा० सब्द की।

कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागे नाँहि ।
घनी सहेगा सासना, जम की दरगह माँहि ॥ ४ ॥
कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार ।
भजन करन को आलसी, खाने को तैयार ॥ ५ ॥
कबीर मन हि गयंद है, आंकुस दे दे राखु ।
विष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥ ६ ॥
कबीर मन मरकट भया, नेक न कहुँ ठहराय ।
सत्तनाम बाँधे बिना, [1]जित भावै तित जाय ॥ ७ ॥
कबीर सेरी सांकरी, चंचल मनुवा चोर ।
गुन गावै लौलीन है, कछु इक मनमें और ॥ ८ ॥
कबीर बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच ।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावै नाच ॥ ९ ॥
कबीर यह मन किन गया, जो मन होता काल ।
डूँगर [2]बडा मेह ज्यों, गया निवाँना चाल ॥१०॥
कबीर मनका माँदिला, अवला वहै असोस ।
देखत ही दह में परे, देय किसी को दोस ॥११॥

१०. निवान—तालाब या नदिया । वर्षा के समय ऐसा मालूम होता है कि मानों पहाड मेवजल स डूब गया है, परन्तु थोडे काल में पानी बहकर तालाब या नदियों में चला जाता है । इसी प्रकार कथाप्रसंग में मन ज्ञान-निमान हो जाता है; परन्तु थोडे ही काल में फिर विषयों में चला जाता है ।

११. अवला—उलटा । असोस-निर्भय । दह—गड्हा ।

१. पा० सौ सौ नाच नचाय । २ पा० वूठों ।

कबीर लहरि समुद्र की, केती आवै जाँहि ।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै माँहि ॥१२॥
कबीर यह गत अटपटी, चटपट लखी न जाय ।
जो मन की खटपट मिटै, अधर भये ठहराय ॥१३॥
अधर भया खटपट मिटै, एक निरन्तर होय ।
कहैं कबिर तब जानिये, अन्तर पट नहिं दोय ॥१४॥
मन के मते न चालिये, मनके मते अनेक ।
जो मन पर असवार है, सो साधु कोय एक ॥१५॥
मन के मते न चालिये, छाँड़ि जीव की बानि ।
[1]कतवारी के सूत ज्यों, उलटि अपूठा आनि ॥१६॥
मन पाँचौं के वस पड़ा, मन के वस नहिं पाँच ।
जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच ॥१७॥
मन के मारे वन गये, वन तजि बस्ती माँहि ।
कहैं कबिर क्या कीजिये, यह मन ठहरे नाँहि ॥१८॥
मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोय साध ।
जो मानै गुरु वचन को, ताका मता अगाध ॥१९॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय ।
विष की क्यारी बोय के, लुनता क्यौं पछिताय ॥२०॥

१६. कतवारी—कातनेवाली । अपूठा-उल्टा । १९. मुरीद-शिष्य ।
१. पा० ताकत केता तार ज्यूं ।

मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय ।
टूटे पीछे फिरि जुरै, बीच गाँठि परि जाय ॥२१॥
मन ही को परमोधिये, मन ही को उपदेस ।
जो यह मन को बसि करै, सीष होय सब देस ॥२२॥
मन गोरख मन गोविंदा, मन ही औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥२३॥
मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय ।
मन के जैसी ऊपजै, तैसी ही ह्वै जाय ॥२४॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु सों मिलै, तो गुरु मिलै निसंक ॥२५॥
मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय ।
एक रंगमें जो रहै, ऐसा विरला कोय ॥२६॥
मनुवा तो पंछी भया, उड़ि के [१]चला अकास ।
ऊपर ही ते गिरि पड़ा, मन माया के पास ॥२७॥
मन पंछी तबलगि उड़ै, विषय वासना माँहि ।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आवै नाँहि ॥२८॥
मन कुंजर महमन्त था, फिरता गहिर गँभीर ।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गई प्रेम जँजीर ॥२९॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
कहैं कबिर गुरु पाइये, [२]मन के प्रेम प्रतीत ॥३०॥

१. पा० चढा । २. पा० मन ही की परतीत ।

मन नहि छाडै विषय रस, विषय न मन को छाडि।
इनका यही सुभाव है, पूरी लागी आडि ॥३१॥
मन से मन मिलता नहीं, तन को करता भंग।
मन अब भया जु कामरी, चढै न दूजा रंग ॥३२॥
मन दीजै मन पाइये, मन बिन मान न होय।
[१]मन उनमुन ता अंड ज्यौं, अलल अकासा जोय ॥३३॥
मन जो गया तो जान दे, दृढ करि राख सरीर।
[२]बिना [१]चढाय कमान के, [२]कैसे लागे तीर ॥३४॥
मनवा तो फूला फिरै, कहै जो करूँ धरम।
कोटि करम सिर पर चढै, चेति न देखै मरम ॥३५॥
मन नहि मारा मन करि, सका न पाँच प्रहारि।
सील साँच सरधा नहीं, अजहूँ इन्द्रि उघारि ॥३६॥
मन की घाली हूँ गई, मन की घाली जाँव।
संग जो परी कुसंग के, हाटै हाट बिकाऊँ ॥३७॥
मन चलतॉं तन भी चलै, ताते मन को घेर।
तन मन दोऊ बसि करै, होय राइ सूँ मेर ॥३८॥
मना मनोरथ छाँडि दे, तेरा किया न होय।
पानी में घी नीकसै, रूखा खाय न कोय ॥३९॥
मनुवा तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुधि पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥४०॥

१. पा० चढाये कामठो। २. पा० क्यों कर।

मन निरमल गुरु नाम सों, कै साधन के भाय ।
कोइला दूनी कालिमा, सौ मन साबुन खाय ॥४१॥
मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै ।
काहे की कुसलात, ले दीपक कूँये परै ॥४२॥
महमंता मन मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४३॥
मन मनसा को मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४४॥
मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि ले पीस ।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुमा झलकै सीस ॥४५॥
मन मनसा जब जायगी, तब आवेगी और ।
जब ही निश्चल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥४६॥
यह मन फटकि पछोरि ले, सब आपा मिटि जाय ।
पिंगुला ह्वै पिव पिव करै, ताको काल न खाय ॥४७॥
यह मन को बिसमिल करूँ, दीठा करूं अदीठ ।
जो सिर राखूँ आपना, पर सिर जलौ अँगीठ ॥४८॥
यह मन तो मिरगा भया, खेत बिराना खाय ।
सूला करि करि सेकसी, धनी पहूँचै आय ॥४९॥
यह मन तो मैला भया, यामें बहुत बिकार ।
या मन कैसे धोइये, सन्तो करो विचार ॥५०॥

४९. सूला करना-मास को भूनना ।

यह मन मेवासी भया, बसि करि सकै न कोय।
सनकादिक रिसि सारिखे, दिन के गया बिगोय ॥ ५१ ॥
यह मन बीकारै पड़ा, गया स्वाद के साथ।
गटका खाया बरजतां, अब क्यों आवै हाथ ॥ ५२ ॥
यह मन साधू ले मिलो, नहिं तो लेगा जान।
मन मुनसिफ को पूछि ले, नीकी है तो मान ॥ ५३ ॥
यह मन नीचा मूल है, नीचा करम सुहाय।
अमृत छाडै मान करि, विष हिमोत करि खाय॥५४॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौड़।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥ ५५ ॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जेती मन की दौर।
दौड़ि थके मन थिर भया, वस्तु ठौर की ठौर ॥ ५६ ॥
खैंचूं तो आवै नहीं, जो छाडूं तो जाय।
कबीर मन को पूछरे, प्रान टटीवा खाय ॥ ५७ ॥
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुनि चुनि खात ॥ ५८ ॥
अपने उरझे उरझिया, दीखै सब संसार।
अपने सुरझे सुरझिया, यह गुरु ज्ञान विचार॥ ५९ ॥

---

५१. मेवासी-डाकू। ५२. गटका-मिठाई। (विषय सुख)
५३. मुनसिफ-इन्साफ करनेवाला। ५७. पूछरे-पीछे।
टटीवा-चक्कर।

चंचल मनुवा चेतरे, सोवै कहा अनजान।
जम धर जब ले जायगा, पडा रहेगा म्यान ॥ ६० ॥

चिन्ता चित्त बिसारिये, फिरि बुझिये नहि आन।
इन्द्री पसारा मेटिये, सहज मिले भगवान ॥ ६१ ॥

तन माँहीं जो मन धरै, मन धरि ऊजल होय।
साहिब सों सनमुख रहै, तो अमरापुर जोय ॥ ६२ ॥

पय पानी की प्रीतडी, पडा जु कपटी लौन।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावे कौन ॥ ६३ ॥

कबहुँक मन गगनहि चढे, कबहूँ गिरै पताल।
कबहुँक मन उनमुनि लगै, कबहूँ जावै चाल ॥ ६४ ॥

कोटि करम करै पलक में, या मन बिषया स्वाद।
सतगुरु सब्द न मानही, जनम गँवाया बाद ॥ ६५ ॥

कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग।
कहै कबिर कैसे तिरै, पाँच कुसंगी संग ॥६६ ॥

इन पाँचोंसे बंधिया, फिर फिर धरै सरीर।
जो यह पाँचों बसि करै, सोई लागै तीर ॥ ६७ ॥

निहचिन्त है करि गुरु भजै, मन में राखै साँच।
इन पाँचौं को बसि करै, ताहि न आवै आँच ॥ ६८ ॥

पाँचों वैरी जीव के, दलै इनै इक चित्त।
एक देखै एक ध्यावही, औगुन बहुत अमित्त ॥ ६९ ॥

पाँच सहाई जीव के, जो गुरु पूरा होय।
कोय ध्यान कोय नाम रत, काज न बिगड़ै सोय ॥ ७०॥

इन्द्री पोषन चाह सूँ, मन में संका नांहि।
भाव भक्ति को यों कहै, निह करमा न मांहि ॥ ७१ ॥

काटी कूटी माछरी, छींकै धरी चहोरि।
कोय इक औगुन मन बसा, दह में परी बहोरि ॥ ७२ ॥

काया कजरी बन अहै, मन कुंजर महमन्त।
अंकुस ज्ञान रतन है, फेरै साधू सन्त ॥७३॥

काया देवल मन धजा, विषय लहर फहराय।
मन चलते देवल चले, ताका सरवस जाय ॥७४॥

काया कसो कमान ज्यौं, पाच तत्त्व कर बान।
मारो तो मन मिरगला, नहि तो मिथ्या जान ॥७५॥

बिना सीख का मिरग है, चहूँ दिस चरने जाय।
बांधि लाओ गुरु ज्ञान सूँ, राखो तत्व लगाय ॥७६॥

तीन लोक चोरी भई, सब का धन हरि लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥७७॥

चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हमैं न चीन्ह।
कहैं कबीर विचारि के, हम ही दीच्छा दीन्ह ॥७८॥

अपने अपने चोर को, सब कोय डारै मार।
मेरा चोर मुझ को मिलै, सरवस डारूँ वार ॥७९॥

तन तुरंग असवार मन, करम पियादा साथ ।
तृस्ना चली सिकार को, विषय वान लिये हाथ ।८०॥
जहा बाज बासा करै, पंछी रहै न और ।
जा घट प्रेम परगट भया, नहीं करम को ठौर ॥८१॥
कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन्न ।
कहै कबिर चेता नहीं, अजहूँ पहला दिन्न ॥८२॥
पंडित मूल बिनासिया, कह क्यों विग्रह कीज ।
ज्यों जल में प्रतिबिंब है, सकल राम जानीज ॥८३॥
सो मन सोनो सो विषय, त्रिभुवन पति कहु कम ।
कहै कबिर वैदा नरा, जल परा सकल रस ॥८४॥
सो सो सेरी हूँ तकौं, जो जो मूँद्री आव ।
नख सिख पाखरि मनहि के, करूँ कहाँ जो घाव ॥८५॥
अकथ कथा या मनहि की, कहै कबिर समुझाय ।
जो याको समझा परे, ताको काल न खाय ॥८६॥
समुद्र लहरि जो थोरिया, मन लहरै घनियाय ।
केती आय समाय है, केति जाय बिसराय ॥८७॥

८४. वैदानरा-हे अज्ञानी पुरुष।

कबीर साहब कहते है कि हे अज्ञानी नर, इस मन का म किस प्रकार वर्णन करू । यह मन तीन लोक का स्वामी और सोने के समान आकर्षक है । और जिस प्रकार जल में संपूर्ण रस विद्यमान रहते हैं, इसी प्रकार मन में भी सर्व विषय भरे रहते हैं ।

८५ सेरी—गली, उपाय । पाखरि—गिलाफ, झूल ।

यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥८८॥
चंचल मन निश्चल करै, फिर फिर नाम लगाय।
तन मन दोऊ वसि करै, ताका कछु नहिं जाय ॥८९॥
मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार।
सूधा ह्वै मारग चला, हरि आगे हम लार ॥९०॥
सुन नर मुनि सब को ठगै, मन हि लिया औतार।
जो कोई याते बचै, तीन लोक ते न्यार ॥९१॥
कुंभे बांधा जल रहै, जल बिनु कुंभ न होय।
ज्ञाने बांधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥९२॥
मन फाटे चित ऊचटे, नैना नाहिं समाय।
पलकों की टाटी दई, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥९३॥
मन मानिक जब ऊचटे, नेक नहीं ठहराय।
जो कंचन की भूमि है, हरियल धरै न पाय ॥९४॥
धरती फाटे मेघ मिलै, कपड़ा फाटे औरे।
तन फाटे को औषधि, मन फाटे नहिं ठौर ॥९५॥
मेरे मनमें परि गई, ऐसी एक दरार।
फाटा फटिक पषान ज्यूँ, मिलै न जो वार ॥९६॥
मन फाटे बायक बुरै, मिटै सगाई साक।
जैसे दूध तिवास को, उलटि हुआ जो आक ॥९७॥

---

९०. मकरंद—हाथी।

९७. बायक—वाक्य, वचन। तिवास—ठंडा, थूहर। थूहर का दूध फटने से आक के समान कड़ुवा हो जाता है।

चंदन भांगा गुन करै, जैसे चोळी पान।
दुइ जो भांगा ना मिलै, इक मोती इक मान ॥९८॥
मोती भांग्यो बेधतां, मन भांग्यो कुबोल।
बहुत सयाना पचि गया, परि गइ गांठी गोल ॥९९॥
बात बनाई जग ठग्यो, मन परमोधा नांहि।
कहैं कबिर मन लै गया, लख चौरासी मांहि ॥१००॥
मनुआ तू क्यौ बावरा, तेरी सुध क्यों खोय।
मौत आय सिर पै खड़ी, ढलने बेर न होय ॥१०१॥
मन अपना समुझाय ले, आया गाफिल होय।
बिन समुझे उठि जायगा, फोगट फेरा तोय ॥१०२॥
बाघ निछुटा मिरगला, तिहि जनि मारो कोय।
आपे ही मरि जायगा, डामा डूला होय ॥१०३॥
मनुवा तो पंखी भया, जहां तहां उडि जाय।
जहँ जैसी संगति करै, तहँ तैसा फल खाय ॥१०४॥
मन पंखी बिन पंखका, लख जोजन उडि जाय।
मन भावे ताको मिलै, घट में आन समाय ॥१०५॥
सात समुद्र की एक लहर, मन की लहर अनेक।
कोइ एक हरिजन ऊबरा, डूबी नाव अनेक ॥१०६॥

१०६. एक लहर—सब समुद्रों में एक ही प्रकार की लहर उठती है, परन्तु मन में तो अनेक प्रकार की तरंगें उठा करती हैं।

पहिले शाखि न जानिया, अब क्यूं आवे हाथ।
पढी गया राता धुरा, वैपारी के साथ ॥१०७॥
मन सब पर असवार है, [1]पैंडा करे अनंत।
मन ही पर असवार रहै, कोइक विरला संत ॥१०८॥
कबीर मन मिरतक भया, दुर्लभ भया सरीर।
पीछै लागा हरि फिरै, यूं कहि दास कबीर ॥१०९॥
मन चाले तो चलन दे, फिर फिर नाम लगाय।
मन चलते तन थंभ है, ताका कछू न जाय ॥११०॥
यह मन अटक्यो बावरो, राख्यो घटमें घेर।
मन ममता में गलि चलै, अंकुस दे दे फेर ॥१११॥
मन मारी मैंदा करूं, तन की काढूं खाल।
जिभ्या का टुकड़ा करूं, हरि बिन काढै ख्याल ॥११२॥
तनकूं मन मिलता नहीं, होता तन का भंग।
रहता काला चोर ज्यूं, चढै न दूजा रंग ॥११३॥
तन का वैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
तूं आपा को डारि दे, दया करे सब कोय ॥११४॥
मन राजा मन रंक है, मन कायर मन सूर।
सुन्य सिखर पर मन रहै, मस्तक पावै नूर ॥११५॥
तेरि जोतिमें मन धरा, मन धरि होहु पतंग।
आपा खोवे हरि मिले, तुझ लागा रहे रंग ॥११६॥

१. पा० पैंडे।

यह मन थाकी थिर भया, पग बिन चले न पंथ।
एकै अक्षर अलख का, थाके कोटि गिरंथ ॥११७॥
यह मन हरि चरनें चला, माया मोह सें छूट।
बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ ११८॥
मिरतक को धीजौं नहीं, मेरा मन बीहै।
बाजै बाव बिकार की, मूवा भी जीवै ॥११९॥
कबीर मन कूं मारि ले, सब आपा मिटि जाय।
पगला ह्वै पिउ पिउ करै, पीछै काल न खाय ॥१२०॥
मन मेवासी मारि करि, दुरजन डारैं दूर।
आन फिरै सत नाम की, नगर बसैं भर पूर ॥१२१॥
कबीर मन ताजी भया, लौं की करी लगाम।
सब्द गुरु का ताजना, पहुंचे संत सुजान ॥१२२॥

माया को अंग।

कबीर माया मोहिनी, माँगी मिलै न हाथ।
मना उतारी जूठ करु, लागी डोलै साथ ॥ १
कबीर माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट।
सब जग तो फंदै पडा, गया कबीरा काट ॥ २

---

१२१. आन-दुहाई। १२२. ताजी-घोडा। ताजना-कोडा।

कबीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग।
पूरी किनहु न भोगिया, इस का यही बिजोग ॥ ३ ॥
कबीर माया पापिनी, हरि सों करै हराम।
मुख कड़ियाली कुबुधि की, कहन न देई राम ॥ ४ ॥
कबीर माया बेसवा, दोनूं की इक जात।
आवत को आदर करैं, जात न बूझैं बात ॥ ५ ॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान।
भागे हू छूटै नहीं, भरि भरि मारै बान ॥ ६ ॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड।
सतगुरु की किरपा भई, नातर करती भांड ॥ ७ ॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि।
कोइ एक साधू ऊबरा, तोडी कुल की कानि ॥ ८ ॥
कबीर माया मोहिनी, भई अंधियारी लोय।
जो सोये सो मुसि गये, रहे वस्तु को रोय ॥ ९ ॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय।
दाँत उपारूं पापिनी, सन्तो नियरे जाय ॥ १० ॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार।
खावत खरचत मुक्ति भय, संचत नरक दुवार ॥ ११ ॥
कबीर माया रूप की, देखन ही का लाड।
जो वामें कौडी घटै, तौ हरि सोंहे हाड ॥ १२ ॥

[illegible] ९. अंधियारी लोय=चोर वत्ती। [illegible]

कबीर माया जात है, सुनो सब्द निज मोर।
सखियों के घर साधजन, सूमों के घर चोर ॥ १३ ॥
कबीर या संसार की, झूठी माया मोह।
जिहि घर जिता बधावना, तिहि घर तेता दोह ॥ १४ ॥
कबीर माया यों कहै, तू मति देई पीठि।
और हमारे वसि पड़ा, रहा कबीरा रूठि ॥ १५ ॥
माया आगे जीव सब, ठाढ़े रहे कर जोरि।
जिन सिरजे जल बुंद सों, तासों बैठा तोरि ॥ १६ ॥
माया करक कर्दिम है, या भौसागर माँहि।
जंबुक रूपी जीव है, खैंचत ही मरि जाँहि ॥ १७ ॥
माया झोला मारिया, नाभि न बैठे साँस।
निवरा तो संमै गला, राम कहन की आस ॥ १८ ॥
माया सेती मति मिलो, जो सोवरिया देहि।
नारद से मुनिवर गले, क्या हि भरोसा तेहि ॥ १९ ॥
माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमि माँहि परन्त।
कोइ एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू सन्त ॥ २० ॥
माया दोय प्रकार की, जो कोय जानै खाय।
एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय ॥ २१ ॥

१३. सखी दाता। १४ -बधावना-उत्सव। दोह-दुःख, शाक।
१७ करक अस्थि पंजर। कर्दिम सड़ासे। १८ झोला झपाटा।
१९ सोवरिया देह चाहे सोने के समान शरीर क्यों न हो।

माया मेरे राम की, मोदी सब संसार ।
जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन हार ॥ २२ ॥
माया संचे संग्रहै, वह दिन जानै नाँहि ।
सहस बरस की सब करै, मरै मूहूरत माँहि ॥ २३ ॥
माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय ।
भगता क पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥ २४ ॥
माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
इन माया सब खाइया, माया कोय न खाय ॥२५॥
माया दासी साधु की, ऊभी देइ असीस ।
बिलसि और लातै छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस॥२६॥
माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस ।
जा ठगने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥२७॥
माया मुई न मन मुआ, मरि मरि गया सरीर ।
आसा तृष्ना ना मुई, यों कथि कहै कबीर ॥२८॥
माया मरि मन मारिया, राख्या अमर सरीर ।
आसा तृस्ना मारि के, थिर ह्वै रहैं कबीर ॥२९॥
माया काल की खानि है, धरै त्रिगुन बिपरीत ।
जहाँ जाय तहाँ सुख नहीं, या माया की रीत ॥३०॥
माया तरुवर त्रिविधि का, सोक दुःख संताप ।
सीतलता सुपनै नहीं, फल फीका तन ताप ॥३१॥

६४. भगता—भगनेवाला और भक्त ।

जग हटवारा स्वाद ठग, माया वेस्या लाय।
राम नाम गाढा गहो, जनि जहु जनम गँवाय ॥३२॥
मैं जानूँ हरिसूँ मिलूँ, मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अन्तरा, माया बडी पिसाच ॥३३॥
मोटी माया सब तजै, झीनी तजी न जाय।
पीर पैगंबर औलिया, झीनी सब को खाय ॥३४॥
झीनी माया जिन तजो, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट सें, सब दुख गये हिराय ॥३५॥
खान खर्च बहु अन्तरा, मन में देखु बिचार।
एक खवावै साधु को, एक मिलावै छार ॥३६॥
आंधी आइ प्रेम की, ढही भरम की भींत।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम सों प्रीत ॥३७॥
मीठा सब कोय खात है, बिष है लागै धाय।
नीम न कोई पीवसी, सबै रोग मिटि जाय ॥३८॥
राम हि थोरा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, माया के आधीन ॥३९॥
सांकर हू ते सबल है, माया या संसार।
अपने बल छूटै नहीं, छुटवै सिरजनहार ॥४०॥
या माया के कारने, हरि सों बैठा तोरि।
माया करक कदीम है, केता गया चंचोरि ॥४१॥

४०. सांकर—लोहे की जंजीर।

पूत पियारा बाप को, गोहन लागा धाय।
लोभ मिठाई हाथ दे, आपन गया भुलाय ॥४२॥
दोन्हीं खाँड पट्ठकि कर, मन में रोस उपाय।
रोवत रोवत मिलि गया, पिता पियारे जाय ॥४३॥
मोती उपजे सीप में, सीप समुन्दर होय।
रंचक सँचर रहि गया, ना कछु हुआ न होय ॥४४॥
भूले थे संसार में, माया के संग आय।
सतगुरु राह बताइया, फेरि मिले तिहि जाय ॥४५॥
हसा तूं तो सबल है, हल की अपनी चाल।
रंग कुरंगै रंगिया, किया और लगवार ॥४६॥
रंग तो कुरँग हुआ, अंग न खाये बान।
केते मारे जाहिंगे, इस बाजरी कमान ॥४७॥
जिन को सांई रँग दिया, कबहु न होय कुरँग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥४८॥
सब रंग पानी ते भया, सब रँग पानी सोय।
जा रँग ते पानी भया, सो रँग कैसो होय ॥४९॥
सब रग पानी ने भया, सब रँग पानी होय।
जा रंग ते पानी भया, सच सब्द है सोय ॥५०॥
सो पापन को मूल है, एक रुपैया रोक।
साधूजन संग्रह करैं, हारैं हरि सों थोक ॥५१॥

४२. गोहन—साथ।

साधू ऐसा चाहिये, आई देई चलाय ।
दोम न लागै तासु को, सिर की टरै बलाय ॥५२॥
सन्तों खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय ।
कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलि है आय ॥५३॥
सुकृत लागै साधु की, वादि विमुख की जाय।
कै तो तल गाड़ी रहै, कै कोय औरै खाय ॥५४॥
या मारा जग मरमिया, सब को लगी उपाध ।
येहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥५५॥
कबीर माया सांपिनी, जनता ही को खाय ।
ऐसा मिला न गारुडी, पकडि पिछारे बांय ॥५६॥
माया का सुख चार दिन, कहँ तू गहे गमार ।
सपने पायो राज धन, जात न लागे वार ॥५७॥
फरँक पड़ा मैदानमें, कुकर मिले लख कोट ।
दावा कर कर लड़ि मुए, अंत चले सब छोड ॥५८॥
माया माथे सींगडाँ, लंबे नौ नौ हात ।
आगे मारे सींगडाँ, पाछे मारे लात ॥५९॥
माया ऐसी संखनी, सामी मारे सोय ।
आपन तो रीते रहे, दे औरन को बोध ॥६०॥
गुरु को चेला बीष दे, जो गांठी होय दाम ।
पूत पिता को मारसी ये माया के काम ॥६१॥

५६._जनता—पुत्रों को । बांय—बाज नहे ।

ऊंची डाली प्रेम की, हरिजन बैठा खाय।
नीचे बैठी बाघिनी, गीर पडे तिहि खाय ॥६२॥

माया दासी संत की, साकट की सिर ताज।
साकुट की सिर मानिनी, संतो सहेलि लाज ॥६३॥

एक हरी इक मानिनी, एक भगत इक दास।
देखो माया क्या किया, भिन भिन किया प्रकास ॥६४॥

माया माया सब कहै, माया लखे न कोय।
जो मनसे ना उतरे, माया कहिये सोय ॥ ६५ ॥

माया छोरन सब कहै, माया छोरि न जाय।
छोरन की जो बात करु, बहुत तमाचा खाय ॥ ६६ ॥

मन मते माया तजी, यूं करि निकस्र बहार।
लागी रहि जानी नहीं, भटकी भयो खुवार ॥ ६७ ॥

माया सम नहि मोहिनी, मन समान नहि चोर।
हरिजन सम नहि पारखी, कोइ न दीसे ओर ॥ ६८ ॥

छाडै बिन छूटै नहीं, छोडनहारा राम।
जीव जतन बहुतहि करे, सरे न एकौ काम ॥ ६९ ॥

कबीर माया डाकिनी, खाया सब संसार।
खाइ न सकै कबीर को, जाके नाम अधार ॥ ७० ॥

माया बडी हि डाकिनी, करे काल की चोट।
कोइ एक हरिजन उबरा, पारब्रह्म की ओट ॥ ७१ ॥

माया चार प्रकार की, इक बिलसे इक खाय।
इक मिलावे नाम को, एक नरक लै जाय ॥७२॥
असुरी माया आप ही गाढ़े परे न छूट।
संत की सो परमार्थी, संत न घाले मूठ ॥७३॥
माया जुगवे कौन गुन, अंत न आवे काज।
सो सतनाम जोगावहु, मय परमारथ साज ॥७४॥
माया संखा पदुम लौं, भक्ति विहून जो होय।
जम लै ग्रासै सो तेहि, नरक पड़े पुनि सोय ॥७५॥
मन ते माया ऊपजै, माया तिरगुन रूप।
पांच तत्त्व के मेल में, बांधे सकल सरूप ॥७६॥
रंक जीव जोइ सोई, होय सोइ धनवंत।
धनवंता जो हरि भजे, हरपि मिले भगवंत ॥७७॥
रंक जु धन को ना चहै, चाहै भेष मतीत।
गुरु भक्ता मोहि भावहीं, कहै कबीर अतीत ॥७८॥

कनक कामिनी को अंग।

चलो चलो सब को कहै, पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लम्बी तरवार।
चाले थे हरि मिलनको, बीच हि लीन्हा मार ॥२॥

७४. जोगावहु-रक्षा करो।

एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिन की झाल।
देखत ही ते परजरे, परसि करे पैमाल ॥३॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फळ लिया उपाय।
देखत ही ते बिष चढ़े, चाखत ही मरि जाय ॥४॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु बिच पाड़ै अन्तरा, जम देसी मुख धूर ॥५॥
जो या घाटी लेवहीं, सो जन उतरै पार।
या घाटी तें आखड़े, ताको वार न पार ॥६॥
अबिनासी बिच धार तिन, कुल कंचन अरु नारि।
जो कोइ इन ते बचि चलै, सोई उतरै पार ॥७॥
नारी की झाँई पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, नित नारीके संग ॥८॥
नारि पराई आपनी, भोगी नरकै जाय।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥९॥
जहर पराया आपना, खायेसें मरि जाय।
अपनी इच्छा ना करै, कहैं कबिर समुझाय ॥१०॥
कूप पराया आपना, गिरे डूबि सो जाय।
ऐसा भेद बिचार के, तूं मति गोता खाय ॥११॥
छुरी पराई आपनी, मारैं दर्द जु होय।
बहुबिध कहूँ पुकारि के, कर छुवो मति कोय ॥१२॥

६ आखड़े-गिरना, ठोकर खाना।

नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखत ही ते विष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१३॥
नारि नसावे तीन गुन जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें, पठि न सकही कोय ॥१४॥
नारी नदी अथाह जल, बूंडि मुवा संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा संग उतरूं पार ॥१५॥
नारी कहूँ कि नाहरी, नख सिख सें यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥१६॥
नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट।
कोइ कोइ साधु ऊबरै, ले सतगुरु की ओट ॥१७॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मति राचे जाय।
मजारी ज्यों बोलि के, काढ़ि करेजा खाय॥ १८॥
नारी नदिया सारखी, वहै अपरबल पूर।
साहिब सों न्यारा रहै, अन्त परै मुख धूर॥ १९॥
नारी नदिया सारखी, और जु मगदै काल।
सब कालनते बाचि है, नारी जम का जाल॥ २०॥
नारि पुरुष की इस्तरी, पुरुष नारि का पूत।
याही ज्ञान विचारि के, छाडि चला अवधूत॥ २१॥
नारी नजरि न जोरिये, अंस हि खिस ह्वै जाय।
जाके चित नारी बसै, चाग्नि अस ले जाय॥ २२॥

१९. सारखी—समान। २२. अस—वीर्य। खिस—स्खलित।

नारी कुंडी नरक की, बिरला थाभै बाग।
कोइ साधू जन ऊबरा, सब जग मूआ लाग ॥ २३ ॥
नारी केरे राचने, औगुन है गुन नाँहि।
खार समुन्दर माछली, केती बहि बहि जाँहि ॥ २४ ॥
नारि पुरुष सब ही सुनो, यह सतगुरु की साख।
विष फल फलें अनेक हैं, मति कोइ देखो चाखि ॥२५॥
जिन खाया सोई मुआ, गन गंध्रब बड भूप।
सतगुरु कहै कबीर सो, जगमें जुगति अनूप ॥ २६ ॥
नारी सेती नेह, बुधि विवेक सब ही हरै।
कहा गँवावै देह, कारज कोई ना सरै ॥ २७ ॥
कामिनी काली नागिनी, तीनों लोक मँझार।
नाम सनेही ऊबरे, विषयी खाये झार ॥ २८ ॥
कामिनी सुंदर सर्पिनी, जो छेडे तिहि खाय।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय॥२९॥
इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय।
कबहूँ सरपट नीकसे, उपज नाग बलाय॥ ३० ॥
नैनों काजर देय के, गाढे बांधे केस।
हाथों मेंहदी लाय के, बाघिनि खाया देस ॥ ३१
परनारी पैनी छुरी, मति कोइ करो प्रसंग।
रावन के दस सिर गये, परनारी के संग ॥ ३२ ॥

२३. बाग-लगाम। ३०. सरपट–दौडकर। बलाय—भयकर, भारी।

परनारी पैनी छुरी, विरला बाँचै कोय ।
कबहूँ छेडि न देखिये, हँसि हँसि खावै रोय ॥ ३३ ॥
परनारी पैनी छुरी, विरला बाचै कोय ।
ना वह पेट सँचारिये, जो सोना की होय ॥३४॥
परनारी के राचने, सीधा नरकै जाय ।
तिन को जम छाँडै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥३५॥
परनारी का राचना, ज्यूँ लहसुन की खान ।
कोने बैठे खाइये, परगट होय निदान ॥३६॥
परनारी राता रहै, चोरी बैठत खाय ।
दिवस च्यारि सरसा रहै, अन्त समूला जाय ॥३७॥
परनारी पर सुन्दरी, जैसे सूली साल ।
नित कलेस भुगते सही, तहू न छोडै खाल ॥३८॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल ।
बैरी मारै दाव सें, यह मारै हँसि खेल ॥३९॥
देखत ही दह में परै, कनक कामिनी भाय ।
कहै कबिर कौतुक भया, मन को रहा समाय ॥४०॥
जो कबहूँ के देखिये, बीर बहिन के भाय ।
आठ पहर अलगा रहै, ताको काल न खाय ॥४१॥

३६ खान–खाना । निदान–अन्त में ।

४१ स्त्री को पापदृष्टि से न देखे, अधिक आयुवाली को माता और समवयस्क को बहिन के भाव से देखना चाहिये । जो इस प्रकार पवित्र व्यवहार से रहता है वह काल के चक्र से बच सकता है ।

सरव सोने की सुन्दरी, आवै वास सुवास।
जो जननी है आपनी, तऊ न बैठे पास ॥४२॥
गाय रोय हँसि खेलि के, हरत सबन के प्रान।
कहै कबिर या घात को, समझै संत सुजान ॥४३॥
गाय भैंस घोड़ो गधी, नारि नाम है तास।
जा मँदिर में ये बसै, तहाँ न कीजै वास ॥४४॥
जग में भक्त कहावई, चुक्की चून न देय।
सिष जोरू का है रहा, नाम गुरु का लेय ॥४५॥
सेवक अपना करि लिया, आज्ञा मेटै नाँहि।
भग मंतर दे गुरु भई, सिष है सबै कमाँहि ॥४६॥
फाटे कानों बाघिनी, तीन लोक को खाय।
जीवत खाय कलेजरा, मुये नरक ले जाय ॥४७॥
कबिर नारि की प्रीति से, केते गये गडन्त।
केते औरो जाहिंगे, नरक हसन्त हसन्त ॥४८॥
जोरू जूठनि जगत की, भले बुरे के बीच।
उत्तम सो अलगा रहै, मिलि खेलै सो नीच ॥४९॥
सुन्दरी ते सूली भली, बिरला बाँचे कोय।
लोहलुहालै अगिनिमें, जरि बरि कुइला होय ॥५०॥
रज बीरज की कोठरी, तापर साज्यो रूप।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥५१॥

जहाँ जराई सुन्दरी, तूँ जनि जाय कबीर।
उडि के भसम जो लागसी, सूना होय सरीर ॥५२॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस।
जाका डसा न फिर जियै, मरि है बिसवा बीस ॥५३॥
जगमें डोडी कामिनी, पीवै सब संसार।
सोफी ह्वै करि जो पिये, ताहि उतारूँ पार ॥५४॥
दीपक झोला पवन का, नरका झोला नारि।
साधू झोला सब्दका, बोलै नांहि बिचार ॥५५॥
केता बहाया बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तूं मति गोता खाय ॥५६॥
कपास बिनूठा कापडा, कदे सुरंग न होय।
कबीर त्यागो ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥५७॥
नारी काली ऊजली, नेक बिमासी जोय।
सब ही डारे फंदमें, नीच लिये सब कोय ॥ ५८ ॥
नारी मदन तलावडी, भव सागर की पाल।
नर मच्छा के कारने, जीवत मांडो जाल ॥ ५९ ॥

५३. इस साखी में सुन्दरी की बीस अंगुलियों को सर्प का फन बताया गया है, क्यों कि कामीजन उनको देखकर मोहित हो जाते हैं।

५४ डोडी—पोस्ते का छूतरा। सोफी—हल्का नशा करनेवाला। भाव यह है कि जो गृहस्थी अपनी स्त्री के साथ अनासक्ति व्यवहार करता है, वह क्रमशः मुक्ति मार्ग पर जाता है।

५७. कपास बिनूठा—खराब कपास से बना हुआ।

नारी नरक न जानिये, सब संतन की खान।
जामें हरिजन ऊपजे, सोइ रतन की खान ॥ ६० ॥
कबीर मन मिरतक भया, इंद्री अपने हाथ।
तोभी कबहू न कीजिये, कनक कामिनी साथ ॥ ६१ ॥
मांस मांस सब एक है, क्या हरनी क्या गाय।
नारि नारि सब एक है, क्या मेहरी क्या माय ॥ ६२ ॥
त्रिया कृतघ्नी पापिनी, तासों प्रीति न जोड़।
पड़ी चहिया आलहे, लागे मोटी खोड़ ॥ ६३ ॥
सात दीप नव खंड में, सबमें फगुवा लीन।
दाढ़ी कहै कबीर सों, तुमने कछू न दीन ॥ ६४ ॥

काल को अंग।

काल जीव को ग्रासई, बहुत कह्यो समुझाय।
कहैं कबिर मैं क्या करूँ, कोई नहि पतियाय ॥ १ ॥
काल हमारे संग है, कस जीवन की आस।
दस दिन नाम सँभार ले, जब लग पिंजर सांस ॥ २ ॥
काल चिचाना है खड़ा, जाग पियारे मीत।
नाम सनेही बाहिरा, क्यों सोवै निहचींत ॥ ३ ॥

३. चिचाना—शचान, बाज।

झूठा सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कछु मूठी कछु गोद ॥ ४ ॥
आज काल पल छिनक में, मारग मेला दिस्त ।
काल चिचाना नर चिड़ा, औजड़ औ अवाचिस्त ॥ ५ ॥
सब जग सूता निंद भरि, मोहि न आवै निंद ।
काल खड़ा है बारनै, (ज्यौं)तोरन आया विंद ॥६॥
टालै टूलै दिन गयो, ब्याज बढ़ंता जाय ।
ना हरि भजा न खत फटा, काल पहूँचा आय ॥ ७ ॥
कबीर टुग टुग चोपतां, पल पल गई बिहाय ।
जिव जंजाले पड़ि रहा, दिया दमामा आय ॥ ८ ॥
मैं अकेल वह दो जना, सेरी नाहीं कोय ।
जो जम आगे ऊबरो, तो जरा बैरि होय ॥ ९ ॥
जरा आय जोरा किया, पिय अपना पहिचान ।
अन्त कछू पल्ले पड़े, ऊठत रे खलिहान ॥१०॥
जरा आय जोरा किया, नैनन दीन्ही पीठ ।
आँखी ऊपरि आंगुली, बीष भरै पछ नीठ ॥११॥
जोबन सिकदारी तजी, चला निसान बजाय ।
सिर पर सेत सिरायचा, दिया बुढ़ापै आय ॥१२॥

५. चिड़ा–चिड़िया। ६. बारनै–द्वार पर। बिंद—दुल्हा, वर।
८. टुगर चोपना—टुकुर २ देखते।
११. बीप—विषा। आखों पर अंगुलियों की छाया करने से एक विषा तक मुश्किल से देखने में आता है।
१२. सिकदारी–सरदारी। सेत सिरायचा— सफेद पगड़ी।

कान लगी सुनहा कहै, काले मानी हार ।
राज बिराजी होत है, सकै तो नाम सम्हार ॥१३॥
राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहूँची आय ।
मंदर लागो द्वार सों, अब कछु कही न जाय ॥१४॥
बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये और ।
बिगरा काज सँभारि ले, करि छूटन की ठौर ॥१५॥
बिरिया बीती बल घटा, औरौ बुरा कपाय ।
हरिजन छांडा हाथ तें, दिन नेरा ही आय ॥१६॥
जरा कुत्ता जोबन ससा, काल अहेरी नित्त ।
दो बैरी बिच झोंपड़ा, कुसल कहाँसों मित्त ॥१७॥
कुसल कुसल जो पूछता, जग में रहा न कोय ।
जरा मुई ना भय मुआ, कुसल कहां ते होय ॥१८॥
घड़ि जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय ।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहां ते होय ॥१९॥
कै कुसले अनजान के, अथवा नाम जपन्त ।
जनम मरन होवा नहीं, तो बूझो कुसलन्त ॥२०॥
कुसल जो पूछो असल की, आसा लागी होय ।
नाम बिहूना जग मुआ, कुसल कहां ते होय ॥२१॥
माली आवत देखि के, कलियाँ करें पुकार ।
फूली फूली चुनि लईं, काल हमारी बार ॥२२॥

बढ़ई आवत पेखि के, तरुवर रुदन कराय ।
मैं अपग संसै नहीं, पच्छी बसते आय ॥२३॥

फागुन आवत देखि के, बन रोना मन माँहि ।
ऊँची डारी पात था, पियरा ह्वै ह्वै जाँहि ॥२४॥

पात जो तरुवर सो कहै, बिलंब न मानै मोर ।
आय रितु जो बसंत की, जहँ जाओ तहँ तोर ॥२५॥

तरुवर पात सों यौं कहै, सुनो पात इक बात ।
या घर याही रीति है, इक आवत इक जात ॥२६॥

पात झरन्ता यौं कहै, सुन तरुवर बनराय ।
अब के बिछुड़े ना मिले, दूर पड़ेंगे जाय ॥२७॥

कहै पात वा झाड़ सो, कहा पड़ी अब तोहि ।
ज्यौं वा तरुवर ही तजो, चलो जान दे मोहि ॥२८॥

पीपल पात झरन्तिया, हँसी आय को घेरि ।
यॉहीं बसिया होयगा, अपनी अपनी बेरि ॥२९॥

मेरा बीर लुहारिया, तू मति जारे मोहि ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारोंगी तोहि ॥३०॥

जारनहारा भी मुआ, मुआ जलावनहार ।
है है करते भी मुये, कासों करूँ पुकार ॥३१॥

जो ऊगै सो आथमै, फूलै सो कुम्हिलाय ।
जो चूनै सो ढहि पड़ै, जामै सो मरि जाय ॥३२॥

निश्चय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय ।
कहै कबीर मैं का कहूं, देखत ना पतियाय ॥३३॥

कबीर जीवन कुछ नहीं, खिन खारा खिन मीठ ।
कालिह अलहजा मारिया, आज मसाना दीठ ॥३४॥

कबीर मंदिर आपने, नित उठि करता आल ।
मरहट देखी डरपता, चौडै दीया जाल ॥३५॥

कबीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है रात ।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगन्ता परभात ॥३६॥

कबीर गाफिल क्यौं फिरै, क्यौं सोता घन घोर ।
तेरे सिराने जम खड़ा, ज्यूं अंधियारे चोर ॥३७॥

कबीर हरि सौं हेत कर, कोरै चित न लाय ।
बांध्यो बारि खटीक के, ता पसु केतिक आय ॥३८॥

कबीर सब सुख राम है, और हि दुख की रासि
सुर नर मुनि अरु असुर सुर, पड़े काल की फांसि ॥३९॥

धंमन धमती रहि गई, बूझि गया अंगार ।
अहरन का ठमका रहा, जब उठि चला लुहार ॥४०॥

पंथी ऊभा पंथ सिर, बगुचा बांधा पूंठ ।
मरना मुंह आगे खड़ा, जीवन का सब झूठ ॥४१॥

३४. अलहजा=आलोजा, चोर । ३८. बारि=दरवाजे । खटीक=कसाई ।
४०. धमन=धूमनी । ४१. बगुचा-गठरी ।

यह जीव आया दूर ते, जाना है बहु दूर।
बिच के वासै बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥४२॥
काचो काया मन अथिर, थिर थिर करम करन्त।
ज्यौं ज्यौं नर निधडक फिरै, त्यौं त्यौं काल हसन्त ॥४३॥
हम जाने थे खाहिंगे, बहुत जिमीं बहु माल।
ज्यौं का त्यौं ही रहि गया, पकडि ले गया काल ॥४४॥
चहुँ दिस पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार।
खिरकि खिरकि पाहरू, गज बँधा दरबार ॥४५॥
चहुँदिस ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये हथियार।
सब ही यह तन देखतौं, काल ले गया मार ॥४६॥
आस पास जोधा खड़े, सबै बजावें गाल।
मंझ महल तें ले चला, ऐसा परबल काल ॥४७॥
धरती करते एक पग, करते समुँद्र फाल।
हाथों परबत तोलते, तेभी खाये काल ॥४८॥
हाथों परबत फाडते, समुदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, का कोय गरब कराय ॥४९॥
ताजी छूटा सहरते, कसबै पड़ी पुकार।
दरवाजा जडा हि रहा, निकस गया असवार ॥५०॥
बेटा जाये क्या हुआ, कहा बजावे थाल।
आवन जावन ह्वै रहा, ज्यौं कीडी का नाल ॥५१॥

४८. फाल=फलाग। ५१. नाल=कतार।

जाया जाया सब कहै, आया कहैं न कोय।
जाया नाम जनम का, रहन कहांते होय ॥५२॥
बालपना भोले गया, और जुवा महमंत।
वृद्धपने आलस भयो, चला जरन्ते अन्त ॥५३॥
संसै काळ सरीर में, विषम काल है दूर।
जाको कोइ जानै नहीं, जारि करै सब धूर ॥५४॥
जारि बारि मिस्सी करे, मिस्सी करि है छार।
कहैं कबिर कोइला करै, फिर दे दै औतार ॥५५॥
ऐसे साँच न मानई, तिळ ही देखो जोय।
जारि बारि कोइला करे, जमता देखा सोय ॥५६॥
संसै खाया सकळ जग, संसा किनहु न खद्ध।
जो बेधा गुरु अच्छरा, संसा चुनि चुनि खद्ध ॥५७॥
संसै काल सरीर में, जारि करै सब धूर।
काळ से बाचे दास जन, जिनपै बाल हजूर ॥५८॥
घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा लेय।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देय ॥५९॥
जिनके नाम निसान है, तिन अटकावै कौन।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवा गौन ॥६०॥
घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान।
छाप बिना सतनाम के, मारत रहा निदान ॥६१॥

---

५३. जुवा—जवानी। महमंत—मस्ता। ५९. घाट जगाती—महसूल लेनेवाला, चुंगी उगाहनेवाला।

गुरु जहाज हम पावना, गुरुमुख पारि पड़ै।
गुरु जहाज जानै बिना, रोवै घाट खड़ै ॥६२॥
खुलि खेलो संसार में, बांधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट न होय ॥६३॥
जम्मन जाय पुकारिया, डंडा दीया डार।
संत मवासी ह्वै रहा, फासि न पड़े हमार ॥६४॥
जाता है जिस जान दे, तेरी दसी न जाय।
केवटिया की नाव ज्यौं, घना चढ़ेगा आय ॥६५॥
चाकी चली गुपाल की, सब जग पीसा झार।
रूड़ा सब्द कबीर का, डारा पाट [1]उघार ॥६६॥
चलती चाकी देखिके, दिया कबीरा रोय।
दो पाटन बिच आयके, साबुत [2]गया न कोय ॥६७॥
आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय।
कीला सों लागा रहै, ताको बिघन न होय ॥६८॥
सब जग डरपै काल सों, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
सुर नर मुनि औ लोक सब, सात रसातल सेस ॥६९॥
चंद सूर धर पवन लौं, खंड ब्रहंड प्रवेस।
जम डरै काल कठोर सों, जै जै तू आदेस ॥७०॥

६४. मवासी-ऊंचा। ६५ दसी-डसी, फन्दा। ६६. रूडा—बड़ा कारर।

१. पा० उघार। २. पा० बचा।

मूसा डरपे काल सूं, कठिन काल का जोर।
स्वर्ग भूमि पातालमें, जहां जाव तहँ घोर ॥७१॥
फागुन आवत देखि के, मन झूरे वनराय।
जिन डाली हम केलि किय, सोही न्यारे जाय ॥७२॥
पान झरंता देखि के, हसती कूपलियां।
हम चाले तुम चालियो, धीरी बापलियां ॥७३॥
काल पाय जग ऊपजो, काल पाय सब जाय।
काल पाय सब बिनसि है, काल काल कहँ खाय ॥७४॥
काल काल सब कोइ कहे, काल न चीन्हे कोय।
जेती मन की कल्पना, काल कहावे सोय ॥७५॥
काल फिरै सिर ऊपरे, हाथों धरी कमान।
कहैं कबिर गहु नाम को, छोड़ सकल अभिमान ॥७६॥
जाय झरोखे सोवता, फूलन सेज बिछाय।
सो अब कहुं दीसै नहीं, छिनमें गयो बिलाय ॥७७॥
अधम कला सब काल की, देखहु उलटी रीत।
करै प्रतीति दृढ चोर सों, साहब से नहि प्रीत ॥७८॥
कबीर पगरा दूर है, आय पहूची सांझ।
जन जन को मन राखतां, वेस्या रहि गई बांझ ॥७९॥

---

७१ मूसा-पैगंबर। घोर-कबर। ७९ पगरा-रास्ता।

समरथ कौ अंग।

साहिब सों सब होत है, बंदे सें कुछ नाँहि।
राई सें परबत करै, परबत राई माँहि ॥ १ ॥

साहिब सम समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥ २ ॥

बहन बहन्ता थल करै, थल कर बहन बहोय।
साहिब हाथ बडाइया, जस भावै तस होय ॥ ३ ॥

बहन बहन्ता थिर करै, थिरता करै बहैन।
साहिब हाथ बडाइया, जिस भावै तिस दैन ॥ ४ ॥

ना कुछु किया न करि सका, (नहि)करने जोग शरीर।
जो कुछु किया साहिब किया, तातें भया कबीर ॥ ५ ॥

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाँहि।
कहूँ कहीं जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माँहि ॥ ६ ॥

कीया कछू न होत है, अन कीया ही होय।
कीया जो कछु होत तो, करता औरै कोय ॥ ७ ॥

ना कछु किया न करि सका, ना कछु करने जोग।
मैं मेरी जो ठानि कै, दूजी थापै लोग ॥ ८ ॥

---

३. बहनबहंता—बहाव से बहनेवाली नदी आदिक।

इत कूवा उत बावडी, इत उत थाह अथाह।
दहू दिसा फनि फन कढ़े, समरथ पार लगाह ॥९॥
घट समुद्र लखि ना परै, ऊठै लहरि अपार।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन लगावै पार ॥१०॥
धन धन साँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत।
सकल भवन पति साँइया, है करि रहे अतीत ॥११॥
साँई मै तुझ बाहरा, कौडी हू नहि पाऊं।
जो सिर ऊपर तुम धनी, महँगे मोल बिकाऊँ ॥१२॥
साँई मेरा बानिया, सहज करै ब्यौपार।
बिन डांडी बिन पालडे, तोलै सब संसार ॥१३॥
साँई केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाँहि।
जो दिल खोजूं आपना, सब औगुन मुझ माँहि ॥१४॥
तेरे बिन जोर जुलम है, मेरा होय अकाज।
बिरद तुम्हारे नाम की, सरन पड़े की लाज ॥१५॥
बाटरिया दूभर भई, मति कोय कायर होय।
जिन यह भार [१]उठाइया, निरवाहेगा सोय ॥१६॥
हाथी अटक्यो कीचमें, काढै को समरथ्थ।
की वल निकले आपने, की साई पसारे हथ्थ ॥१७॥
जिस नहीं कोय तिस हि तू, जिस तू तिस सब होय।
दरगह तेरी साँइया, मेटि न सकै कोय ॥१८॥

९ फन-सर्प। १६. बाटरिया-रास्ता। दूभर=कठिन।
१. पा० लदाइया।

जिसके कोई संग नहीं, तिसका तू सब होय।
सब पर तेरा हुकम है, सकै नाहि कोय ॥१९॥

मेरा किया न कछु भया, तेरा कीया होय।
तू करता सब कुछ करै, करता और न कोय ॥२०॥

औगुन हारा गुन नहीं, मनका बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सांइया, ताहि लगावे ठौर ॥२१॥

तुम तो समरथ साइया, गहि करि पकड़ो बाँह।
धूरहि ले पहुंचाइयो, मत छोड़ो मग माँहि ॥२२॥

बालक रूपी सांइया, खेलै सब घट माँहि।
जो चाहै सो करत है, भय काहूका नाँहि ॥२३॥

एक खड़ा ही ना लहै, एक ऊभा विललाय।
समरथ मेरा साइया, सूता देय जगाय ॥२४॥

समरथ धोरी कंध दे, रथ को दे पहुँचाय।
मारग माहि न छांडिये, पिय निज विरद लजाय॥२५॥

---

२४. ना लहै-नहीं पाता है। ऊभा-खड़ा। विललाय-विलाप करता है।

जिस पर मालिक की दया नहीं होती वह सदैव तत्पर रहने पर भी स्वाभिष्ट को नहीं पाता और कोई तो उसकी प्रतीक्षा मे करुण-क्रंदन भी करने लगता है। और जिस पर समर्थ की कृपा होती है उसको वह वस्तु अचानक मिल जाती है।

२५ धोरी-धुरीण, आगे चलनेवाला, बैल।

वारी हरिके नाम पर, कीया राई लौन
जिसे चलावे पंथ तूं, तिसे भुलावे कौन ॥२६॥

मुझमें औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं विसरूं तुज्झ को, तू मति बिसरै मुज्झ ॥२७॥

साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग मिलि जांहि।
हम से तुमको बहुत हैं, तुम सम हम को नांहि ॥२८॥

तुम्हें विसारे क्या बने, किसके सरने जाय।
सिव विरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहि समाय ॥२९॥

मेरा मन जो तुझसें, तेरा मन कहीं और।
कहै कबिर कैसे बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥३०॥

जो मैं भूल विगाडिया, ना कर मैला चित्त।
साहिब गरुवा चाहिये, नफर बिगाड़े नित्त ॥३१॥

कबीर भूल विगाडिया, करि करि मैला चित्त।
नफर तो दीन अधीन है, साहिब राखै हित्त ॥३२॥

मुझमें गुन एको नहीं, सुनो सन्त सिर मौर।
तेरे नाम प्रतापसें, पाऊँ आदर ठौर ॥३३॥

अन्तरजामी एक तूं, आतम के आधार।
जो तुम छांडो हाथ तें, कौन उतारे पार ॥३४॥

३१. नफर-गुलाम, शिष्य।

भौसागर भारी भया, गहिरा अगम अथाह।
तुम दयाल दाया करो, तब पाऊं कुछ थाह ॥३५॥
सतगुरु बड़े दयाल हैं, सन्तन के आधार।
भौसागर अथाह सों, खेइ उतारे पार ॥३६॥
साहिब तुम हि दयाल हो, तुम लग मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥३७॥
मेरा मन जो तोहि सूं, यौं जो तेरा होय।
अहरन ताता लोह ज्यौं, संधि लखै नहि कोय ॥३८॥
कबीर करत है विनती, भौसागर के साईं।
बन्दे जोरा होत है, जम को बरजु गुसाईं ॥३९॥
धर्मराय दरबार मेँ, दई कबीर तलाक।
भूले चूके हंस को, मति कोइ रोको चाक ॥४०॥
बोलैं पुरुष कबीर सें, धर्मराय कर जोर।
तुम्हरे हंस न चंपि हो, दुहाइ लाख करोर ॥४१॥
जो जाकी शरने गहै, ताको ताकी लाज।
उलटि मीन जल चढ़त है, बह्यो जात गजराज ॥४२॥
और पुरुष सब कूप है, तूं है सिंधु समान।
मोहि टेक तुव नाम की, सुनिये कृपा निधान ॥४३॥
चिड़िया प्यासी समुँद गई, नीर न घटिया जाय।
ऐसा बासन ना बना, जामें समुँद समाय ॥४४॥

अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास कबीरा यूं कहै, सब के दाता राम ॥४५॥
यदपि हम कायर कुटिल, खेर चाकरी चोर।
तदपी कृपा न छांडिये, चितै आपनी ओर ॥४६॥
जाको राखे सांइयां, मारि न सके कोय।
बाल न बांका करि सके, जो जग बैरी होय ॥४७॥
सांई केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै मांहि।
पिऊं न पानी डरपता, मत वे धोये जांहि ॥४८॥
अनेक बंधनसे बांधिया, एक विचारा जीव।
अपने बल छूटे नहीं, जो न छुड़ावै पीव ॥४९॥
तन की जानै मन की जानै, जानै चित की चोरी।
वह साहिब सें क्या छिपावे, जिनके हाथमें डोरी ॥५०॥
जो जाकी बांही लगो, ताही के सिर भार।
हलकी कड़वी तूंबरी, लेई उतारे पार ॥५१॥

चानक को अंग।

कबीर तृस्ना टोकनी, लीये डोलै स्वाद।
रामनाम जाना नहीं, जनम गँवाया बाद ॥ १॥
कबीर कलियुग कठिन है, साधु न माने कोय।
कामी क्रोधी मसखरा, तिनका आदर होय ॥ २॥

नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत।
कहै कबिर क्यों नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥ ३ ॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चित्त।
हरि सा प्रीतम बीसरा, बालापन का मित्त ॥ ४ ॥
इस उदर के कारने, जग जाच्यो निसि जाम।
स्वामिपनो सिर पर चढ्यो, सर्यो न एको काम ॥ ५ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहै बँधाय।
देवै पैसा ब्याज को, लेख करत दिन जाय ॥ ६ ॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतळ धरै खटाय।
राजदुवारे यौं फिरै, ज्यौं हरियाई गाय ॥ ७ ॥
राज दुवारे रामजन, तीन वस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥ ८ ॥
हरि सुमिरन साँची कथा, कोय न सुनि है कान।
कलिजुग पूजा दंभ की, बाजारी का मान ॥ ९ ॥
तारा मंडल बैठि के, चाँद बड़ाई खाय।
उदै भया जब सूर का, तब तारा छिपि जाय ॥ १० ॥
देखन का सब कोय भला, जैसे सित का कोट।
रवि के उदय न दीसही, बँधै न जलकी पोट ॥ ११ ॥
पद गावै मन हरषि के, साखी कहै अनंद।
सतनाम नहि जानिया, गलमें परिगा फंद ॥ १२ ॥

---

७. पीतळ–पीतल की मूर्तियां। हरियाई–दूसरों के खेत खानेवाली गाय।

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि दंभ।
जानै बूझै कछु नहीं, यौंही अंधा रंभ ॥१३॥
स्वामी होना सेव का, पैसे केर पचास।
राम नाम धन बेचि कै, करै सीप की आस ॥१४॥
राम नाम जाना नहीं, जपा न अजपा जाप।
स्वामिपना माथे पड़ा, कोइ पुरवले पाप ॥१५॥
स्वामी के सहमी पड़ी, माया की मुँह मार।
मान दिं में राता रहै, बूड़े पसू गँवार ॥१६॥
महंत तो पाया मठा, समझै नहीं गँवार।
भेष बनाया भाँड का, घर घर आचा द्वार ॥१७॥
सकल स्वामी हूँ कहो, सुनरे चेत अचेत।
पीतल ही का पारखू, हरि सूँ नाहीं हेत ॥१८॥
कबीर स्वामी कोय नहीं, स्वामी सिरजन हार।
स्वामी ह्वै करि बैठही, बहुत सहेगा मार ॥१९॥
जो मन लागा एक सों, तौ निरुवारा जाय।
दरा दो मुख बाजता, न्याय तमाचा खाय ॥२०॥
कबीर बंटा टोकनी, लीया फिरै सुभाय।
राम नाम चीन्हे नहीं, पीतल ही की चाय ॥२१॥
कबीर व्यास कथा कहै, भीतर भेदै नांहि।
औरों कूं परमोधतां, गये मुहरका मांहि ॥२२॥

२१. बटा-शालग्राम। टोकणी-घटी।

कवीर कहहिं पीर को, समझावे सब कोय ।
संसय पड़ेगा आपकूं, और कहे का होय ॥२३॥
कबिर सुनावत दिन गये, उलझि न सुलझ्या मन ।
कहैं कबिर चेता नहीं, अजहूं पहला दिन ॥२४॥
अमरापुर को जात हों, सबसें कहीं पुकार ।
आवन होय तो आइयो, सूरी ऊपर यार ॥२५॥
कहैं कबिर धर्मदास सों, परदा दई उघार ।
जब सेवक स्वामी भये, संतो करो विचार ॥२६॥
चित चटकी लागी नहीं, क्यों पावै करतार ।
कीट भिरंगी होत है, नरको केतिक बार ॥१७॥
नर नारायण होत है, जो करि बूझै कोय ।
कीट भिरंगी होत है, गुरु बलिहारी तोय ॥२८॥
इन्द्री एकौ बस नहीं, छोड चले परिवार ।
दुनिया पीछे यों फिरे, जैसे चाक कुम्हार ॥२९॥

आतम अनुभव को अंग ।

आतम अनुभव सुख की, जो कोई बूझै बात ।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥ १ ॥
आतम अनुभव जब भयो, तब नहि हर्ष विषाद ।
चित्र दीप सम है रहे, तजि करि वाद विवाद ॥ २ ॥

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोय पूछे बात।
सो गूंगा गुड़ खाय के, कहै कौन मुख स्वाद ॥ ३ ॥
ज्यों गूंगा के सैन को, गूंगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुख को, ज्ञानी है सो जान ॥ ४ ॥
नर नारी के सुख को, खसी नहीं पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुख को, अज्ञानी नहि जान ॥ ५ ॥
ताको लच्छन को कहै, जाको अनुभव ज्ञान।
साध असाध न देखिये, क्यों करि करूं बखान ॥ ६ ॥
कागद लिखै सो कागदी, की व्योहारी जीव।
आतम दृष्टि कहां लिखै, जित देखै तित पीव ॥ ७ ॥
लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी बात।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पड़ी बरात ॥ ८ ॥
स्याम सब्ज विधि पंच जे, पीत अरुन अरु सेत।
चक्षुमान अचक्षु को, ज्यों नहि उपमा देत ॥ ९ ॥
ज्ञान भक्ति वैराग सुख, पीव ब्रह्म लौं धाय।
आतम अनुभव सेज सुख, तहाँ न दूजा जाय ॥ १० ॥
ज्ञानी युक्ति सुनाइया, को सुनि करे विचार।
सूरदास की इस्तरी, का पर करे सिंगार ॥ ११ ॥
ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रहा निज रूप।
बाहिर खोजे बापुरे, भीतर वस्तु अनूप ॥ १२ ॥

५. खसी=हिजड़ा।

भीतर तो भेदा नहीं, बाहिर कथै अनेक।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहिर एक ॥१३॥
नैन समाने नैन पै, बैन समाने बैन।
जीव समाने ब्रह्म पै, रहै ऐन के ऐन ॥१४॥
झारी फाँसी फूल, पै, भभको पानी माँहि।
मरै भभको सब मिटि गई, अब कछु कहनी नाँहि ॥१५॥
भरा होय तो रीतई, रीता होय भराय।
रीता भरा न पाइये, अनुभव सोय कहाय ॥१६॥
कहा सिखापन देत हो, समुझि देख मन माँहि।
सबै हरफ है द्यात महँ, द्यात न हरफन माँहि ॥१७॥
सुखपत माँही सब गलैं, मन बुधि चित परकास।
छिनकै माँहि परलै भया, को ठाकुर को दास ॥१८॥
जागृत जागृत साँच है, सोवन सपनो साँच।
देह गये दोऊ गये, ज्यौं भगली का नाच ॥१९॥
अंधरे को हाथी ज्यौं, सब काहू को ज्ञान।
अपनी अपनी कहत है, कोको धरिये ध्यान ॥२०॥
अंधे मिलि हाथी छुआ, अपने अपने ज्ञान।
अपनी अपनी सब कहैं, किसको दीजै कान ॥२१॥

१४—ऐन—एक। १७. हरफ=अक्षर।
१८. सुखपत=सुषुप्ति अवस्था। १९ भगली=जादूगरी।

अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सघरे।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥२२॥
अंधों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोल।
आंखों सें नहि देखिया, ताते भिन भिन बोल ॥२३॥
दूजा है तो बोलिये, दूजा झगरा सोहि।
दो अंधों के नाच में, कापै काको मोहि ॥२४॥
निरजानी सों कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥२५॥
बचन बेद अनुभव जुगति, आनंद की परछाँहि।
बोध रूप पुरुष अखंडित, कहबे में कछु नाहि ॥२६॥
बूझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाँहि।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसे माँहि ॥२७॥
ज्ञानी तो निरभय भया, माने नाहीं संक।
[1]इंद्रिन केरे बसि पडा, भुगते नरक निसंक ॥२८॥
ज्ञानी मूल गँवाइया, आप भये करता।
ताते संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥२९॥

---

२५. निरजानी=अज्ञानी।
१. पा० इन्द्री एको बस नहीं, पीवे विषय निसंक।

सहज को अंग।

सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय ।
जा सहजै साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १ ॥

सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय ।
पाँचो राखै पसरती, सहज कहावै सोय ॥ २ ॥

सहज सहज सब कोय कहै, सहज न चीन्हे कोय ।
जा सहजै विषया तजै, सहज कहावै सोय ॥ ३ ॥

सहजै सहजै सब गया, मन इन्द्री का नास ।
निहकामी सों मन मिला, कटी करम की फास ॥ ४ ॥

सहजै सहजै सब गया, सुत बित काम निकाम ।
एक मेक ह्वै मिलि रहा, दास कबीरा राम ॥ ५ ॥

काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकाम ।
सहजै सहजै होयगा, जो कछु रचिया राम ॥ ६ ॥

जो कलपै तो दूरि है, अनकलपै ह्वै सोय ।
सतगुरु मेटी कलपना, सहज होय सो होय ॥ ७ ॥

जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान ।
कड़ुवा लागै नीम सा, जामें ऐंचातान ॥ ८ ॥

---

२. पसरती=फैली गई। पञ्चज्ञानेन्द्रियों के अपने २ विषयों में रहने पर भी चित्त की एकाग्रता होना सहजावस्था है।

५. सुत वित काम-निकाम-निष्काम। २ पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा को धीरे २ छोड़कर निष्काम हो जाना ही सहजावस्था है।

मध्य को अंग।

मध्य अंग लागा रहै, तरत न लागै वार।
दो दो अँग सो लागता, यों बूड़ा संसार ॥ १ ॥
कबीर दुविधा दूरि कर, एक अंग है लाग।
वा सीतल वा तपत है, दोऊ कहिये आग ॥ २ ॥
अनल अकासै घर किया, मध्य निरंतर वास।
वसुधा वास विरक्त रहै, विना ठौर विस्वास ॥ ३ ॥
अनलपंख आवै नहीं, सुत अपने को लैन।
वह अलीन यह लीन है, उलटि मिलै तै चैन ॥ ४ ॥
अनलपंख का चेटवा, गिरने किया विचार।
सुरति बांधि चेतन भया, जाय मिला परिवार ॥ ५ ॥
बासर गम नहि रैन गम, नहि सपनेतर गाम।
तहाँ कबीर बिलंबिया, जहाँ छाँह नहि घाम ॥ ६ ॥
नर्क स्वर्ग ते मैं रहा, सतगुरु के परसादि।
चरन कमल की मौज मैं, रहसी अंत रु आदि ॥ ७ ॥
काया फिर कासी भया, राम जु भया रहीम।
मोटा चुन मैदा भया, बैठ कबीरा जीम ॥ ८ ॥
दास कबिर काढ़ी भली, दोऊ राह बिच राह।
अंधे लोग अचरज करैं, सारैं करैं सराह ॥ ९ ॥

५. चेटवा=बच्चा।

धरती और अकास में, दो तूंबरी अवद्ध ।
षट् दरसन धोखे पड़े, औ चौरासी सिद्ध ॥१०॥
सुरति निरति दो तुंबरी, आवा गवन अवद्ध ।
अन समझा धोखे पड़ा, समझा सोई सिद्ध ॥११॥
प्रगट गुप्त की संधिमें, जो यह अस्थिर होय ।
ज्यौं देहल का दीवला, अंदर बाहर सोय ॥१२॥
पाया कहै ते बावरे, खोया कहैं ते कूर ।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यौं का त्यौं भरपूर ॥१३॥
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन ।
भजन तजन के मध्यमें, सो कबीर मन मान ॥१४॥
लेऊँ तो महा प्रतिग्रह, देऊँ तो भोगन्त ।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज सन्त ॥१५॥
दुआ देऊँ तो दोज़ख जाऊँ, बद दुआ भी नाँहि ।
दुआ बददुआ किसको देऊँ, साहिब है सब माँहि ॥१६॥
मँझि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ।
जमरा औ जगदीस के, मधिमें बसै कबीर ॥ १७ ॥
गुरु नहीं चेला नहीं, मुरीद हू नहि पीर ।
एक नहीं दूजा नहीं, बिलमै दास कबीर ॥ १८ ॥

१०. दो तुंबरी-साहब और साधु । ये दोनों किसी के बन्धन में नहीं पडते ।
११. पट दर्शन=जोगी, जंगम, सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण ।
१२. देहल—देहली । १५. प्रतिग्रह-दान । १६ बददुआ शाप ।

हिन्दू ध्यावै देहरा, मूसलमान मसीत।
दास कबिर तहँ ध्यावही, दोनों को परतीत ॥१९॥

हिन्दू तुरक के बीच में, मेरा नाम कबीर।
जिव मुक्तावन कारने, अविगत धरा सरीर ॥ २० ॥

हिन्दू तुरक के बीच में, सब्द कहूँ निरबान।
बंधन काटूँ जगत का, मैं रहिता रहमान ॥ २१ ॥

हिन्दू मूआ राम कहि, मूसलमान खुदाय।
कहैं कबिर सो जीवता, दोउ के संग न जाय ॥ २२ ॥,

हिन्दू यहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाँहि।
पांच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माँहि ॥ २३ ॥

गैबी आया गैब से, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, (तब)कहाँ रहेगा ऐब ॥ २४ ॥

गैबी तो गलियाँ फिरै, अन गैबी कोय एक।
अनगैबी ह जो लखै, जाके हिये बिबेक ॥ २५ ॥

आगे खोजी पचि मुआ, पीछे रहा भुलाय।
मध्य माँहीं वासा करै, ताको काल न खाय ॥ २६ ॥

साँचै कोई न मानई, झूठ कहा नहि जाय।
साँच झूठ के मध्य में, रहा कबीर समाय ॥ २७ ॥

२१. रहमान—दयालु।

अतिका भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अतिका भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥२८॥
सबही भूमि बनारसी, सब निर गंगा तोय।
ज्ञानी आतम राम है, जो निर्मल घट होय ॥ २९ ॥

भेद को अंग।

कबीर भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै सब्द की, निरभय आवै जाय ॥ १ ॥
भेदी जानै सर्व गुन, अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जिन लागा बान ॥ २ ॥
भेद ज्ञान तौं लौं भलो, जौं लौं मुक्ति न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ विकल्प नहि कोय ॥ ३ ॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निरमल नीर।
अंतर धोई आतमा, धोया निरगुन चीर ॥ ४ ॥
समझे को सेरी घनी, अन समझे को नाँहि।
द्वार न पावै सब्द का, फिर फिर गोता खाँहि ॥ ५ ॥
समझा समझा एक है, अन समझे सब एक।
समझा सोई जानिये, जाके हिये विवेक ॥ ६ ॥

समझा समझा एक है, अनसमझे सो मौन।
बातें बहुत मिलावई, तासों सीखै कौन ॥ ७ ॥
समझा सोई जानिये, समझ समानो माँहि।
जब लग कछू न आवही, तब लग समझा नाँहि ॥ ८ ॥
कोटि सयाने पचि मुये, कथै विचारै लोय।
समझा घट तब जानिये, रहित विचार जु होय ॥ ९ ॥
भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो झीठ।
मैं क्या जानूं राम को, नैना कछू न दीठ ॥ १० ॥
दीठा है तो कस कहूं, कहूँ तो को पतियाय।
हरि जैसा तैसा रहै, हरषि हरषि गुन गाय ॥ ११ ॥
ऐसी अदभुत मति कथो, कथो तो धरो छिपाय।
वेद कुराना नहि लिखा, कहूं तो को पतियाय ॥ १२ ॥
जो देखै सो कहै नहि, कहै सो देखै नांहि।
सुनै सो समुझावै नहि, रसन स्रवन द्रिग काहि ॥ १३ ॥

१०. झीठ—तुच्छ।

१३. आख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती और जीभ कहती है, परन्तु वह देख नहीं सकती। इसी प्रकार कान सुनता है, परन्तु वह समझा नहीं सकता, क्यो कि कान के जीभ और जीभ के कान नहीं हैं। इसी प्रकार जीभ के आख और आख के जीभ भी नहीं है। भाव यह है कि वह तत्व अदृश्य, अग्राह्य और अश्राव्य है।

" श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचोहवाचस स उ प्राणस्य प्राणः चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति "(केनोपनिषद्)

जो पकरैं सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नांहि।
कहैं कबिर या साखि को, अरथ समुझ मन मांहि ॥१४॥
जो पकरै सो चले नहिं, चलै सो पकरै नॉहि।
कर पद को तुम कहत हो, समुझि लीन मन मांहि ॥१५॥
जानि के अनजान हुआ, तत्त्व लिया पहिचानि।
गुरू किये ते लाभ है, चेला किये न हानि ॥१६॥
बाद बिवादे विष घना, बोले बहुत उपाधि।
मौन गहि हरि सुमिरिये, जो कोय जाने साध ॥१७॥
पंडित सेती कहि रहा, कहा न माने कोय।
यह अगाध ये क्यों कहै, भारी अचरच होय ॥ १८ ॥
बसै अपिंडी पिंड में, ताको लखै न कोय।
कहैं कबीरा संतजन, बड़ा अचंभा होय ॥ १९ ॥
घटमें है सूझै नहिं, कर सों गहा न जाय।
मिला रहै औ ना मिलै, तासों कहा बसाय ॥ २० ॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मो मन यही अंदेस।
या नगरी प्रीतम बसै, मैं जानूं परदेस ॥ २१ ॥
प्रीतम को पतिया लिखूं, जो वह है परदेस।
तनमें मनमें नैन में, ताको कहा सँदेस ॥ २२ ॥
समदर्शी सतगुरु किया, भरम भया सब दूर।
भया उजारा ज्ञान का, निरमल ऊगा सूर ॥ २३ ॥

समदर्सी सतगुरु किया, भरम किया सब दूर।
दूजा कोय दीखै नहि, राम रहा भरपूर ॥२४॥
समदर्सी सतगुरु किया, दीया अविचल ज्ञान।
जहँ देखो तहं एक ही, दूजा नाँही आन ॥२५॥
समदर्सी सतगुरु किया, मेटा भरम विकार।
जहँ देखो तहं एक ही, साहिब का दीदार ॥२६॥
समदर्सी सतगुरु किया, पाया मन बिसराम।
जो हमको दिन घालता, सो गए ब्रह्म के धाम ॥२७॥
समदर्सी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखे एक सी सोय ॥२८॥
जो मन समझे ज्ञान में, ज्ञान हि होय सहाय।
सो फिर तोही ना रुचै, जाकूं तूं कहै माय ॥२९॥
समझे का घर और है, अन समझे का और।
जा घट में साहिब बसै, सो बिरला जानै ठौर ॥३०॥
समझे का मत और है, अन समझे का और।
समझे पीछे जानिये, राम बसैं सब ठौर ॥३१॥
भटकि मुआ भेदी बिना, कौन बतावे धाम।
चलते चलते जुग गया, पाव कोस पर गाम ॥३२॥
जा कारन हम ढूंढते, करते आस उमेद।
सो तो अंतर गत मिला, गुरु मुख पाया भेद ॥३३॥

जो देखा सो तीन में, चौथा मिले न कोय।
चौथे कूं परगट करै, हरिजन कहिये सोय ॥३४॥
जो यह एक न जानिया, बहु जाने क्या होय।
एके तै सब होत है, सबने एक न होय ॥३५॥
दौड़ धूप छोडो मखी, छोडो कथा पुरान।
उलटि वेद को भेद गहु, सार सब्द गुरु ज्ञान ॥३६॥
ईलम से उद्योग खिले, खिले नेकि से नूर।
ईलम बिन संसार में, समुझ अंधेरो धूर ॥३७॥
मुख में रहे सो मानवी, मनसें रहे सो देव।
सुरत रहे सो संत है, इस विधि जानो भेव ॥३८॥
बोलत ही विष बाद है, पूछत ही है वाद।
ऐसे मन में समुझि के, चूप रहे सोइ साध ॥३९॥
अंतर कमल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहं होय।
मन भौंरा जहं लुबधिया, जानेगा जन कोय ॥४०॥
जिन पाया तिन सुगह गहा, रसना लागी स्वाद।
रतन निराला पाइया, जगत ढंढोला बाद ॥४१॥
कबीर दिल साबित भया, फल पाया समरथ्थ।
सायर मांहि ढंढोरतां, हीरा पड़ि गया हथ्थ ॥४२॥
चार ईंट चौरासि कुवा, सौलह सौ पनिहार।
भट पंडित खोजत मुवे, संतन किया बिचार ॥४३॥

४३. चार ईंट—चार अन्तःकरण। चौरासीकुवा—चौरासी योनियाँ। सोल सौ पनिहार—षोडशकला।

कहने जैसी बात नहि, कहै कौन पतियाय।
जहँ लागे तहँ लगि रहे, फिर पूछेगा काय ॥४४॥

साक्षी भूत को अंग।

जा घट में साँई बसै, सो क्यौं छाना होय।
जतनं जतन करि दाबिये, तउ उजियारा सोय ॥ १ ॥
सब घट मेरा साँईया, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥ २ ॥
जा घट में संसै बसै, ता घट राम न होय।
राम सनेही साधु बिच, तिना न संचर जोय ॥ ३ ॥
जो मारौं तो भय नहिं, सनमुख रहा न जाय।
सूना सिंघ न जगाइये, जो छेरे तिहि खाय ॥ ४ ॥
राम राम जिन ऊचरा, छिन छिन वारंवार।
ते मुख भये जु ऊजला, कहैं कबीर विचार ॥ ५ ॥
कबीर पछै राम सों, सकल भवन पतिराय।
सबही करि न्यारा रहै, सोई देहु बताय ॥ ६ ॥
जिहि बिरियां साहिब मिले, ता समान नहि और।
सब कूं सुख दे सबद करि, अपनी अपनी ठौर ॥ ७ ॥

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय।
ज्यूं मेंहदीके पातमें, लाली लखी न जाय ॥ ८ ॥

स्वास सुरति के मध्यही, न्यारा कभी न होय।
ऐसा साखी रूप है, सुरति निरतिमें जोय ॥ ९ ॥

एकता को अंग।

अलख इलाही एक है, नाम धराया दोय।
कहैं कबिर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ १ ॥

राम रहीमा एक है, नाम धराया दोय।
कहैं कबिर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ २ ॥

कृष्न करीमा एक है, नाम धराया दोय।
कहैं कबिर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ ३ ॥

कासी काबा एक है, एकै राम रहीम।
मैदा इक पकवान बहु, बैठि कबीरा जीम ॥ ४ ॥

राम कबीरा एक है, दूजा कबहूं न होय।
अंतर टाटी भरम की, तातै देखै दोय ॥ ५ ॥

राम कबीरा एक है, कहन सुनन को दोय।
दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय ॥ ६ ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पिछानि।
नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त लै जानि ॥ ७ ॥

नाम अनन्त जो ब्रह्मका, तिनका वार न पार।
मन मानै सो लीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ८ ॥

सब काहू का लीजिये, साचा सब्द निहार।
पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ९ ॥

हरिका बना सरूप सब, जेता यह आकार।
अच्छर अर्थ यों भाखिये, कहै कबीर विचार ॥१०॥

देखन ही की बात है, कहने को कछु नाँहि।
आदि अन्त को मिलि रहा, हरिजन हरि हि माँहि ॥११॥

सबै हमारे एक हैं, जो सुमिरै हरि नाम।
वस्तु लही पहिचानि के, बासन सों क्या काम ॥१२॥

खाँड खिलौना दो नहीं, खाँड खिलौना एक।
तैसे सब जग देखिये, किये कबीर विवेक ॥१३॥

खाँड खिलौना तुम कहो, एक अहै नहि दोय।
नाम रूप दीसै पृथक्, हस्ती घोडा सोय ॥१४॥

उपजे एकै खाँड तें, हस्ती घोडा ऊंट।
खाँड विचारै पाइया, नाम रूप सब झूठ ॥१५॥

कबीर लोहा एक है, घडने में है फेर।
ताहीका बखतर बना, ताही की समसेर ॥१६॥

त्योंही एकै ब्रह्म ते, जीव ईस जग जान।
ब्रह्म विचारे पाइया, नाम रूप को हान ॥१७॥
जीव ब्रह्म ब्यौरा नहीं, जीव ब्रह्म एक अंग।
ज्यौं कनक कुँडल मृदुघट, सारा फेन तरंग ॥१८॥

व्यापक को अंग।

जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख।
सब घट व्यापक साँइया, अगम अपार अलेख ॥ १ ॥
पारब्रह्म सूभर भरा, जाका वार न पार।
खालिक बिन खाली नहीं, सुइ जेता संचार ॥ २ ॥
जाति जानि के पाहुने, जाति जाति के जाय।
साहिब सब की जाति है, घट घट रहा समाय ॥ ३ ॥
ज्यौं नैनों में पूतली, त्यौं खालिक घट मांहि।
मूरख लोग न जानहीं, बाहिर ढूँढन जांहि ॥ ४ ॥
ज्यौं तिल मांही तेल है, चकमक मांही आग।
तेरा प्रीतम तुझ्झ में, जागि सकै तो जाग ॥ ५ ॥
पुहुप मध्य ज्यौं बास है, व्यापि रहा जग मांहि।
सन्तो मांहीं पाइये, और कहीं कछु नांहि ॥ ६ ॥

भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बधि गइ वेल ।
तेरा साँई तुझ हि में, ज्यौं तिल माहीं तेल ॥ ७ ॥
पावक रूपी सांइया, सब घट रहा समाय ।
चित्त चकमक लागै नहीं, तातें बुझि बुझि जाय ॥ ८ ॥
काया कफ चित चकमकै, झारौं वारं वार ।
तीन वार धूँआ भया, चौथे पड़ा अंगार ॥ ९ ॥
जैसी लकडी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
वामें केसू छिपि रहा, यामें पुरुष अलेख ॥१०॥
तेरा साँई तुज्झ में, ज्यौं पुहुपन में वास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यौं, फिरि फिरि ढूंढै घास ॥११॥
कस्तूरी नाभी बसै, मिरग ढूढै बन माँहि ।
ऐसे घट्टमें पीव है, दुनिया जानै नांहि ॥१२॥
कस्तूरी नाभी बसै, नाभि कमल हरि नाम ।
नर ढूंढै पावै नहीं, गुरु बिन ठाम हि ठाम ॥१३॥
सो साहिब तनमें बसै, मरम न जानै तास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यौं, फिरि फिरि ढूढै घास ॥१४॥
जा कारन जग ढूंढिया, सो तो घट हि माँहि ।
परदा दीया भरम का, तातैं सूझै नाँहि ॥१५॥
समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय ।
तेरा साहिब तुज्झमें, अन्त कहूँ मति जाय ॥१६॥

९. कफ—कपड़ा । तीन वार—त्रिगुण ।

मैं जानूँ हरि दूरि है, हरि हिरदै भरपूर।
मानुष ढूंढै बाहिरा, नियरे होकर दूर ॥१७॥
तिलके ओटे राम है, परवत मेरे माय।
सतगुरु मिलि परिचै भया, तब पाया घट मॉय ॥१८॥
कबीर खोजी रामका, गया जु सिंगल दीप।
साहिब तो घटमें बसै, जो आवै परतीत ॥१९॥
घट बढ कहूं न दखिये, प्रेम सकल भरपूर।
जानै ही ते निकट है, अनजानै ते दूर ॥२०॥
कबीर बहुत भटकिया, मन ले विषय विराम।
ढूंढत ढूंढत जग फिरा, तिनका ओटे राम ॥२१॥
राम नाम तिहूं लोक मैं, सकल रहा भरपूर।
जो जानै तिहि निकट है, अन जानै तिहि दूर ॥२२॥
सबै खिलौने खॉड के, खॉड खिलौना माँहि।
तैसे सब जग ब्रह्म मैं, ब्रह्म जगत के माँहि ॥२३॥
ज्यौं ही एकै महल मैं, प्रतिमा विविध प्रकार।
कहैं कबिर त्यौंही बसै, ब्रह्म मध्य संसार ॥२४॥
दारु मध्य ज्यौं पूतरी, पूतरी मध्ये दारु।
कहैं कबिर त्यौं ब्रह्म मैं, भासत जग व्यौहार ॥२५॥
ज्यौं मृतिका घट मध्यमें, मृतिका मध्ये जोय।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जग सोय ॥२६॥

ज्यौं बघूरा बात मध्य, मध्य बघूरा बात।
त्यौं ही जग मधि ब्रह्म है, ब्रह्म मधि जगत सुभाव ॥२७॥

ज्यौं मृतिका घट फेन जल, कुंडल कनक सो आय।
त्यौं कबीर जग ब्रह्म ते, भिन्न कहूँ न दिखाय ॥२८॥

जैसे तरुवर बीज महँ, बीज तरुवरै माँहि।
कहै कबीर बिचारि कै, जगत ब्रह्म के माँहि ॥२९॥

जैसे सूरज धूप मधि, सूरज मध्ये धूप।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जग रूप ॥३०॥

जैसे स्याही अंक मधि, स्याही मध्ये अंक।
त्यौं ही जग मधि ब्रह्म है, ब्रह्म मधि जगत निसंक ॥३१॥

भूषन मध्ये कनक ज्यौं, भूषण कनक मंझार।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मधि जग निरधार ॥३२॥

दरिया मध्ये लहर ज्यौं, लहर मध्य दरियाव।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत सुभाव ॥३३॥

देह मध्य ज्यौं अंग है, अंगे मध्य सरीर।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर ॥३४॥

नीर मध्य ज्यौं बुद्बुदा, बुद्बुद मध्ये नीर।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर ॥३५॥

चीर मध्य ज्यौं तंतु है, तंतु मध्य ज्यौं चीर।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कबीर ॥३६॥

आंधो यथा समीर मधि, आँधो मध्य समीर ।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म में जगत कवीर ॥३७॥
तम मय मीत न पाइये, ज्यौं पावक विस्तार ।
जीव ईस जग जोइले, त्यौं ही ब्रह्म विचार ॥३८॥
ईश्वर में अरु जीव में, ब्रह्मैं मध्य कवीर ।
तिरविधि भेद न देखिये, सिंधु बुदबुदा नीर ॥३९॥
कवीर भिन्न न देखिये, जगत ईस अरु ब्रह्म ।
सब ही मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य सब मर्म ॥४०॥
व्योम मध्य ज्यौं घट मठ, अरु चिदाकास आकास ।
कहै कबिर यौं ब्रह्म में, जीव ईस जग भास ॥४१॥
हथीयार में लोह ज्यौं, लोह मध्य हथियार ।
कहैं कबिर त्यौं देखिये, ब्रह्म मध्य संसार ॥४२॥
पानी मध्ये लीक ज्यौं, लीक मध्य ज्यौं पानि ।
त्यौं जग मध्ये ब्रह्म है, ब्रह्म जगत में जानि ॥४३॥
अंडज स्वदेज उदभिज, पिंडज आतम रूप ।
कहै कबीर विचारि के, यौं ज्यौं सूरज धूप ॥४४॥
पावक एक अनेक जो, दीपक और मसाल ।
कहै कबिर त्यौं जानिये, ब्रह्म मध्य जग जाल ॥४५॥
मोमें तोमें सरवमें, जहँ देखूँ तहँ राम ।
–राम बिना छिन एक ही, सरै न एकौ काम ॥४६।

खालिक बिन खाली नहीं, सूई धरन को ठौर।
आगे पीछे राम है, राम बिना नहि और ॥४७॥
घट बिन कहूं न देखिये, राम रहा भरपूर।
जिन जाना तिस पास है, दूर कहा उन दूर ॥४८॥
बाहिर भीतर राम है, नैनन का अभिराम।
जित देखूं तित राम है, राम बिना नहि ठाम ॥४९॥
ज्यों पत्थर में आग है, यों घट में करतार।
जो चाहो दीदार को, चकमक होके जार ॥५०॥
सांई तेरा तुझहि में, ज्यूं पत्थर में आग।
जोत सरूपी राम है, चित चकमक हो लाग ॥५१॥

जीवत मृतक को अंग।

जीवत मिरतक ह्वे रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरु, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
जीवत में मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरना पहिले जो मरै, अजर अमर सो होय ॥ २ ॥
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥ ३ ॥

---

३ अवसर—मौका, जातेभी।

वैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जाके नाम अधार ॥ ४ ॥

कबीर मन मिरतक भया, दुरबळ भया सरीर।
पाछै लागे हरि फिरै, कहै कबीर कबीर ॥ ५ ॥

काया माँहि समुद्र है, अन्त न पावै कोय।
मिरतक है करि जो रहै, मानिक लावै सोय ॥ ६ ॥

मैं मरजीवा समुँदका, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जामें वस्तु अनेक ॥ ७ ॥

डुबकी मारी समुँद में, जाई निकस आकास।
गगन मंडलमें घर किया, हीरा पाया दास ॥ ८ ॥

हरि हीरा क्यों पाइये, जिन जीवै की आस।
गुर दरियासें काढसी, कोइ मरजीवा दास ॥ ९ ॥

गुरु दरिया सूभर भरा, जामें मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकमे, पहिरि छिपाकी खाल ॥१०॥

मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सात पताळ।
लाज कानि कुळ मेटिके, गहि ले निकसा लाल ॥११॥

तन समुद्र मन मरजीवा, एक बार धसि लेय।
कै लाल लइ नीकसै, कै लालच जिव देय ॥१२॥

मोती निपजै सीप में, सीप समुँदर माँहि।
कोय मरजीवा काढसी, जीवन की गम नाँहि ॥१३॥

मन को मिरतक देखि के, मति माने बिसवास।
साध तहाँ लौं भय करै, जबलग पिंजर साँस ॥१४॥
मैं जानूं मन मरि गया, मरि करि हूआ भूत।
मूये पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
मनकी मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट।
गगन मंडलमें घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१६॥
मोहि मरन की चाव है, मरूँ तो राम दुवार।
मति हरि पूछै बापरी, दास मुआ दरबार ॥१७॥
मोहि मरन की चाव है, मरूं तो राम दुवार।
की तनका कुटका करूं, की ले उतरूं पार ॥१८॥
जा मरना सों जग डरै, [1]मेरे मन आनंद।
कब मरि हौं कब [2]भेटि हौं, पूरन परमानंद ॥१९॥
ऊंचा तरुवर गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत मरि जाय ॥२०॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय ॥२१॥
खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोय।
राम कसौटी सो टिकै, जीवत मिरतक होय ॥२२॥
राम कहो तो मरि रहो, जीवत मिले न राम।
जबलग जीवत राम है, तब लग काचा काम ॥२३॥

१. पा० सो मेरे आनद। २ पा० पाइ हौं।

मूये को क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये बंदीवान को, हाटै हाट बिकाय ॥२४॥

भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकित बापुरे, हाटौं हाट बिकाय ॥२५॥

मिरतक को धीजौं नही, मेरो मन वह बाज।
बाजै बाव विकार की, कब फिर जीवै आज ॥२६॥

मिरतक को दावा किसा, अहं रहे नहि कोय।
मुआ मसाना पाजलै, यह कछु अचाज होय ॥२७॥

कबीर मरि मरघट गया, किनहूँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, गऊ बच्छा की छार ॥२८॥

पैंडा मांहि पड़ि रहो, दुरबल मिरतक होय।
जिहि पैंडे जम लूटिया, बात न बूझै कोय ॥२९॥

मरना भला विदेसका, जहँ अपना नहि कोय।
जीव जन्तु भोजन करैं, सहज महोछा होय ॥३०॥

कबीर चेरा सन्त का, दासन हू का दास।
अब तो ऐसा ह्वै रहु, पाव तले का घास ॥३१॥

रोड़ा ह्वै रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥३२॥

---

२७. मुआ मसाना—धार्मिक बलिदान ससार में आत्म प्रकाश कर देता है। अह—अहकार। ३०. महोछा—मृतकभोज।

रोड़ा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये, जस पैंडे की खेह ॥१३॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपंग ॥१४॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय।
साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥१५॥
हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय।

कबीर मिरतक देखकर मति धारो विश्वास।
कबहूं जागै भूत होय, करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये, आपा धरे उठाय।
सहज सुन्न में घर करे, ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन्न में पाइये, जहँ मरजीवा मन।
कबीर चुनि चुनि ले गया, भीतर राम रतंन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पड़े, चरन कमल सें दूर।
कलियों की गति अगम है, तातें राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन, सत संगति सूचंत।
कहैं कबिर जम क्या करें, सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द बिचारी जो चले, गुरु मुख होय निहाल।
काम क्रोध व्यापै नहीं, कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है, घड़ी इक का घमसान।
मरे न जियै मरजीवा, धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग।

जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चल कबिर वा देस को, वैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौं रहो, ज्यों जल कमल निराल।
मनुवा वहाँ ले राखिया, जहां नहीं जम काल ॥ २ ॥

रोड़ा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये, जस पैंडे की खेह ॥३३॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपंग ॥३४॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय।
साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, हरि भजि निरमल होय ॥३६
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल सों रहित हैं, ते साधु कोइ और ॥३७॥
जिन पाँवन भुंई बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकड़िया, आँगन भया बिदेस ॥३८॥
मन उलटी दरिया मिला, लागा मल मल न्हान।
थाहत थाह न पावई, तूं पूरा रहमान ॥३९॥
अजहूं तेरा सब मिटै, जो जग मानै हार।
घरमें झगरा होत है, सो घर डारो जार ॥४०॥
अजहूं तेरा सब मिटै, जो मन राखै ठौर।
गम हो ते मब छोड दे, अगम पंथकूं दौर ॥४१॥
मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ।
जो घर जारो आपना, चलो हमारे साथ ॥४२॥

३४. निपंग—बिना पैरका।

कबीर मिरतक देखकर, मति धारो विश्वास।
कबहूं जागै भूत होय, करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक सो नय जानिये, आपा धरे उठाय।
सहज सुन्न में घर करे, ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन्न में पाइये, जहँ मरजीवा मंन।
कबीर चुनि चुनि ले गया, भीतर राम रतंन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पड़े, चरन कमल सें दूर।
कलियों की गति अगम है, ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन, सत संगति सूचंत।
कहैं कबिर जम क्या करें, सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले, गुरु मुख होय निहाल।
काम क्रोध व्यापै नहीं, कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है, घड़ी इक का घमसान।
मरै न जियै मरजीवा, धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग।

जरा मीच व्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चल कबिर वा देस को, वैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौं रहो, ज्यौं जल कमल निराल।
मनुवा वहाँ ले राखिया, जहां नहीं जम काल ॥ २ ॥

कबीर जोगी वन बसा, खनि खाया कंद मूल।
ना जानौं किस जड़ीसैं, अमर भया अस्थूल ॥ ३ ॥

कबीर तो पिव पै चला, माया मोह सें तोरि।
गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि ॥ ४ ॥

कबीर मन तीखा किया, लाय बिरह खरसान।
चित चरनोंसों चपटिया, (का)करै काल का बान ॥५॥

काची रती मति करो, दिन दिन बढै बियाध।
राम कबीरा रुचि भई, याहि औषधि साध ॥ ६ ॥

मनुवा भया दिसन्तरी बोलै सब्द रसाल।
चाव दिसावर की कहै, तहाँ नहीं जम काल ॥ ७ ॥

ऐसी तारवी सुरति है, फोडि गई ब्रह्मंड।
राम निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ ८ ॥

राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत मन लीन।
सुरति सब्द एकै भया, जल ही ह्वगा मीन ॥ ९ ॥

राम मैरे तो हम मरे, नातर मरै बलाय।
अबिनासी के चेटवा, मरै न मारा जाय ॥१०॥

कबीर संसय जीव में, कोय न कहि समुझाय।
बिधि बिधि बानी बोलता, सो कित गया बिलाय ॥११॥

कबीर संसय दूरि कर, जनम मरन अरु भरंम।
पंच तत्त तत्तो मिला, सुन्न समाना मरम ॥ १२ ॥

जप जौरा तो है नहीं, सबै राम का रूर।
संसै खाई पिरथवी, रहा कबीरा कूक ॥१३॥
तरुवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया सघन फल, पंछी केलि करन्त ॥१४॥
मुक्ता बाये दाहिने, मुक्ता आगे पीठि।
मुक्ता धरनि अकासमें, मुक्ता मेरी दीठि ॥१५॥
मुक्ता पैड़ा जब भया, मान मुक्ति निरवान।
रूप मुक्ति तब जानिये, देखै दृष्टि पिछान ॥१६॥

बेहद को अंग।

हद छोड़ा बेहद गया, लिया ठीकरा हाथ।
भया भिखारी नाम का, दरसन पाय सनाथ ॥ १ ॥
हद बेहद दोऊ तजी, अवरन किया मिलान।
कहँ कबिर वा दास पर, वारौं सकल जहाँन ॥ २ ॥
हद छाडी बेहद गया, अवरन किया मिलान।
दास कबिरा मिलि रहा, सो कहिये रहिमान ॥ ३ ॥
हद छांडी बेहद गया, सुंन किया अस्थान ।
मुनिजन महल न पावहीं, तहाँ किया बिसराम ॥ ४ ॥

२ अवरन—अरूप, साहब।

हरष सोक का घर नहीं, नहीं लाभ नहिं हान।
ऐसा परमानंद में, धरे पुरुष को ध्यान ॥२४॥
नहिं देवी नहिं देव है, नहिं षट करम अचार।
नहिं तीरथ नहिं बरत है, नहीं वेद उचार ॥२५॥
उतपति परलै है नहीं, नहीं पुन्य नहिं पाप।
ऐसा परमानंद में, सुमिरे सतगुरु आप ॥२६॥
नहिं सागर संसार है, नहीं पवन नहिं पानि।
नहिं धरती आकास है, नहिं अक्षा न निसानि ॥२७॥
चन्द सूर का घर नहीं, नहीं करम नहिं काल।
सगत होय नाम दि गहै, छूटि गयो जंजाल ॥२८॥
देही माँहि बिदेह है, साहब सुरति सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा, जाको रंग न रूप ॥२९॥
कबीर गुरु है हदका, बेहद का गुरु नाँहि।

गगन महल माठी रुपी, चुवै अगर की धार।
जिन रहनी मायें रहै, पीवत संत सुधार ॥३३॥
गंगा जमुना सुरसती, हो तिरबैनी तीर।
साहिब कबिर बेहद छके, अम्मर होत सरीर ॥३४॥
सरगुन की सेवा करो, निरगुन का करु ज्ञान।
निरगुन सरगुन के परे, तहाँ हमारा ध्यान ॥३५॥
निरालंम की खोज में, सब जग पड़ो भुलाय।
जब सतगुरु दाया करैं, तब ही पड़ै लखाय ॥३६॥

अविहड को अंग।

अविहड अखँडित पीव है, ताका निरभय दास।
तीनों गुन को मेलि के, चौथे किया निवास ॥ १ ॥
कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय।
हिलमिल के संग खेलई, कबहु बिछोह न होय ॥ २ ॥
आदि अन्त अरु मध्य लौं, अविहड सदा अभग।
कबीर उस करतार का, कमी न छाडै संग ॥ ३ ॥
जेहि घट जान बिजान, नेही घट अवटन घना।
बिन खांडे संग्राम, नित उठि मनसूं जूझना ॥ ४ ॥
कबीर सिरजन हार बिन, मेरा हितू न कोय।
गुन औगुन बेडै नहीं, स्वारथ बंधा लोय ॥ ५ ॥

अनहद बाजे निझर झरै, उपजे ब्रह्म गियान ।
अविगति अंतर परगटै, लागे प्रेम धियान ॥ ६ ॥

भ्रमविध्वंस को अंग।

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार।
वाहि भरोसे मति रहो, बूडो काली धार ॥ १ ॥
पाहन को क्या पूजिये, जो नहि देय जवाब।
अंधा नर आसा मुखी, यौंही खोवै आब ॥ २ ॥
पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पुजूँ पहार।
ताते तो चक्की भली, पीसि खाय संसार ॥ ३ ॥
पाहन पानि न पूजिये, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजै साधु की, सतनाम कर याद ॥ ४ ॥
पाहन ही का देहरा, पाहन ही का देव।
पूजनहारा आंधरा, क्यों करि माने सेव ॥ ५ ॥
पाहन पानी पूजि के, पचि मूआ संसार।
भेद अलहदा रहि गया, भेदवंत सो पार ॥ ६ ॥
पाहन ले देवल चुना, मोटी मूरति माँहि।
पिंड फूटि परवस रहै, सो ले तारै काहि ॥ ७ ॥

३. आब-मान। ४. बाद-व्यर्थ। ५. देहरा-देवालय।

कबीर पाहन पूजि के, होन चहै भौ पार।
भींजि पानि बेरै नहीं, बूडे जिन सिर भार ॥ ८ ॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदै मांहीं हरि बसै, तूं ताही लौ लाय ॥ ९ ॥
कबीर जेता आतमा, तेता सालिग राम।
बोलनहारा पूजिये, नहि पाहन सौं काम ॥१०॥
कबीर सालिग रामका, मोहि भरोसा नाँहि।
काल कहर की चोटमें, बिनसि जाय छिनमाँहि ॥११॥
पूजै सालिगराम को, मन की भ्रांति न जाय।
सीतलता सपनै नहीं, दिन दिन अधिकी लाय ॥१२॥
सेवै सालिगराम को, माया सेती हेत।
पहिरै काली कामली, नाम धरावै सेत ॥१३॥
काजर केरी कोठरी, मसिके किये कपाट।
पाहन भूली पिरथवी, पंडित पाडी बाट ॥१४॥
हम भी पाहन पूजते, होते बनके रोज।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिरका बोज ॥१५॥
मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस।
मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिसवा बीस ॥१६॥
धरि गिरिवर करता किया, सो क्यों रहै अपून।
पाहन फोडि देहरु रचा, परमेश्वर सौं दून ॥१७॥

१४. पाडी—चलाया। बाट—रास्ता।

कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार ।
कहै कबीर विचारि के, मन बूडा संसार ॥१८॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा, तामें जोति पिछान ॥१९॥

कांकर पाथर जोरिके, मसजिद लई चुनाय ।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, बहिरा हुआ खुदाय ॥२०॥

मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलह न बहिरा होय ।
जिहि कारन तू बांग दे, दिल ही अंदर जोय ॥२१॥

तुरक मसीते देहरे हिन्दू, आप आप को धाय ।
अलख पुरुष घट भीतरै, ताका पार न पाय ॥२२॥

पूजा , सेवा नेम व्रत, गुड़ियन का सा खेल ।
जबलग पिव परसै नहीं, तबलग संसै मेल ॥२३॥

कबीर या संसार को, समझायो सौ बार ।
पूँछ जु पकड़ै भेड की, उतरा चाहै पार ॥२४॥

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ व्रत विश्वास ।
सूआ सैंमल सेइया, यों जग चला निरास ॥२५॥

तीरथ व्रत करि जग मुआ, जूड़े पानी न्हाय ।
सत्तनाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥२६॥

तीरथ चाले दुइ जना, चित चंचल मन चोर ।
एको पाप न काटिया, लायें दस मन और ॥२७॥

न्हाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥२८॥
मछरी तुरकै पकड़िया, बसै गंग के तीर।
धोय कुलाधि न भाजही, राम न कहै सरीर ॥२९॥
तीरथ कांठे घर करै, पीवै निरमल नीर।
मुक्ति नहीं हरि नाम विन, यौं कथि कहैं कबीर ॥३०॥
निरमल गुरु के नाम सों, निरमल साधू भाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥३१॥
मनही में फूला फिरै, करता हूं मैं धर्म।
कोटि करम सिरपर चढ़ै, चेति न देखै मर्म ॥३२॥
और धरम सब करम है, भक्ति धरम निह कर्म।
नादे हलियारी को कहै, कुवा बावरी मर्म ॥३३॥
करम हमारे काटि हैं, कोइ गुरुमुख कलि माँहि।
कहै हमारी वासना, गुरुमुख कहियत नाँहि ॥३४॥
अहिरन मारे कांख में, करै सूइ का दान।
ऊँचे चढ़ि के देखई, केतिक दूर विमान ॥३५॥
मरती विरियाँ दान दे, जीवत बड़ा कठोर।
कहैं कबिर क्यौं पाइये, खांडा का वै चोर ॥३६॥
बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुतै आस।
काहू के गज होयँगे, खैहैं सेर पचास ॥३७॥

२९. कुलाधि दुर्गन्ध। ३० कांठे-समीप।

मुफ्त दान जो देत हैं, मुफ्त ही लेत असीस।
ऊंट काहू के होयगे, लादेंगे मन बीस ॥३८॥

सब वन तो तुलसी भई, परवत सालिगराम।
सब नदियें गंगा भई, जाना आतम राम ॥३९॥

पांच तत्त्व का पूतरा, रज बीरज की बूंद।
एकै घाटी नीसरा, ब्राह्मन छत्री सूद ॥४०॥

अकिल विहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परवस पर्यो, नाचै घर घर बार ॥४१॥

अकिल विहूना सिंघ ज्यूं, गयो ससा के संग।
अपनी प्रतिमा देखि कै, कीयो तन को भंग ॥४२॥

अकिल विहूना आंधरा, गज फंदे पड़ो आय।
ऐसे सब जग बंधिया, काहि कहूं समुझाय ॥४३॥

पंख होत परवस पर्यो, सूआ के बुधि नाँहि।
अकिल विहूना आदमी, यौं अंधा जग मांहि ॥४४॥

अकिल अरस सों उतरी, विधना दीन्ही बांट।
एक अभागी रहि गया, एकन लई उछांट ॥४५॥

अलछ अकिल जाने नहीं, जीव जहदम लोय।
हरदम हरि जाना नहीं, भिस्त कहाँ ते होय ॥४६॥

विना वसीले चाकरी, विना बुद्धि की देह।
विना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेह ॥४७॥

पंडित सेती कहि रहा, भीतर बेधा नाँहि।
औरन को परमोधताँ, गया मोहरका माँहि ॥४८॥
दुविधा जाके मन बसै, दयावंत जिय नाँहि।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देह जनि बाँहि ॥४९॥
सत्तनाम कडुवा लगै, मीठा लागै दाम।
दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥५०॥
चिऊँटी चावल ले चली, बिच में मिलि गइ दार।
कहैं कबिर दो ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥५१॥
आगा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय।
सो वासी जम लोक का, बांधा जमपुर जाय ॥५२॥
कै तूं लोरै मुकदमी, कै तूं साहिब लोर।
दो दो घोड़ा मति चढ़ै, तेरे घर है चोर ॥५३॥
तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी मार।
सबै तीर खाली पड़ा, चला कमाना डार ॥५४॥
बेझा मारै थिर रहै, खरा महीना खाय।
साहिब के दरबार में, मागि न कबहूं जाय ॥५५॥
पढ़ा सुना सीखा सभी, मिटी न संसै सूल।
कहैं कबिर कासों कहूं, यह सब दुख का मूल ॥५६॥

---

५१. चिऊंटी से अभिप्राय सुरति से है। चावल से अभिप्राय राम से और दार से माया अभिप्रेत है।

५३. लोरै—चाहना। मुकदमी—ससार। ५४. बेझी—निशाना।

नगर चैन तब जानिये, एकै राजा होय।
याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥५७॥
तेरे हिरदे राम है, ताहि न देखा जाय।
ताको तो तब देखिये, दिल की दुबिधा जाय ॥५८॥
देह निरंतर देहरा, तामें परतछ देव।
राम नाम सुमिरन करो, कह पाथर की सेव ॥५९॥
पाथर मुख ना बोलही, जो सिर डारी कूट।
राम नाम सुमिरन करो, दूजा सबही झूठ ॥६०॥
कुबुधी को सूझै नहीं, उठि उठि देवल जाय।
दिल देहरा की खबर नहि, पाथर ते कहँ पाय ॥६१॥
मक्के मदिने मै गया, वहँ भी हरिका नाम।
मैं तुझ पूछूं हे सखी, किन देखा किस ठाम ॥६२
सिदक सबूरी बाहिरा, कहा हज्ज को जाय।
जिन का दिल साबित नहीं, तिन को कहां खुदाय ॥६३॥
आतम दृष्टि जानै नहीं, न्हावै मात हि काल।
लोक लाज लीया रहै, लागा भरम कपाल ॥६४॥
जप तप तीरथ सब करै, घड़ी न छाडै ध्यान।
कहै कबीरा भक्ति बिन, कबहु न है कल्यान ॥६५॥

५७. दुराजी—दो राजाओं का राज्य।
६३. सिदक—सत्य। सबूरी—सन्तोष।

सुख को सागर मैं रचा, दुख सुख मेला पाव ।
थिति ना पकड़े आपनी, चले रंक औ राव ॥६६॥
लिखा पढ़ी में सब पड़े, यह गुन तजै न कोय ।
सबै पड़े भ्रम जाल में, डारा यह जिय खोय ॥६७॥
सत्तनाम निजमूल है, कहै कबिर समुझाय ।
दोइ दीन खोजत फिरैं, परम पुरुष नहिं पाय ॥६८॥

सारग्राही को अंग ।

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
सार सार को गहि रहै, देइ असार बहाय ॥ १ ।
सत संगति है सूप ज्यौं, त्यागै फटकि असार ।
कहै कबिर गुरु नाम ले, परसैं नाँहि बिकार ॥ २ ।
पहिले फटकै छाज के, थोथा सब उड़ि जाय ।
उत्तम भाँडे पाइया, जो फटकै ठहराय ॥ ३ ।
औगुन को तो ना गहै, गुन ही को ले बीन ।
घट घट महकै मधुप ज्यौं, परमातम ले चीन ॥ ४ ॥
हंसा पय को काढ़ि ले, छीर नीर निरवार ।
ऐसै गहै जु सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्यौहार।
हंस रूप कोइ साधु है, तत का छांननहार॥ ६॥
पारा कंचन काढि ले, जो रे मिळावै आन।
कहैं कबीरा सारमत, परगट किया बखान॥ ७॥
चुंबक काढै सार कूं, जो रे मिलावै रेत।
साधू काढे जीव कों, उर अन्तर के हेत॥ ८॥
रक्त छांडि पय को, गहै, ज्यौं रे गऊ का वच्छ।
औगुन छाडै गुन गहै, सार गिराही लच्छ॥ ९॥
वसुधा वन बहु भांति है, फूलैं फूल अगाध।
मिष्ट वास कबिरा गहै, बिषम गहै कोइ साध॥१०॥
कबीर सब घट आतमा, सिरजी सिरजन हार।
राम कहै सो राम सम, रहता ब्रह्म बिचार॥११॥

असारग्राही को अंग।

कबीर कीट सुगंध तजि, नरक गहै दिनरात।
असार गिराही मानवा, गहै असार हि बात॥ १॥
मच्छी मल को गहत है, निरमळ वस्तु हि छांडि।
कहै कबीर असार मन, मॉडि रहा मन मांहि॥ २॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहार।
कबीर सार हि छाँडिके, गहै असार असार॥ ३॥

रस छाँडै छूटी गहै, कोल्हू परगट देख ।
गहै असार असार को, हिरदे नाँहि विवेक ॥ ४ ॥
रस छाँडै छूही गहै, सो कोल्हू का काम ।
गहै असार हि सार तजि, निस दिन आठों जाम ॥ ५ ॥
दूध त्यागि रक्त हि गहै, लगी पयोधर जोंक ।
कहैं कबीर असार मति, छलना राखे पोख ॥ ६ ॥
लोहू गहि दूधै तजै, जोंक सुभाव परख ।
ऐसा ही नर आंधरा, सार तें जाय सरक ॥ ७ ॥
घूटी चाटी पान करै, कहै दुःख जो जाय ।
कहैं कबिर सुख ना गहै, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥
पापी पुन्न न भावई, पाप हि बहुत सुहाय ।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुरगंध तहँ जाय ॥ ९ ॥
निरमल छाँडै मल गहै, जनम असारे खोय ।
कहैं कबीर सार तजी, आपन गये बिगोय ॥१०॥

पारख को अंग ।

कबीर देखी परखि ले, परखी के मुख खोल ।
साधु असाधु जानि ले, सुनि सुनि मुख का बोल ॥ १ ॥
कबीर देखी परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय ।
जैसी अन्तर होयगी, मुख निकसैगी आय ॥ २ ॥

पहिले सब्द पिछानिये, पीछै कीजै मोल।
पारख परखै रतन को, सब्द का मोल न तोल॥ ३॥

हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट।
कसि करी बांधो गांठरी, उठि करि चालो वाट॥ ४॥

हीरा परखै जौंहरी, सब्द हि परखै साध।
कबीर परखै साधु को, ताका मता अगाध॥ ५॥

हरि हीरा जन जौंहरी, ले ले मांडी हाट।
जब रे मिलेगा पारखी, तब हीरा की साट॥ ६॥

हरि हीरा मन जौंहरी, परखि निरखि हिय लेय।
लै लुहार करि गहन में, ज्ञान चोट घन देय॥ ७॥

हरि हीरा सन मेहरा, पट्टन मान सुभट्ट।
गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी हट्ट॥ ८॥

हरि मोतियन की माल है, पोई काचे धाग।
जतन करो झटका घना, टूटेगी कहुँ लाग॥ ९॥

राम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल।
जबही मिलेगा पारखी, लेगा महँगे मोल॥ १०॥

राम रसायन प्रेम रस, अमृत सब्द अपार।
गाहक बिना न नीकसै, मानिक कनक कुठार॥ ११॥

---

६. साट—मोल तोल। ११. कनक कुठार—सोने का भंडार।

१. पा० कुजरां का।

तन संदूक मन रतन है, चुपकी दे [illegible] तालं ।
गाहक बिन नहि खोलिये, पूंजी सब्द रसाल ॥१२॥
जो जैसा उनमान का, तैसों तासों बोल ।
पोता को गाहक नहीं, हीरा गांठि न खोल ॥१३॥
जब गुन को गाहक मिले, तब गुन लाख विकाय ।
जब गुन को गाहक नहीं, कौडी बदले जाय ॥१४॥
एक ही बार परखिये, ना वा बारं बार ।
बालू तौहू किरकिरी, जो छाने सौ बार ॥१५॥
ज्ञानी जन हैं जौंहरी, करमी सकल मजूर ।
देह भार का टोकरा, लिये सीस भरपूर ॥१६॥
कबीर जग के जौंहरी, घट की आँखी खोल ।
तुला सम्हारि विवेक की, तोलै सब्द अमोल ॥१७॥
गाहक मिले तो कुछ कहूं, नातर झगडा होय ।
अन्धों आगे रोइये, अपना दीदा खोय ॥१८॥
जो हंसा मोती चुगै, कांकर क्यौं पतियाय ।
कांकर माथा ना नँवै, मोती मिले तो खाय ॥१९॥
मोती है पिन सीप का, जगर मगर उजियार ।
कहैं कबिर जब पावई, भोजन मिले इम्पर ॥२०॥
हंसा देस सुदेस का, पड़े कुदेसा आय ।
जाका चारा मोतिया, घोंघै क्यौं पतियाय ॥२१॥

१३. पोता—काच का पोत।

हंसा बगुला एक सा, मान सरोवर माँहि।
बग ढिंढोरै माछरी, हंसा मोती खाँहि ॥२२॥
गावनिया के मुख बसूं, स्रोता के मैं कान।
ज्ञानी के हिरदे बसूं, भेदी का निज मान ॥२३॥
किरतनिया मे कोस बिस, संन्यासी सों तीस।
बिरहा के हिरदे बसूं, बैरागी के सीस ॥२४॥
जो कछु है तो कुछ कहूं, कहौं तो झगडा सोइ।
दो अन्धों का नाचना, कहिये काको मोह ॥२५॥
उत्तर दक्खिन पूरब पच्छिम, चारौं दिसा समान।
उत्तम देस कबीर का, अमरापुर अस्थान ॥२६॥
हड्डी मारि हारा लहा, नौ करोड़ को हीर।
जा मारग हारा लहा, सो क्यौं तजै करीर ॥२७॥
संसै नहिं साधू मिले, मिलि मिलि करे विचार।
चोला पीछे जानिये, जो जाको बेवहार ॥२८॥
पारख कीजे साधु की, साधु हि परखै कौन।
गगन मंडल में घर करै, अनहद राखै मौन ॥२९॥
चंदन गया बिदेसरे, सब कोय कहै पलास।
ज्यों ज्यौं चूल्हे झोंकिया, त्यौं त्यौं अधिक सुबास ॥३०॥
चंदन रोया रात भरि, मेरा हितू न कोय।
जिस को राख्या पेट में, सो फिर बैरी होय ॥३१॥

२७. हड्डी से अभिप्राय तृष्णा से है।

चंदन काटा जड़ खनी, बांधि लिया सिर भार।
कालि जो पंछी बसि गया, तिसका यह उपकार ॥३२॥

पाँच पदारथ पेलिया, कांकर लीन्हा हाथ।
जोड़ी बिछुरी हंस की, चला बुगाँ के साथ ॥३३॥

हंसा तो महा रान का, आया थलिया माँहि।
बगुला करि करि मारिया, मरम जु जानै नाँहि ॥३४॥

हंस बुगा के पावना, कोइ एक दिन का फेर।
बगुला काहे गरविया, बैठा पंख बिखेर ॥३५॥

बगुला हंस मनाय ले, नीरां रचा बहोर।
या बैठा तू ऊजला, वासौं प्रीति न तोर ॥३६॥

एक अचंभौ देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहिरी, कौड़ी बदले जाय ॥३७॥

पायो पर पायो नहीं, हीरा हड्डी मार।
कहँ कबिर यों ही गयो, परखे बिना गँवार ॥३८॥

कबिरा चुनता कन फिरै, हीरा पाया बाट।
ताको मरम न जानिया, ले खलि खाई हाट ॥३९॥

हीरा का कछु ना घटा, घटा जु बेचनहार।
जनम गँवायो आपनो, अंधे पसू गँवार ॥४०॥

हिरदे हीरा ऊपजै, नाभि कँवल के बीच।
जो कबहू हीरा लखै, कदै न आवै मीच ॥४१॥

हीरा साहिब नाम है, हिर्दे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥४२॥

बाद बके दम जात है, सुरति निरति ले बोल।
नित प्रति हीरा सब्द का, गाहक आगे खोल ॥४३॥

मान उनमान न तोलिये, सब्द न मोल न तोल।
मूरख लोग न जानसी, आपा खोयो बोल ॥४४॥

कबीर गुदरी बीखरी, सौदा गया बिकाय।
खोटा बांधा गांठरी, खरा लिया नहिं जाय ॥४५॥
कबीर खांड हि छांडि के, कांकर चुनि चुनि खाय।
रतन गंवाया रेत में, फिर पाछे पछिताय ॥४६॥

कबीर ये जग आंधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी चाम चटाय ॥४७॥
पप्पा सौं परिचै नहीं, दद्दा रहिगा दूर।
लल्ला लौ लागी रहै, नन्ना सदा हजूर ॥४८॥
पैंडे मोती बीखरा, अंधा निकसा आय।
जोति बिना जगदीस की, जगत उलाँघा जाय ॥४९॥
सागर में मानिक बसै, चीन्हत नाहीं कोय।
या मानिक कूं सो लखै, जाको गुरुगम होय ॥५०॥

४५. गुदरी—बाजार, अठवाडिया। ४८. पप्पा—परमेश्वर। दद्दा—दान। लल्ला—लेना। नन्ना—नहीं।

अनजाने का कूकना, कूकर का सा सोर।
ज्यौं अंधियारी रैन में, साह न चीन्है चोर ॥५१॥

यै भारन सब ज्ञानिया, कथत बकत दिन जाय।
साह चोर चीन्है नहीं, कागा हंस लगाय ॥५२॥

कोइ कुरंग जब चित मिलै, रहै सब्द लौ लाय।
भैंस के आगे बीन ज्यौं, चढ बैठी पगुराय ॥५३॥

हंस काग की परख को, सतगुरु दई बताय।
हंसा तो मोती चुगै, काग नरक पर जाय ॥५४॥

परदेसाँ खोजन गया, घर हीरा की खान।
काच मनी का पारखी, क्यौं पावै पहिचान ॥५५॥

मैं जानूं हरि दूर है, हरि है हिरदे माँहि।
आडी टाटी कपट की, तासे दीसत नाँहि ॥५६॥

जाको आडा अंतरा, ताको दिसै न कोय।
जान बूझ जड है रहै, बल तजि निरबल होय ॥५७॥

कोइ एक ज्ञानी पारखी, परखै खरा रु खोट।
कहैं कबिर तब बाँचही, रहै नाम की ओट ॥५८॥

वक्ता ज्ञानी जगत में, पंडित कवि अनंत।
सत्य पदारथ पारखी, बिरला कोई संत ॥५९॥

ज्ञान जीव को धर्म है, भर्म त्रास जो मेट।
साँच पंथ पावै परखि, जब तिहि सतगुरु भेट ॥६०॥

हीरा पड़ा सु गैल में, दुनिया जावें डोल ।
जहँ हीरा का पारखी, तहँ हीरा का मोल ॥६१॥
अंधे औघट जात हैं, चारों लोचन नाँहि ।
संत उपकारी ना मिला, छोड़े बस्ती माँहि ॥६२॥
गौ को अंधी मति कहो, गौ है स्याम सुपेन ।
बछुवा था सो मरि गया, तऊ न छाड़ै हेत ॥६३॥
रंक कनक चुनता फिरै, वस्तू आई हाथ ।
ताका मरम न जानिया, ले देखाया हाट ॥६४॥
जबलग लाल समुद्र में, तबलगि लखी न जाय ।
निकसि लाल बाहिर भया, महंगे मोल बिकाय ॥६५॥
हीरा बनिजै जौंहरी, ले ले मांडा हाट ।
जबहि मिलैंगे पारखी, तब हीरों की साट ॥६६॥
नाम हिरा धन पाइया, औ होरा धन मोल ।
चुनि चुनि बांधो गांठरी, पल पल देखो खोल ॥६७॥
लाखों में दीसै नहीं, कोटिन में जाय देख ।
कोटिन में कोइ एक है, जो जानै कोइ लेख ॥६८॥
साधु परखिये सब्द में, रहनी तैसी भास ।
नाना विधि के पुहुप हैं, फूलै तैसी बास ॥६९॥

---

६४. कनक—कनकी, ककरी ।

वेली को अंग ।

आंगन वेलि अकास फल, अनव्याही का दूध ।
ससा सिंग के धनुस को, खैंच बाझ सुत मूध ॥ १ ॥
आंगन वेली अलख है, फल करना अभिलास ।
गगन मंडल में सोधि ले, सतगुरु बोलै साख ॥ २ ॥
अनव्याही आकास है, सुषमनि सुरति बिलोय ।
अहनिसि तो तारी लगी, प्रेम दूर भरि होय ॥ ३ ॥
छाया माया रहित है, सुन्डम है अनसूत ।
आव गवन सो रहित है, सोऊ बाझ का पूत ॥ ४ ॥
ससा सिंघ के धनुस का, पाया सब्द विवेक ।
भय छूटा निरभय भया, सब घट देखा एक ॥ ५ ॥
सहज सुन्न में खर पड़ी, वन में लागी लाय ।
कबीर दाधा होय तब, आस पास मिटि जाय ॥ ६ ॥
पारधिया वन लाइया, जला जु वन खंड घास ।
बीज जला वेली जली, नहीं उगन की आस ॥ ७ ॥
मूल जला वेली जली, हुआ बीज का नास ।
सुरति समानी सब्द में, नहि ऊगन की आस ॥ ८ ॥
जो लगै तो ब्रह्म में, अन्त कहूँ नहि जोय ।
हरिरस सींची वेलडी, कधी न कड़वी होय ॥ ९ ॥

जो मन में तो ब्रह्म में, अनत न कहूं समाय।
हरिरस सींची बेलड़ी, कदै न निस्फल जाय ॥१०॥
सिद्ध सहज ही खिर पड़ी, अगन जु लागी माँहि।
सिद्धि बेलि दोऊ जरी, अब फिर ऊगै नाँहि ॥११॥
जो काटै तो डहडही, सींचै तो कुम्हिलाय।
इस गुनवंती बेलि का, कछु गुन कहा न जाय॥१२॥
बिना बीज का वृक्ष है, बिन धरती अंकूर।
बिन पानी का रंग है, तहाँ जीव का मूर ॥१३॥

कथनी को अंग।

कथनी कथै तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलाधूत का कोट ज्यों, देखत ही ढहि जाय ॥ १ ॥
कथनी काची है गई, करनी करी न सार।
स्रोता बक्ता मरि गया, मूरख अनँत अपार ॥ २ ॥
कथनी मीठी खांड सी, करनी विष की लोय।
कथनी से करनी करै, विष से अंमृत होय ॥ ३ ॥
कथनी बदनी छांड दे, करनी सों चित लाय।
नर को जल प्याये बिना, कबहूं प्यास न जाय ॥ ४ ॥

---

१३. बिना बीज का वृक्ष—अविनाशी पुरुष। बिनधरती अकूर—ज्ञान। बिन पानी का रंग—माया।

कथनी कथि फूल्या फिरै, मेरे हियै उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार :
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कहै कबिर करनी भली, उतरै भौजल पार ॥ ६ ॥
कथनी कूँ रीझूँ नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ पकी, महल पधारे पीव ॥ ७ ॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
विरह बान जिनके लगा, तिनके बिकल सरीर ॥ ८ ॥
कथनी को तो भानि के, करनी देय बहाय।
दास कबीरा यौं कहै, ऐसा है तो आय ॥ ९ ॥
कथते हैं करते नहीं, मुँह के बड़े लबार।
मुँह काला तो होयगा, साहिब के दरबार ॥१०॥
कथते हैं करते सही, साँच सरोतर सोय।
साहिब के दरबार में, आठ पहर सुख होय ॥११॥
कुकस कूटै कन बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्यों बंदुक गोली बिना, भड़क न मारै आन ॥१२॥
आप राखि परमोधिये, सुनै ज्ञान अकराधि।
तुस कूटै कन बाहिरी, कछु न आवै हाथि ॥१३॥
पद जोरै साखी कहै, साधन पढ़ि गइ रोस।
काढा जल पीवै नहीं, काढि पीवन की होस ॥१४॥

११. सरोतर—सीधा। १३. अकराय—बहुत।

मारग चलते जो गिरै, ताको नाहीं दोस।
कहैं कबिर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥१५॥
स्रोता तो घरही नहीं, वक्ता बकै सो बाद।
स्रोता वक्ता एक घर, तब कथनी का स्वाद ॥१६॥
कथते बकते पचि मुये, मूरख कोटि हजार।
कथनी काची पड़ि गई, रहनि रहै सो सार ॥१७॥
कुल करनी छूटे नहीं, ज्ञान हि कथै अगाध।
कहैं कबिर वा दास को, मुख देखै अपराध ॥१८॥
रहनी के मैदान में, कथनी आवै जाय।
कथनी पीसै पीसना, रहनी अमल कमाय ॥१९॥
जैसी करनी आपनी, तैसा ही फल लेय।
कूरे करम कमाय के, साईं दोष न देय ॥२०॥
राम झरूखे बैठि के, सब का मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी, तैसा तिन को देय ॥२१॥
साहेब के दरबार में, क्यों करि पावै दाद।
पहिले बुरा कमाय के, बाद करै फरियाद ॥२२॥
दाता नदिया एक सम, सब काहू को देत।
हाथ कुंभ जिसका जिसा, तैसा ही भरि लेत ॥२३॥
[1]कबीर हमने घर किया, गलकट्टों के पास।
करेगा सो [2]पाइगा, [3]तुम क्यूं भये उदास ॥२४॥

१. पा० कबीर का घर चौक में। २. पा० भरेगा। ३. पा० तू क्यों फिरे उदास।

गुरु हमारी सीख सुन, जो तूं हूआ सीप।
करूं करूं तो क्या करै, कीया है सो देख ॥२५॥
जब तूं आया जगत में, लोग हँसे तूं रोय।
ऐसी करनी ना करो, पिछे हसे सब कोय ॥२६॥
जैसी कथनी मैं कथी, तैसी कथै न कोय।
करनी सें साहिब मिले, कथनी झूठी होय ॥२७॥
पशु की होती पनहिया, नरका कछू न होय।
नर उत्तम करनी करै, नर नारायन होय ॥२८॥
सम ही ते सब कछु बनै, बिन सम मिले न काहि।
सीधी अंगुली घी जम्यो, कबहूं निकसै नाँहि ॥२९॥
कैसा भी सामर्थ हो, बिन उद्यम दुख पाय।
निकट असन बिन कर चले, कैसे मुख में जाय ॥३०॥
सम ही ते सब होत है, जो मन राखै धीर।
सम ते खोदत कूप ज्यूं, थल में प्रगटे नीर ॥३१॥
कथनी कथै अगाध की, ज्यों अकास का गीध।
चारा वाका भूमि पर, उडे भया क्या सीध ॥३२॥
करनी करै सो पूत हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥३३॥

लगनी को अंग।

लौ लागी तब जानिये, छूटि न कबहूं जाय।
जीवत लौ लागी रहै, मूये तहँ समाय ॥ १ ॥
लौ लागी तो डर किसा, आप विसरजन देह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु सों जुड़ै सनेह ॥ २ ॥
लौ लागी तब लौ लगूं, कहूं न आऊं जाँव।
लै बूडूं तो लै तरूं, लै लै तेरा नाँव ॥ ३ ॥
जैसी लौ पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपने देह को को गिनै, वारै पुरुष करोर ॥ ४ ॥
लै पाऊं तो लै रहूं, लेन कहूं नहि जाँव।
लै बूडै सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥ ५ ॥
जैसी लौ प्रथमहि लगी, तैसी ही रहि जाय।
जाके हिरदै लौ बसै, सो मोहि माँहि समाय ॥ ६ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, वार पार है जाय ॥ ७ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी नांही एक।
लागी सोई जानिये, पडे कलेजे छेक ॥ ८ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोइ सराह।
लागी तब ही जानिये, उठे कराह कराह ॥ ९ ॥

---

३. लै–लगनमें। लै–लेकर। १२. लोयन–लोचन।

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१०॥
जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले री।
कलह कलपना मेटि कर, चरनों चित दे री ॥११॥
सोऊँ तो सुपनै मिलूँ, जागूं तो मन माँहि।
लोयन राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूं नाँहि ॥१२॥
और सुरति बिसरी सकल, लौं लागी रहै संग।
आव जाव कासों कहूं, मन राता हरि रंग ॥१३॥
जबलग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लौं लागी कल ना पड़ै, अब बोले न हदीस ॥१४॥
ग्रंथन माहीं अर्थ है, अर्थ माँहि है मूल।
लौं लागी निरभय भया, मिटि गया संसै सूल ॥१५॥
गंग जमुन के बीच में, सहज सुन्न लौ घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनिजन जोवै बाट ॥१६॥
जिहि बन सिंघ न संचरै, पच्छी उड़ि ना जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहाँ कबिर लौ लाय ॥१७॥
काय कमंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर।
पीवत तृषा न भाजई, तिरषावंत कबीर ॥१८॥

१४ हदीस-कुरान। अर्थात् शिक्षा की आवश्यकता नहीं।

१६. गंगजमुन-इंगला पिंगला। १७ सिंह से तात्पर्य जीव। औ पच्छी से मन है।

सुरति ढीकुली नेज लौ, मन नित ढोलन हार।
कमल कूप में ब्रह्म जल, पीवै बारंबार ॥१९॥
मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हान।
थाहत थाह न पावई, सो पूरा रहमान ॥२०॥
नाम न जानै गाँव का, पीछै लागा जाय।
कालिह जो कांटा भांगसी, पहिले क्यों न खुराय ॥२१॥
सीख भई संसार सो, चला जु साँई पास।
अविनासी मोहि ले चला, पुरई मेरी आस ॥२२॥
इन्द्र लोक अचरज भयो, ब्रह्मा पड़ा विचार।
कबीर चाला राम पै, कौतिकहार अपार ॥२३॥
सद पानी पाताल का, काढि कबीरा पीव।
बासी पावक पड़ि मुआ, विषय बिलंबा जीव ॥२४॥
कबीर हरि का डरपता, ऊन्हा धान न खाव।
हिरदा भीतर हरि बसै, दाझन ते जुडराव ॥२५॥
अब तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम।
पहिले काच कथीर था, फिरता ठाम हि ठाम ॥२६॥
भौसागर जल विष भरा, मन नहि बाँधे धीर।
सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कबीर ॥२७॥
भला सुहेला ऊतरा, पूरा मेरा भाग।
सत्तनाम नौका गहा, पानी पग नहि लाग ॥२८॥

१९. नेज-रस्सी। मन को डोल बनाकर सुरती की ढेकली और लव की रस्सी बनानी चाहिये। २८. सुहेल-अरब देशवालों का एक मांगलिक तारा।

सुपना में सांई मिला, सोवत लिया जगाय ।
आंखि न मीचौं डरपता, मति सुपना ह्वै जाय ॥२९॥
कबीर केसो की दया, संसे मेला खोय ।
जो दिन गया हरि भजन बिन, सो दिन सालै मोय ॥३०॥
कबीर जांचन जाय था, आगे मिला अजाच ।
आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साच ॥३१॥
लौं लागी निरभय भया, भरम भया सब दूर ।
वन वन में कहँ ढूंढता, राम इहां भरपूर ॥३२॥

निजकर्ता को अंग ।

अछै पुरुष एक पेड है, निरँजन वाकी डार ।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
नाद बिंदु ते अगम अगोचर, पांच तत्त्व ते न्यार ।
तीन गुनन् ते भिन्न है, पुरुष अलेख अपार ॥ २ ॥
तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पड़ा संसार ।
कहैं कबिर निजनाम बिन, कैसे उतरै पार ॥ ३ ॥
हरा होय सूखै नहीं, यों तिरगुन विस्तार ।
प्रथमहि ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार ॥ ४ ॥
सब्द सुरति के अंतरै, अलख पुरुष निरवान ।
लखनेहारे लखि लिया, जाको है गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥

राम क्रिश्न औतार हैं, इन की नाहीं मांड।
जिन साहिब सृष्टि किया, किनहु न जाया रांड ॥ ६ ॥
राम क्रिश्न को जिन किया, सो तो करता न्यार।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहैं कबीर विचार ॥ ७ ॥
संपुट माहिं समाइया, सो साहिब नहिं होय।
सकल मांड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय ॥ ८ ॥
साहेब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूं, साहेब खरा रिसाय ॥ ९ ॥
जाके मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तें पातला, ऐसा तत्व अनूप ॥१०॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाच तत्व के भीतरे, जाका यह संसार ॥११॥
निबल सबल जो जानि के, नाम धरा जगदीस।
कहैं कबिर जनमै मरै, ताहि नऊं नहिं सीस ॥१२॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वही पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥१३॥
समुँद पाटी लंका गयो, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त अचै गयो, इन में को करतार ॥१४॥
गिरिवर धार्यो कृस्नजी, द्रोना गिरि हनुमंत।
सेसनाग धरनी धरी, इन में को भगवंत ॥१५॥

अविगति पीसै पीसना, गौसा बिनै सुदाय ।
निरंजन तो रोटी करै, गैबी बैठा खाय ॥१६॥

तीन देव को सब कोइ ध्यावै, चौथे देव का मरम न पावै ।
चौथा छोड पंचम चित लावै, कहैं कबिर हमरै ढिग आवै ॥१७॥

जो ओंकार निश्चय किया, यह करता मति जान ।
साचा सब्द कबीर का, परदे में पहिचान ॥१८॥

अलख अलख सब कोउ कहै, अलख लखै नहि कोय ।
अलख लखा जिन सब लखा, लखा अलख नहि होय ॥१९॥

कथत कथत जुग थाकिया, थाकी सबै खलक ।
देखत नजरि न आइया, हरि को कहा अलख ॥२०॥

तीन लोक सब राम जपत, जानि मुक्ति को धाम ।
रामचंद्र के वसिष्ठ गुरु, काह सुनायो नाम ॥२१॥

जग में चारों राम हैं, तीन राम व्यौहार ।
चौथा राम निज सार है, ताका करो विचार ॥२२॥

एक राम दसरथ घर डोलै, एक राम घट घट में बोलै ।
एक राम का सकल पसारा, एक राम तिरगुन ते न्यारा ॥२३॥

कौन राम दसरथ घर डोलै, कौन राम घट घट में बोलै ।
कौन राम का सकल पसारा, कौन राम तिरगुन ते न्यारा ॥२४॥

१६. अविगति-माया । गौसा—कडा । गैबी—अगम पुरुष ।
अर्थात्—माया, ईश्वर और निरंजन जगत के कारणकलाप हैं और गैबी साक्षी पुरुष है ।

आकार राम दसरथ घर डोले, निराकार घट घट में बोले।
बिंदु राम का सकल पसारा, निरालंब सबही ते न्यारा ॥२५॥

जाकी थापी मांड है, ताकी करहु सेव।
जो थापा है मांड का, सो नहिं हमरा देव ॥२६॥

रहै निराला मांड ने, सकल मांडतिहि मांहि।
कबीर सेवै तासुको, दूजा सेवै नाँहि ॥२७॥

चार भुजा के भजन में, भलि पड़े सब संत।
कबीर सुमिरे तासु को, जाके भुजा अनंत ॥२८॥

काटे बंधन विपति में, कठिन किया संग्राम।
चीन्हो रे नर प्रानिया, गरुड़ बड़े की राम ॥२९॥

कहैं कबिर चित चेतहु, सब्द करो निरुवार।
राम हि करता कहत हैं, भूलि पर्यो संसार ॥३०॥

जाहि रोग उत्पन्न भया, औषधि देय जु ताहि।
वैद्य ब्रह्म बाहिर रहा, भीतर धसा जु नाहि ॥३१॥

असुर रोग उतपति भया, औतार औषधि दीन्ह।
कहैं कबीर या साखि को, अरथ जु लीजो चीन्ह ॥३२॥

कबीर कारज भक्ति के, मुक्ति हि दीन्ह पठाय।
कहैं कबीर बिचारि के, ब्रह्म न आवै जाय ॥३३॥

हम कर्ता सब सृष्टि के, हम पर दूसर नाँहि।
कहैं कबिर हमही चीन्हे, नहि चौरासी माँहि ॥३४॥

अनँत कोटि ब्रह्मंड का, एक रती नहि भार।
साहब पुरुष कबीर है, कुल का सिरजनहार ॥३५॥
साहब सब का बाप है, बेटा किसीका नाहि।
बेटा होकर ऊतरा, सो तो साहिब नाहि ॥३६॥
पिंड प्रान नहि तासु में, दस देही नहि तीन।
नाद बिन्द आवै नहीं, पांच पचीस न तीन ॥३७॥
राम राम तुम कहत हो, नहि सो अकथ सरूप।
वह तो आये जगत में, भये दसरथ घर भूप ॥३८॥
रैख रूप बिनु बेद में, औ कुरान बेचून।
आपस में दोऊ लड़ै, जाना नहि दोहून ॥३९॥
सहज सुन्न में सांइया, ताका वार न पार।
धरा सकल जग धरि रहा, आप रहा निरधार ॥४०॥
देखन सरिखी बात है, कहने सरखी नाँहि।
अदभुत खेला पेखि के, समुझि रहो मन माँहि ॥४१॥

कसौटी को अंग।

संत सरवस दे मिले, गुरू कसौटी खाय।
राम दोहाइ सत कहूँ, फेरि न उदर समाय ॥ १ ॥
खरी कसौटी राम की, काचा टिकै न कोय।
राम कसौटी जे सहै, जीवत मिरतक होय ॥ २ ॥

१. पा० औतरे।

खरी कसौटी तोलतौं, निकसि गई सब खोट ।
सतगुरु सैना सब हनौ, सब्द बान की चोट ॥ ३ ॥
हीरा पाया पारखी, वन महँ दीन्हा आन ।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचान ॥ ४ ॥
सोने रूपे घाह दइ, उत्तम हमरी जात ।
वन ही में की घूघची, तोली हमरे साथ ॥ ५ ॥
तोल बराबर घूंघची, मोल बराबर नाँहि ।
मेरा तेरा पटतरा, दीजै आगी माँहि ॥ ६ ॥
विपति भलि हरि नाम लेत, काय कसौटी दुख ।
नाम बिना किस कामकी, माया संपति सूख ॥ ७ ॥
कांच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम ।
कहँ कबिर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥ ८ ॥
कसत कसोटी जो टिकै, ताको सब्द सुनाय ।
सोइ हमारा बस है, कहै कबिर समुझाय ॥ ९ ॥

सूक्ष्म मार्ग को अंग।

कबीर मारग कठिन है, रिषि मुनि बैठे थाक ।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गा सतगुरु की साक ॥ १ ॥
सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।
मोटा भाग कबीर का, तहाँ रहा लौ लाय ॥ २ ॥

सुर नर थाके मुनिजना, थाके बिस्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढि गया, सतगुरु के उपदेस ॥ ३ ॥
अगम हूँ ते जो अगम है, अपरम पार अपार।
वहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निरधार ॥ ४ ॥
अगम पंथ मन थिर करै, बुद्धि करै परवेस।
तन मन धन सब छाँडि कै, तब पहुँचै वा देस ॥ ५ ॥
अगम हता सो गम किया, सतगुरु दिया बताय।
कोटि कल्प का पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥ ६ ॥
अब हम चले अमरापुरी, टारै टरै टाट।
आवन होय सो आइयो, सूली ऊपर बाट ॥ ७ ॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करै, आठ पहर हुसियार ॥ ८ ॥
गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार।
सूली ऊपर साथरा, जहाँ बुलावै यार ॥ ९ ॥
यार बुलावै भाव सों, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकिहै पाय ॥१०॥
जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साँई तो सनमुख खडा, लाग कबीरा पाय ॥११॥

७. टारै—प्रपंच को हटाकर। ८. सूली ऊपर—कठिन मार्ग है।
९. गगनमंडल में सुरति लगाकर हृदय में सतगुण को धारण करें।
१०. धन—प्रिया, सुरति। पिव—साहब।

जो आवै तो जाय नहि, जाय तो कहँ समाय ।
अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥१२॥

जो आवै तो जाय नहि, जाय तो आवै नाँहि ।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माँहि ॥१३॥

कौन देस कहाँ आइया, जानै कोई नाँहि ।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परे जग माँहि ॥१४॥

नाँव न जानै गांवका, बिन जानै कहँ जांव ।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव ॥१५॥

सतगुरु दीन दयाल है, दया करि मोहि आय ।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुंचा जाय ॥१६॥

उत ते कोई न आइया, जासों बूझूं धाय ।
इत ते सब कोय जात है, भार लदाय लदाय ॥१७॥

उत ते सतगुरु आइया, जाकी बुधि है धीर ।
भौसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर ॥१८॥

सब को पूछत मैं फिरा, रहनि कहै नहि कोय ।
प्रीत न जोड़े नाम सों, रहनि कहां से होय ॥१९॥

चलन चलन सब कोय कहै, मोहि अंदेसा और ।
साहिब सों परिचै नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर ॥२०॥

जाने की तो गम नहीं, रहने को नहि ठौर ।
कहैं कबिर सुन साधवा, अबिगत की गति और ॥२१॥

जहां न चिऊंटी चढ़ि सकै, राई ना ठहराय ।
मनुवा तहां ले राखिया, सोई पहुँचा जाय ॥२२॥
वह मारग कित को गया, मारग पहुंचे साद ।
मैं तो दोऊ गहि रहा, लोभ बढ़ाई वाद ॥२३॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस ।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबिर संदेस ॥२४॥
घाट हि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निरमल होय ॥२५॥
चलते चलते पगु थके, निपट करारी कोस ।
बिन दयाल झलका परे, काको दीजै दोस ॥२६॥
जहँा चतुरकी गम नहीं, तहाँ मुरख किमि जाय।
वाह विधाता नाथ है, काग कपूर हि खाय ॥२७॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, वाहि देस की सीच ।
अबही कहाँ तिगाडिये, बेडी पायन बीच ॥२८॥
करता की गति अगम है, चल गुरुके उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचेगो परवान ॥२९॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, अब कछु कहा न जाय।
सिंधु समाना बुँदमें, दरिया लहर समाय ॥३०॥

२५. घाट—वेद, मत, वर्ण और आश्रम की मर्यादा। औघट—सनातन, त्रिगुणातीत ।

२७. काग कपूर—अनधिकारी सत्य मार्ग को पकडना चाहते हैं।

२८. तिगाडना—लंबी चौडी बातें बनाना।

प्रान पिंड को तजि चला, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता जामै मरै, सूच्छम लखै न कोय ॥३१॥
प्रान पिंड को तजि चला, छूटि गया जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३२॥
सूक्ष्म सुरति का मरम है, जीवन जानत जाल।
कहैं कबीरा दूरि कर, आतम आदि हि काल ॥३३॥
अंतःकरन ही मन नहीं, मन हि मनोरथ माँहि।
उपजत उपजत जानिये, बिनसत जानै नाँहि ॥३४॥
साखी सैन सही करो, श्रवण सुनी ना जाय।
जैसे तेजो वायको, नाद हि कव लै जाय ॥३५॥
इती साईं सब सुन लई, सैन सुनी नहि जाय।
नैन बैन दोइ थके, सैन हि माहि लखाय ॥३६॥

---

३१. स्थूल जन्म और मरण से सारा संसार परिचित है; परन्तु सूक्ष्म जन्म और मरण को कोई नहीं जानता। वह सूक्ष्म जन्म और मरण मनुष्य के जीते जी प्रतिदिन ही होता है। नई २ वासनाओं को प्रतिदिन हृदय में स्थान देना ही सूक्ष्म जन्म और मरण है।

३२. दिन में सौ सौ वार—अनेक विषयों में चित्त को अटकाना ही दिन में सौ सौ वार मरना है।

३५. जिस प्रकार हवा का झपाटा शब्द को उड़ा ले जाता है, इसी प्रकार मन की चंचलता श्रवण इन्द्रिय से पूरा ज्ञान नहीं होने देती, इस लिये साखी में बताई हुई सैन से निजानुभव करना चाहिये।

सुरज किरन रोकी रहै, कुंभ नीर ठहराय ।
सुरति जु रोकी ना रहै, जहँ पुरुष तहँ जाय ॥३७॥
कवीर दीपक जोइये, देखा अपरं देव ।
चार वेद की गम नहीं, तहाँ कवीरा सेव ॥३८॥
पहुंचेंगे तो कहेंगे, मीलेंगे उस ठाय ।
अजहूं मेरा समुंद में, वोलि विगूचे काय ॥३९॥
अगम पंथ कूं पग धरै, सो कोइ विरला संत ।
मत वाडा में पडि गये, ऐसे जीव अनंत ॥४०॥
मत वाडा में पडि गये, मूरख वांरै बाट ।
ऐसा कवहुं ना मिले, उलटे घाटै घाट ॥४१॥

भाषा को अंग ।

संस्कृत है कूप जल, भाषा वहता नीर ।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥ १ ॥
संस्कृत हि पंडित कहै, वहुत करै अभिमान ।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ अजान ॥ २ ॥
संस्कृत हि संसार में, पंडित करै वखान ।
भाषा भक्ति दृढावही, न्यारा पद निरवान ॥ ३ ॥

पूरन बानी बेद की, सोहत परम अनूप।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥ ४ ॥
बानी नौं पानी भरै, चारों बेद मजूर।
चूका सेवक बंदगी, किया चाकरी दूर ॥ ५ ॥
बेद कहै मैं कछू न जानूँ, स्वाँसा के संग आय।
दरस हेत करूँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥ ६ ॥
बेद हमारा भेद है, हम बेदोंके मांहि।
जौन भेद में मैं बसूं, बेदो जानत नांहि ॥ ७ ॥

पंडित को अंग।

पंडित और मसालची, दोनौं सूझत नाँहि।
औरन को करै चाँदना, आप अँधेरे माँहि ॥ १ ॥
पंडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर का ज्ञान।
औरन सगुन बतावहीं, आपन फंद न जान ॥ २ ॥
पंडित पोथी बांधि के, दे सिरहाने सोय।
वह अच्छर इन में नहीं, हसि दे भावै रोय ॥ ३ ॥
पंडित पोढौ पातरा, काजी छाँड कुरान।
वह तारीख बताय दे, थे न जिमीं असमान ॥ ४ ॥

४. पातरा—पोथी के पान।

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु चोर।
जिस पढ़ने साहिब मिले, सो पढ़ना कछु और ॥ ५ ॥
पढ़ै गुनै सीखै सुनै, मिटी न संसै सूल।
कहैं कबिर कासों कहूँ, येही दुख का मूल ॥ ६ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
[1]एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७ ॥
कबीर पढ़ना दूर करु, पोथी देहु बहाय।
बावन अच्छर सोधि कै, सत्तनाम लौ लाय ॥ ८ ॥
कबीर पढ़ना दूर करु, अति पढ़ना संसार।
पीर न ऊपजै जीव की, क्यों पावै करतार ॥ ९ ॥
मैं जानौं पढ़ना भला, पढ़ने ते भल जोग।
सत्तनाम सों प्रीति कर, भावै निंदो लोग ॥१०॥
नहि कागद नहि लेखनी, निह अच्छर है सोय।
बांचहीं पुस्तक छोड़ि कै, पंडित कहिये सोय ॥११॥
धरती अंबर ना हता, को पंडित था पास।
कौन मुहरत थापिया, चाँद सुरज आकास ॥१२॥
कबीर ब्राह्मण की कथा, सो चोरन की नाव।
सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ ले जाव ॥१३॥
कबीर ब्राह्मण बूड़िया, जनेऊ केरे जोर।
लख चौरासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोर ॥१४॥

१. पा० ढाई।

ब्राह्मन गुरु है जगत का, संतन के गुरु नाँहि।
अरुझि परुझिके मरि गये, चारों वेदों माँहि ॥१५॥

ब्राह्मन गदहा जगत का, तीरथ लादा जाय।
यजमान कहि मैं पुन किया, वह मेहनत का खाय ॥१६॥

ब्राह्मन ते गदहा भला, आन देव ते कुत्ता।
मुलना ते मुरगा भला, सहर जगावै सुत्ता ॥१७॥

कलि का ब्राह्मन ममखरा, ताहि न दीजै दान।
कुटुंब सहित नरकै चला, साथ लिया यजमान ॥१८॥

पढ़ै पढ़ावै कछु नहीं, ब्राह्मन भक्ति न जान।
व्याहै श्राद्धे कारनै, बैठा मूंडा तान ॥१९॥

पारोसीमूं रूठना, तिल तिल सुखकी हान।
पंडित भया सरावगी, पानी पीवै छान ॥२०॥

चारि अठारह नव पढ़ी, छौ पढ़ि खोया मूल।
कबीर मूल जानै बिना, ज्यौं पंछी चंडूल ॥२१॥

लिखना पढ़ना चातुरी, यह संसारी जेव।
जिस पढ़ने सों पाइये, पढ़ना किसी न सेव ॥२२॥

चारि वेद पढ़वो करैं, हरि से नाहीं हेत।
माल कबीरा ले गया, पंडित ढूंढे खेत ॥२३॥

पढ़ी गुनी पाठक भये, समुझाया संसार।
आपन तो समुझै नहीं, वृथा गया अवतार ॥२४॥

पढी गुनी ब्राह्मन भये, कीर्ति भई संसार ।
वस्तू की तो समुझ नहीं, ज्यूं खर चंदन भार ॥२५॥

पढत गुनत रोगी भयो, बढा बहुत अभिमान ।
भीतर ताप जु जगत का, घडी न पडती सान ॥२६॥

पढे गुने सब वेद को, समुझे नहीं गमार ।
आसा लागी भरमकी, ज्यूं करोल की जाल ॥२७॥

पंडित पढने वेद को, पुस्तक हसती लाद ।
भक्ति न जाने राम की. सबे परीक्षा बाद ॥२८॥

पढते गुनते जनम गया. आसा लागी हेत ।
बोया बीज हि कुमतिने, गया जु निर्मल खेत ॥२९॥

पादे पढि और समुझावइ, खोजि न आपं सरीर ।
आपहि संशयमें पड़े, यूं कहि दास कबीर ॥३०॥

चतुराई पोपट पढी, पडि सो पिंजर माँहि ।
फिर परमोधे और को, आपन समुझे नाँहि ॥३१॥

हरि गुन गावे हरपिके, हिरदय कपट न जाय ।
आपन तो समुझे नही, और हि ज्ञान सुनाय ॥३२॥

ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पंडित कवी अनेक ।
राम रता इंद्री जिता, कोटी मध्ये एक ॥३३॥

कुल मारग छोड़ा नहीं, रह मायामें मोह ।
पारस तो परसा नहीं, रहा लोह का लोह ॥३४॥

आतम तत्व जानै नहीं, कोटिक कथे जु ज्ञान।
तारे तिमिर न भागहीं, जब लग उगे न भान ॥३५॥
अजहूं तेरा सब मिटै, गुरु मुख पावे भेद।
पंडित पास न बैठिये, बैठि न सुनिये वेद ॥३६॥

निंदा को अंग।

निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलै हजार।
इक निंदक के सीस पर, लाख पाप का भार ॥ १ ॥
निंदक तें कुत्ता भला, हट कर मांडै रार।
कुत्ते से क्रोधी बुरा, गुरु दिलावै गार ॥ २ ॥
निंदक तो है नाक बिन, सोहै नकटों माहि।
साधूजन गुरु भक्त जो, तिनमें सोहै नाँहि ॥ ३ ॥
निंदक तो है नाक बिन, निस दिन विष्ठा खाय।
गुन छाँडै औगुन गहै, तिसका यही सुभाय ॥ ४ ॥
निंदक नेरै राखिये, आंगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय ॥ ५ ॥
निंदक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान।
निरमल तन मन सब करै, बकै आन ही आन ॥ ६ ॥

निंदक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि।
कवीर सतगुरु पाइया, निंदक के परसादि ॥ ७ ॥
कवीर निंदक मरि गया, अब क्या कहिये जाय।
ऐसा कोई ना मिले, बीड़ा लेय उठाय ॥ ८ ॥
सातों सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ।
परनिंदा नाहीं करै, सो कोय विरला दीठ ॥ ९ ॥
दोष पराया देखि करि, चले हसन्त हसन्त।
अपना याद न आवई, जाका आदि न अन्त ॥१०॥
तिनका कबहूँ न निन्दिये, पाँव तलै जो होय।
कबहूँ उड़ि आँखों पड़े, पीर घनेरी सोय ॥११॥
माखी गहै कुवास को, फूल वास नहि लेय।
मधु माखी है साधुजन, गुनहि वास चित देय ॥१२॥
कबीर मेरे साध की, निंदा करो न कोय।
जो पै चंद्र कलंक है, तउ उजियारी होय ॥१३॥
जो कोय निन्दै साध को, संकट आवै सोय।
नरक जाय जनमै मरै, मुक्ति कबहुँ नहि होय ॥१४॥
जो तूं सेवक गुरुन का, निंदा की तज बान।
निंदक नेरे आय जब, कर आदर सनमान ॥१५॥
काहू को नहि निन्दिये, चाहै जैसा होय।
फिर फिर ताको बन्दिये, साधु लच्छ है सोय ॥१६॥
ऐसा कोइ जन एक है, दूजे भेष अनेक।
निन्दा वन्दा क्या करै, जो नहि हिरदा एक ॥१७॥

निन्दा कीजै आपनी, बंदन सतगुरु रूप ।
औरन सों क्या काम है, देख न रंक न भूप ॥१८॥
आपन को न सराहिये, पर निन्दिये नहि कोय ।
चढ़ना लंबा धौहरा, ना जाने क्या होय ॥१९॥
आपन पौ न सराहिये, और न कहिये रंक ।
क्या जानौं किहि रूख तर, कूरा होय करंक ॥२०॥
लोग बिचारा निन्दही, जिनहु न पाया ज्ञान ।
सत्तनाम जानै नहीं, बके आनही आन ॥२१॥
निन्दक न्हाय गगन कुरुखेत, अरपै नारि सिंगार समेत ।
चौसठ कूवा बाय दिखावै, तोभी निन्दक नरक हि जावै ॥२२॥
अडसठ तीरथ निन्दक न्हाइके, दहे पखोसे मैल न जाहि ।
छप्पन कोटि धरती फिरि आवै, तोभी निन्दक नरकहि जावै ॥२३॥
निंदा हमरी जो करै, मित्र हमारा सोय ।
बिन साबुन बिन पानिसे, मैल हमारा धोय ॥२४॥
काहूको नहि निंदिये, सबको कहिये संत ।
करनी अपनी से तरे, मिलि भजिये भगवंत ॥२५॥
कंचन को तजबो सहल, महल त्रिया को नेह ।
निंदा केरो त्यागबो, बडो कठिन है येह ॥२६॥
कबीर यहँ तो राम है, निंदने को कछु नाँहि ।
कोइ विधि गोविंद सेविये, राम बसा सब माँहि ॥२७॥

आनदेव को अंग।

आन देव की आस करि, मुख मेले मट मांस।
जाके जल भोजन करे, निश्चय नरक निवास ॥ १ ॥
होम कनागत कारनै, साकुट रांधा खाय।
जीवत विष्ठा स्वान की, मुआ नरकै जाय ॥ २ ॥
आश नाश कारनै, जेवा रक्तमल खाय।
जीवत जनम हि स्वान का, पीछै नरकै जाय ॥ ३ ॥
साकुट हित कूं जाय के, सरसा सरसी खाय।
कोटि जनम नरके पड़े, तऊ न पेट अघाय ॥ ४ ॥
कन्या वस्त्र अरु कारनै, आनदेव को खाय।
सो नर डोले याजते, निश्चय नरकै जाय ॥ ५ ॥
कामी तिरै क्रोधी तिरै, लोभी की गति होय।
सलिल भक्त संसार में, तरत न देखा कोय ॥ ६ ॥

प्रकृति गुन को अंग।

पहिले सेर पचीस का, सन्तो करो अहार।
गुरु सब्दै लागे रहो, टुकल न होय लगार ॥ १ ॥
सुषमन दिव्वी पोत करि, दीन्ही आगि चढाय।
सेर पांच को रांधि करि, सन्त होय सो खाय ॥ २ ॥

सेर पांच को खाय करि, सेर तीन को खाय।
सेर तिन खाइ ना सकै, सेर दुई को खाय ॥ ३ ॥
सेर दुई को खाय करि, पाया अगम अलेख।
सतगुरु सब्द यों कहा, जाके रूप न रेख ॥ ४ ॥
दुक्ख महल को ढाइके, सुक्ख महल रहु जाय।
अभि अन्तर है सनमुनी, तामें रहो समाय ॥ ५ ॥
कालज तजे न स्यामता, सुखटा तजे न स्वेत।
दुर्जन तजै न कुटिलता, सज्जन तजै न हेत ॥ ६ ॥
दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सज्जन को त्रास।
सूरज जब गरमी करे, तब बरसन की आस ॥ ७ ॥
कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पत्थर डारे कीच में, उछलि बिगाड़े अंग ॥ ८ ॥
चंदा सूरज चलत न दीसे, बढ़त न दीसे बेल।
हरिजन हरिभजता ना दिसे, ये कुदरत का खेल ॥ ९ ॥
जो जाको गुन जानता, सो ताको गुन लेत।
कोयल आमही खात है, काग लिंबोरी लेत ॥१०॥
इस्क खुनस खांसि जो, औ पीवे मदपान।
ये छूपाया ना छुपे, परगट होय निदान ॥११॥

काम को अंग।

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम।
कबीर का गुरु सन्त है, संतन का गुरु राम ॥ १ ॥
कामी कबहुँ न गुरु भजै, मिटै न संसै सूल।
और गुनह सब बख्शि है, कामी डाल न मूल ॥ २ ॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अन्तर होय उदास।
कामी नर कुत्ता सदा, छह रितु बारह मास ॥ ३ ॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय।
भक्ति करै कोय सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ ४ ॥
कामी लज्जा ना करै, मन माहीं अहलाद।
नींद न मांगै साथरा, भूख न मांगै स्वाद ॥ ५ ॥
कामी तो निरभय भया, करै न काहू संक।
इन्द्री केरे बसि पड़ा, भुगतै नरक निसंक ॥ ६ ॥
कामी अमी न भावई, विष को लेवै सोध।
कुबुधि न भाजै जीव की, भावै ज्यौं परमोध ॥ ७ ॥
कामी करम की केंचुली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोड़ै सूझै नहीं, कोइ पूरबला भाग ॥ ८ ॥

५. साथरा—बिछौना।

सह कामी दीपक दसा, सोखै तेल निवास ।
कबीर हीरा संतजन, सहजै सदा प्रकास ॥ ९ ॥

दीपक सुंदर देखि करि, जरि जरि मरे पतंग ।
बढ़ी लहर जो विषय की, जरत न मोरे अंग ॥१०॥

भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्रिन करे स्वाद ।
हीरा खोया हाथ सों, जनम गँवाया बाद ॥११॥

काम काम सब कोय कहै, काम चीन्है कोय ।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥१२॥

जहाँ काम तहाँ नाम नहि, जहाँ नाम नहि काम ।
दोनों कबहू ना मिलै, रवि रजनी इक ठाम ॥१३॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घटमें खान ।
[१]कबीर मूरख पंडिता, दोनों एक समान ॥१४॥

कहता हूँ कहि जात हूँ, मानै नहीं गँवार ।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥

काम कहर असवार है, सब को मारै धाय ।
कोइ एक हरिजन ऊबरा, जाके नाम सहाय ॥१६॥

कबीर कामी पुरुष का, संसै कबहु न जाय ।
साहिब सो अलगा रहै, वाके हिरदै लाय ॥ १७॥

---

१६. क[illegible] ग[illegible]स, [illegible]दर्या । १. पा० क्या मूरख क्या पंडिता ।

कामी से कुत्ता भला, रितु सर खोलै काछ।
राम नाम जाना नहीं, वावी जाय न वाच ॥१८॥
बुंद खिरी नर नारि की, जैसी आतम घात।
अज्ञानी मान नहीं, येहि वान उतपात ॥१९॥
भग भोगे भग ऊपजै, भगते बचै न कोय।
कहैं कबिर भगते बचै, भक्त कहावैं सोय ॥२०॥
तन मन लज्जा ना रहे, काम वान उर साल।
एक काम सब वश किये, सुर नर मुनि बेहाल ॥२१॥

क्रोध को अंग।

क्रोध अगनि घर घर बढ़ी, जलै सकल संसार।
दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उवार ॥ १ ॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥ २ ॥
जगत माहि धोखा घना, अह क्रोध अरु काल।
पौरी पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥ ३ ॥
दसौं दिसा से क्रोधकी, उठी अपरबल आग।
सीतल संगति साधकी, तहाँ उबरिये भाग ॥ ४ ॥

१८. काछ खोलना—भोग करना।

१९. बुन्द-वीर्य। ३ पौरी-मुक्ति का द्वार, त्रिकुटिक।

यह जग कोठी काठकी, चहुँदिस लागी आग।
भीतर रहै सो जलि मुये, साधू उबरे भाग ॥ ५ ॥
गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूवाँ होय।
इन तीनों को परिहरै, साधु कहावै सोय ॥ ६ ॥

लोभ को अंग।

जब मन लागा लोभ सों, गया विषय में भोय।
कहै कबीर विचारि के, केहि प्रकार धन होय ॥ १ ॥
जोगी जंगम सेवड़ा, ज्ञानी गुनी अपार।
षट दरसन से क्या बनै, एक लोभ की लार ॥ २ ॥
कबीर औंधी खोपड़ी, कबहूं धापै नाँहि।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माँहि ॥ ३ ॥
सूम थैली अरु स्वान भग, दोनों एक समान।
घालत में सुख ऊपजै, काढ़त निकसै प्रान ॥ ४ ॥
बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचै सूम धन, अन्त चोर ले जाय ॥ ५ ॥

मोह को अंग।

मोह फंद सब फंदिया, कोय न सकै निवार।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्व विचार ॥ १ ॥
मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि।
काहु सुरति जो ना करी, ताते फिरि औतारि ॥ २ ॥
मोह सलिल की धार में, बहि गये गहिर गंभीर।
सूच्छम मछली सुरति है, चढ़ती उलटी नीर ॥ ३ ॥
जब घट मोह समाइया, सबै भया अंधियार।
निर्मोह ज्ञान विचारि के, साधू उतरे पार ॥ ४ ॥
जहाँ लगि सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥५॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौं, तुप सों रहे निनार।
मिरग हि बांधि बिडारहू, कहै कबीर विचार ॥ ६ ॥
प्रथम फंदे सब देवता, बिलसैं स्वर्ग निवास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्यु लोक की आस ॥ ७ ॥
दूजे ऋषि मुनिवर फँसे, तासों रुचि उपजाय।
स्वर्ग लोक सुख मानही, धरनि परत हैं आय ॥ ८ ॥
सुरनर ऋषि मुनि सब फँसे, मृग त्रिस्ना जग मोह।
मोह रूप संसार है, गिरे मोहनिधि जोह ॥ ९ ॥

---

२. कन्या-सुरति।

कुरुक्षेत्र सब मेदिनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान ॥१०॥
काहू जुगति ना जानिया, किहि बिधि बचै सुखेन।
नहि बंदगी नहि दीनता, नहि साधू संग हेत ॥११॥
अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौं, सबही मोह की खान।
त्याग मोह की वासना, कहै कबीर सुजान ॥१२॥
अपना तो कोई नहीं, हम काहू के नाँहि।
पार पहुची नाव जब, मिलि सब बिछुड़े जाँहि ॥१३॥
अपना तो कोई नहीं, देखा ठोकि बजाय।
अपना अपना क्या करै, मोह भरम लिपटाय ॥१४॥
मोह नदी विकराल है, कोई न उतरै पार।
सतगुरु केवट साथ ले, हंस होय जम न्यार ॥१५॥
एक मोह के कारनै, भरत धरी दो देह।
ते नर कैसे छूटि हैं, जिनके बहुत सनेह ॥१६॥

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संसै तहाँ सोग।
कहैं कबिर कैसे मिटै, चारौं दीरघ रोग॥ २॥
अहं भई जो इस्तरी, माया हूआ मान।
यौं बसि पड़े खटीक के, पकड़ी आनी कान॥ ३॥
हरिजन हरि तो एक है, जो आपा मिट जाय।
जा घट में आपा बसै, साहिब कहाँ समाय॥ ४॥
अहंता नहि आनिये, हरि सिंहासन देय।
जो दिल राखे दीनता, सांइ आप करि लेय॥ ५॥
कबीर गर्व न कीजिये, रंक न हसिये कोय।
अजहू नाव समुद्र में, ना जानौं क्या होय॥ ६॥
आपा सब हो जात है, किया कराया सोय।
आपा तजि हरि को भजै, लाखन मध्ये कोय॥ ७॥
दीप कूं झोला पवन है, नरकू झोला नारि।
ज्ञानी झोला गर्व है, कहैं कबीर पुकारि॥ ८॥
अभिमानी कुंजर भये, निज सिर लीन्हा भार।
जम द्वारे जम कूटहीं, लोहा घडै लुहार॥ ९॥
मद अभिमान न कीजिये, कहैं कबिर समुझाय।
जा सिर अहं जु संचरै, पड़ै चौरासी जाय॥१०॥

मान को अंग।

मान बड़ाई कूकरी, धर्मराय दरबार।
दीन लकुटिया बाहिरे, सब जग खाया फार ॥ १ ॥
मान बड़ाई कूकरी, संतन खेदी जान।
पांडव जग पावन भया, सुपच विराजे आन ॥ २ ॥
मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचान।
प्यार किये मुख चाटई, बैर किये तन हान ॥ ३ ॥
मान बड़ाई करमी, ये जग का व्यवहार।
दीन गरीबी बन्दगी, सतगुरु का उपकार ॥ ४ ॥
मान बड़ाई देखि कर, भक्ति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, अवगुन धरै गँवार ॥ ५ ॥
मान दिया मन हरषिया, अपमाने तन छीन।
कहै कबिर तब जानिये, माया में लौ लीन ॥ ६ ॥
मान तजा तो क्या भया, मन का मता न जाय।
संत बचन माने नहीं, ताको हरि न सुहाय ॥ ७ ॥
कंचन तजना सहज है, सहज तिरिया का नेह।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजना येह ॥ ८ ॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥ ९ ॥

काला मुख कर मान का, आदर लावो आग ।
मान बड़ाई छांडि के, रहौ नाप लौ लाग ॥१०॥
कबीर अपने जीवते, ये दो बातौं धोय ।
मान बड़ाई कारने, अछता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद दो, क्यौं करि बंधू बारि ।
मान करूं तो पिव नहीं, पिव तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बड़ाई ऊंट की, लादे जहँ लग साँस ।
मुहकम सलिता लादि के, ऊपर चढ़े फरास ॥१३॥
बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोले बोल ।
हीरा मुख से ना कहे, लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी बिपति बड़ाई है, नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहैं, गहे चंद औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उजाड़ का, मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊंचा नवै, ऊंट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊंचा ताके सोय ॥१८॥
ऊंचे कुल में जनमिया, देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़े, बास बिहूना फूल ॥१९॥

१३. मुहकम—मजबूत। सलिता—काठी। फरास-ऊंटलादनेवाला।

मान को अंग।

मान वडाई कूकरी, धर्मराय दरवार ।
दीन लकुटिया बाहिरे, सब जग खाया फार ॥
मान वडाई कूकरी, संतन खेदी जान।
पांइव जग पावन भया, सुपच विराजै आन ॥
मान बडाई जगत में, कूकर की पहिचान ।
प्यार किये मुख चाटई, वैर किये तन हान ॥
मान वडाई ऊरमी, ये जग का व्यवहार ।
दीन गरीबी वदगी, सतगुरु का उपकार ॥
मान वड़ाई देखि कर, भक्ति करै संसार।
जब देखै कछु हीनता, अवगुन धरै गँवार ॥
मान दिया मन हरषिया, अपमाने तन छीन ।
कहैं कबिर तब जानिये, माया में लौ लीन ॥
मान तजा तो क्या भया, मन का मता न जाय।
संत वचन मानै नहीं, ताको हरि न सुहाय ॥ ७
कंचन तजना सहज है, सहज तिरिया का नेह।
मान वड़ाई ईर्षा, दुरलभ तजना येह ॥ ८
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहि जाय।
मान वडे मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥ ९

काला मुख कर मान का, आदर लावो आग ।
मान बड़ाई छांडि के, रहो नाम लौ लाग ॥१०॥
कबीर अपने जीवने, ये दो बाताँ धोय ।
मान बड़ाई कारनै, अछता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद दो, क्यौं करि बंधूं बारि ।
मान करूं तो पिव नहीं, पिव तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बड़ाई ऊंट की, लादे जहँ लग साँस ।
मुहकम सलिता लादि के, ऊपर चढ़ै फरास ॥१३॥
बड़ा बड़ाई ना करै, बड़ा न बोलै बोल ।
हीरा मुख से ना कहै, लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी बिपति बड़ाई है, नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहैं, गहै चंद औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उजाड़ का, मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊंचा नवै, ऊंट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊंचा ताकै सोय ॥१८॥
ऊंचे कुल में जनमिया, देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़ै, बास विहूना फूल ॥१९॥

१३. मुहकम—मजबूत। सलिता—काठी। फरास—ऊँटलादनेवाला।

ऊंच कुल नीचा मता, नाहीं हरि सों हेत।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥२०॥
ऊँचे कुल के कारनै, भूलि रहा संसार।
तब कुल की क्या लाज है, जब तन होगा छार ॥२१॥
ऊँचे कुल की कामिनी, भजै न सारंग पान।
कुल ही लखवान औतरी. सूधी साविन जान ॥२२॥
कबीर ऊंची नाक को, पेंठत है संसार।
जातै हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार ॥२३॥
हाथी चढ़ि कै जो फिरै, ऊपर चँवर ढुराय।
लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥२४॥
कबीर हरि जाना नहीं, जाना कुल परिवार।
गदहा है करि औतरै, भांडा लादि कुम्हार ॥२५॥
ऊंचा देखि न राचिये, ऊंचा पेड़ खजूर।
पंखि न बैठे छांयड़े, फल लागा पै दूर ॥२६॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा है सो भरि पिये, ऊंच पियासा जाय ॥२७॥
नर मूरख तें खर भला, जिहि मुख नांहीं राम।
सुकुन बतावै और को, पंथ चलंता गाम ॥२८॥
प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय।
कहैं कबिर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥२९॥

लघुता में प्रभुता बसै, प्रभुता से प्रभु दूर।
कीड़ी सो मिसरी चुगै, हाथी के सिर धूर ॥३०॥
जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय।
चेला को चेला मिलै, तब कछु हूँ तो होय ॥३१॥
बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बहु इतराय।
ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥३२॥
बग ध्यानी ज्ञानी घने, अरथी मिले अनेक।
मान रहित कबीर कहैं, सो लाखन में एक ॥३३॥
भक्त रु भगवत एक है, बूझत नहीं अज्ञान।
सीस नँवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥३४॥
लेने को सतनाम है, देने को अँनदान।
तरने को है दीनता, बूडन को अभिमान ॥३५॥

आसा तृस्ना को अंग।

आसा तो गुरुदेव की, दूजी आस निरास।
पानी में घर मीन का, सो क्यों मरै पियास ॥ १ ॥

---

३२. प्यादा—सिपाही। फरजी—वजीर। शतरंज के खेल में वजीर की चाल टेढ़ी और प्यादा की सीधी होती है। जब वजीर के घर में आने से प्यादा वजीर को मारकर वजीर बन जाता है तब वह सीधी चाल छोड़ कर टेढ़ी चाल पकड़ लेता है।

आसा एक जु नाम की, दूजि आस निवार।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार॥ २॥
आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरवै आस।
ज्यों पंडल कोरो रहै, बसै जु चंदन पास॥ ३॥
आसा जीवै जग मरै, लोग मरै मरि जाँहि।
धन संचै ते भी मरै, उबरै सो धन खाहि॥ ४॥
आस बास जग फंदिया, रहै उरझ लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय॥ ५॥
आसा बेली करम बन, गरजै मन के साथ।
तृस्ना फूल चौगान में, फल करता के हाथ॥ ६॥
आसा तृस्ना सिंधु गति, तहँ न मन ठहराय।
जो कोइ आसा में फसा, लहर तमाचा खाय॥ ७॥
आसा तृस्ना दो नदी, तहाँ न मन ठहराय।
इन दोनों को लंघ करि, चौडे बैठे जाय॥ ८॥
चौडे बैठे जाय के, नौंत्र घरा रनजीत।
साहेब न्यारा देखिया, अन्तर गति की मीत॥ ९॥
आसा तरकस बाँधिया, नै नैं गये सुलान।
घने परबेरू मारिया, झाझरि जोरि कमान॥१०॥
आसा को ईंधन करूं, मनसा करूं भभूत।
जोगी फिरि फेरि करूं, यों बनि आवै सूत॥११॥

कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, जगत गुरु वह दास ॥१२॥
जोगी है जग जीतता, वहि रत है संसार।
एक अंदेसा रहि गया, पीछे पड़ा अहार ॥१३॥
बहुत पसारा जनि करै, कर थोड़े की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१४॥
आसन मारे कह भयो, मरी न मनकी आस।
तेली केरे बैल ज्यों, घर ही कोस पचास ॥१५॥
सब आसन आसा तनै, निवरत कोई नाँहि।
निवृत्ति को जाने नहीं, प्रवृत्ति परपंच माँहि ॥१६॥
बाड़ चढ़न्ती बेलरी, उरझी आसा फंद।
टूटै पर छूटै नहीं, भई जो बाचा बंध ॥१७॥
कबीर जग को कह कहूं, भौजल बूडे दास।
सतगुरु सम पति छांडि के, करै मनुष की आस ॥१८॥
आस आस घर घर फिरै, सहै दुखारी चोट।
कहै कबिर भरमत फिरै, ज्यौं चौरस की गोट ॥१९॥
आसा तो गुरुदेव की, और गले की फांस।
चंदन ढिग चंदन भये, देखो आक पलास ॥२०॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥२१॥

राम हि छोटा जानि के, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, तृस्ना के आधीन ॥२२॥
कबीर तृस्ना पापिनी, तासों प्रीति न जोर।
पैंड पैंड पाछे पड़ै, लागै मोटी खोर ॥२३॥
तृस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय।
जवासा का रूख ज्यों, घन मेहा कुम्हिलाय ॥२४॥
आस आस जग फंदिया, गले भरम की फांस।
जन्म जन्म भरमत फिरे, तबहु न छूटी आस ॥२५॥

कपट को अंग।

कबीर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता मन सेत ॥ १ ॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चीत।
परपूठा औगुन घना, मुँहडे ऊपर मीत ॥ २ ॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जु नाना भाव।
लागे ही फल ढहि पड़े, बाजे कोइ कुवाव ॥ ३ ॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत।
नौ मन बीज जु बोयके, खाली रहिगा खेत ॥ ४ ॥

४. नवधा भक्ति के करने पर भी चित कपटी का हृदय खाली ही रह जाता है। १ पा० माया।

हेत प्रीति सों जो मिले, तासों मिलिये धाय।
अन्तर राखी जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥५॥

चित कपटी सब सों मिलै, मांहीं कुटिल कठोर।
इक दुरजन इक आरसी, आगे पीछै और ॥६॥

दिल ही पर जो दिल मिलै, तो दिल दगा न होय।
सो दिल कबहूँ न बीसरै, कोटि करै जो कोय ॥७॥

ढिकली का नमना कहा, यह ना बहुरै बीर।
पहिले चरनों लागि के, पीछै सोखै नीर ॥८॥

नमन नँवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि।
पारधिया दूना नँवै, मिरग हि ढूकै जाहि ॥९॥

नमन नमन बहु अन्तरा, नमन नमन बहु बान।
ये तीनों बहुतै नँवै, चीता चोर कमान ॥१०॥

कपटी का गुरु चातुरी, गुरु गुन छनछन जाय।
औगुन केरी कांकरी, रही कलेजे छाय ॥११॥

कैसूं भँवर न बैठही, जो अति फूले फूल।
खार कपट हिरदै बसे, मधुकर तजै समूल ॥१२॥

कहा बनावै बाहिरै, भीतरिया सों काम।
छानै छिप कै तूं करै, सारा जानै राम ॥१३॥

---

६. दर्पण का आगे का भाग उजला और पीछे का मैला होता है इसी प्रकार दुर्जन भी सामने सीधा और पीछे कुटिल होता है।

आगे दरपन ऊजला, पीछे विषम विकार ।
आगे पीछे आरसी, क्यों न पड़े मुख छार ॥१४॥

कपटी कभी न ऊधरे, सौ साधुन के संग ।
मुंज पखालै गंग में, ज्यों भीजे त्यों तंग ॥१५॥

कपटी मित्र न कीजिये, पेट पैठि बुधि लेत ।
आगे राह दिखाय के, पीछे धक्का देत ॥१६॥

कपटी के मन कपट है, साधू के मन राम ।
कायर तो सब भगि चले, सूरा के मैदान ॥१७॥

अंत कतरनी जीभ रस, नैनौं चपला नेह ।
ताकी संगति रामजी, सपनेहु मति देह ॥१८॥

हिये कतरनी जीभ रस, मुख बोलन का रंग ।
आगे भल पीछे बुरा, ताको तजिये संग ॥१९॥

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव ।
लागत ही फीके पड़े, कोइ लगायो दाव ॥२०॥

ऊजल बसतर सिर जटा, एक चित्त सूं ध्यान ।
फूंकि फूंकि पाँव धरि धरै, तामें कपट निदान ॥२१॥

---

१४. दर्पण को साफ करने के लिये उस पर छार डाला करते हैं । जिस पुरुष का आगा और पीछा दर्पण के समान हो—अर्थात् सामने निर्मलता दिखानेवाला और पीछे से कपटाचार करनेवाला हो उसके मुंह में लोग अवश्य धूर डालते हैं ।

सरस मखा ऊजल वरन, एक पगा सूँ ध्यान।
मैं जानां कुळ हंस है, कपटी मिला निदान ॥२२॥
ज्ञानी नमि गुरु मुख नमैं, नमैं चतुर सुजान।
दगाबाज दूना नमैं, चिता चोर कमान ॥२३॥

दुख को अंग।

जा दिन ते जिव जनमिया, कबहु न पाया सूख।
डालैं डालैं मैं फिरा, पातैं पातैं दुख ॥ १ ॥
कबीर सुख कूँ जाय था, बिचमें मिलि गया दुख।
सुख जाहु घर आपने, मैं [१]अरु मेरा दुख ॥ २ ॥
सुखिया ढूंढ़त मैं फिरूं, सुखिया मिलै न कोय।
जाके आगे दुख कहूं, पहिले ऊठै रोय ॥ ३ ॥
जाके आगे इक कहूं, सो कहवे इकबीस।
एक एक ते दाझिया, कहां ते काढे बीस ॥ ४ ॥
बिषका खेत जु खेड़िया, बिष का बोया झाड़।
फल लागे अंगार से, दुखिया के गल हार ॥ ५ ॥
झल बांयें झल दाहिने, झल ही में ब्यवहार।
आगे पीछे झल हि है, राखै सिरजन हार ॥ ६ ॥

---

१ पा० मन।

मैं रोऊँ संसार कूं, मुझे न रोवै कोय।
मुझ को रोवै सो जना, नाम सनेही होय ॥ ७ ॥
कबीर दरिया परजला, दाझै जल थल झोळ।
बस नाहीं गोपाळ सूं, बिनसै रतन अमोल ॥ ८ ॥
संख समूंदा बीछुरा, लोग कहैं बाजंत।
प्रीतम आपन कारने, घर घर धाइ दयंत ॥ ९ ॥
करनि बिचारी क्या करै, हरि नहि होय सहाय।
जिहि जिहि डाली पग धरूं, सो सो नमि नमि जाय ॥१०॥
सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रहमंड।
कहैं कबिर सब को लगै, देह धरे का दंड ॥११॥
देह धरे को दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥१२॥
भूप दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक बिपरीत।
कहैं कबिर ये सब दुखी, सुखी संत मनजीत ॥१३॥
बासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख धूप न छांह।
कै सुख सरनै राम के, कै सुख सन्तों माँह ॥१४॥
स्वर्ग मृत्यू पाताल में, पूर तीन सुख नाँहि।
सुख साहिब के भजन में, अरु संतन के माँहि ॥१५॥
संपति देखि न हरषिये, बिपति देखि मति रोय।
संपति है तहँ बिपति है, करता करै सो होय ॥१६॥

संपति तो हरि मिलन है, विपति जु राम वियोग ।
संपति विपती राम कहू, आन कहै सब लोग ॥१७॥
लछमी कहै मैं नित नवी, किसकी न पूरी आस ।
किते सिंहासन चढ़ि चले, कितने गये निरास ॥१८॥
दुख नहि था संसार में, नहि था सोग वियोग ।
सुख ही में दुख ला दिया, वोली वोलैं लोग ॥१९॥

कर्म को अंग ।

करम कचोई आतमा, निज कन खाया सोधि ।
अंकुर विना न ऊगसी, भावै ज्यों परमोधि ॥ १ ॥
मोह कुटी में जलि मुआ, करम किंवाड़ी वारि ।
कोइ एक हरिजन ऊवरा, भागा राम पुकारि ॥ २ ॥
काया खेत किसान मन, पाप पुन्न दो वीज ।
वोया लूनै आपना, काया कसकै जीव ॥ ३ ॥
काला मुँह करुं करमका, आदर लावूं आग ।
लोभ वड़ाई छांडि के, राचो गुरु के राग ॥ ४ ॥
जीव करम में जलि गया, कहै कहां ते राम ।
कंचन जला कथीर में, जाको ठौर न ठाम ॥ ५ ॥
मरम करम की जेवरी, वल वंधा संसार ।
वे क्यों छूटे वापुरे, जो वांधे करतार ॥ ६ ॥

२. किंवाड़ी—फाटक

कबीर सजड़े ही जड़ा, झूठा मोह अपार।
अनेक लुहारे पचि मुये, उग्घडत नहीं लगार॥ ७॥
कहा करूं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग।
राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग॥ ८॥
कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा माँहि।
हम तो दाझत पंख बिन, तुम दाझत हो काहि॥ ९॥
कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय।
सात समुद्र आड़ा पड़े, मिले अगाड़ी आय॥१०॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।
रोपै पेड़ बबूल का, आम कहां ते होय॥११॥
पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात।
लिखा मिटै नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ॥१२॥
बूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटै अनेक॥१३॥
जहँ यह जियरा पगु धरे, बखत बराबर साथ।
जो है लिखा नसीब में, चलै न अबिचल बात॥१४॥
जाको जितना निर्मान किय, वाको तितना होय।
मासा घटै न तिल बढै, जो सिर कूटो कोय॥१५॥
परारब्ध पहिले बना, पीछे बना सरीर।
कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर॥१६॥

७. सजड़-मजबूत। उग्घडत-खुलता नहीं।

कबीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम ।
मेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
कबीर घट में राम है, रजक मीत जिव साथ ।
कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
बखत कहो या करम कहु, नसिब कहो निरधार ।
सहस नाव हैं करम के, मनहीं सिरजनहार ॥१९॥
बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय ।
जब ऊठे मन वखत को, बाहिर रुप धरि आय ॥२०॥
बखत बलै भौजल तिरै, निर्बल भया विकार ।
यह सब किया नसीब का, यह निश्चय निरधार ॥२१॥
करम आपना परखि ले, मन नाहिं कीजै रीस ।
हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
कीन्हे बिना उपाय कछु, देव कबहु नाहिं देत ।
खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जामैं खेत ॥२३॥
दुख लेने जावै नहीं, आवै आचा यूच ।
सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
होनहार सोइ होत है, बिसर जात सब सुद्ध ।
जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
रे मन भाग्य हो भूक्त मन, जो आया मन माग ।
सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

२४. आचायूच अचानक । २५. उकलत—उत्पन्न होती है ।

कबीर सजड़े ही जड़ा, झूठा मोह अपार।
अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
कहा करूं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग।
राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा माँहि।
हम तो दाझत पंख बिन, तुम दाझत हो काहि ॥ ९ ॥
कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय।
सात समुद्र आड़ा पड़े, मिलै अगाड़ी आय ॥१०॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।
रोपै पेड़ बबूल का, आम कहां ते होय ॥११॥
पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात।
लिखा मिटै नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ ॥१२॥
बूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥१३॥
जईं यह भियरा पगु धरै, बखत बराबर साथ।
जो है लिखा नसीब में, चले न अविचल बात ॥१४॥
जाको जितना निर्मान किय, ताको तितना होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥१५॥
परारब्ध पहिले बना, पीछै बना सरीर।
कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर ॥१६॥

७. सजड़-मजबूत। उझड़त-खुलता नहीं।

कबीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम।
मेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
कबीर घट में राम है, रजक मौत जिव साथ।
कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
बखत कहो या करम कहु, नसिब कहो निरधार।
सहस नाम हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय।
जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रुप धरि आय ॥२०॥
बखत चलै भौजल तिरै, निर्मल भया विकार।
यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस।
हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
कीन्हे बिना उपाय कछु, देव कबहु नाहि देत।
खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जामै खेत ॥२३॥
दुख लैने जावै नहीं, आवै आचा बूच।
सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
होनहार सोइ होत है; बिसर जात सब सुद्ध।
जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
रे मन भाग्य ही भूक मत, जो आया मन माग।
सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

२४. आचाबूच अचानक। २५. उकलत—उत्पन्न होती है।

मन की संका मेटि कर, निसंक रहु निरधार।
निश्चय होय सो होयगा, जो करसी करतार ॥२७॥
दुनी कहै मैं दोरंगी, पल में पलटि जु जाउँ।
सुख में जो सूता रहै, वाको दुखी बनाउँ ॥२८॥
तेरा वैरी कोइ नहीं, तेरा वैरी फैल।
अपने फैल मिटाय ले, गली गली कर सैल ॥२९॥
अकास जा पाताल जा, फोड़ि जाहु ब्रह्मंड।
कहैं कबिर मिटिहै नहि, देह धरे का दंड ॥३०॥
लिखा मिटै नहि करमका, गुरु कर भज हरिनाम।
सीधे मारग नित चलै, दया धर्म बिसराम ॥३१॥

स्वाद को अंग।

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय।
चोरों कुतिया मिलि गई, पहरा किसका देय ॥ १ ॥
खट्टा मीठा देखि के, रसना मेलै नीर।
जब लग मन पाको नहीं, काचो निपट कबीर ॥ २ ॥
जीभ स्वाद के कूप में, जहां हलाहल काम।
अंग अविद्या ऊपजै, जाय हिये ते नाम ॥ ३ ॥
अहार करै मन भावता, जिभ्या केरे स्वाद।
नाक तलक पूरन भरै, क्यों कहिये वे साध ॥ ४ ॥

माखी गुड में गडि रहा, पंख रहा लपटाय ।
तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥ ५ ॥
मुंड मुंडाया मुक्ति को, सालन कूं पछिताय ।
गोडा फूटे जोग बिन, लोगन सों सिथलाय ॥ ६ ॥
रूखा सूखा खाय के, ठंडा पानी पीव ।
देखि पराई चूपडी, मत ललचावे जीव ॥ ७ ॥
आधी औ रूखी भली, सारी सोग सँताप ।
जो चाहेगा चूपडो, बहुत करेगा पाप ॥ ८ ॥
कबीर साईं मुझ को, रूखी रोटी देय ।
चुपडी मांगत मैं डरूं, मत रूखी छिन लेय ॥ ९ ॥
अँन पानी का हार है, स्वाद संग नहिं जाय ।
जो चाहै दीदार को, चुपडी चरै बलाय ॥१०॥
जिभ्या कर्म कछोटरी, तीनों गृह में त्याग ।
कबीर पहिले त्यागि के, पीछे ले बैराग ॥११॥
जिभ्या कर्म कछोटरी, जो तीनों बस होय ।
राजा परजा जमपुरी, गँजि सकै नहिं कोय ॥१२॥
खाटा मीठा खाय कर, करै इन्द्रियाँ भोग ।
सो कैसे जा पहुँचही, साहिबजी के लोग ॥१३॥

---

६. सालन–मधुरव्यजन। गोडा ...टिम्बाऊ आसनोंसे ।

१०. हार—आहार । ११. जिम्या-स्वाद । कर्म—कुकर्म । कछोटरी—विषय ।

मांसाहार को अंग।

मांसाहारी मानवा, परतछ राछस अंग ।
ताकी संगति मति करो, पडत भजन में भंग ॥ १ ॥
मांसाहारी मानवा, परतछ राछस जान ।
ताकी संगति मति करै, होय भक्ति में हान ॥ २ ॥
मांस खाय ते ढेड सब, मद पीवै सो नीच ।
कुल की, दुरमति परिहरै, राम कहै सो ऊँच ॥ ३ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं, सुरा पान सों हेत ।
ते नर नरके जाहिंगे, माता पिता समेत ॥ ४ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं, सुरा पान सों हेत ।
ते नर जड से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत ॥ ५ ॥
मांस भखै मदिरा पिवै, धन वेश्यासों खाय ।
जूआ खेलि चोरी करै, अन्त समूला जाय ॥ ६ ॥
मांस मांस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय ।
आँख देखि नर खात हैं, ते नर नरक हि जाय ॥ ७ ॥
यह कूकर को भक्ष है, मनुष देह क्यों खाय ।
मुख में आमिष मेलिहै, नरक पडे सो जाय ॥ ८ ॥
ब्राह्मन राजा बरन का, औरों कौम छतीस ।
रोटी ऊपर माछली, सबही बरन खबीस[१] ॥ ९ ॥

१. खबीस-मुरदा खानेवाले ।

कलियुग केरे ब्राह्मना, मांस मछलियाँ खाय।
पाँय करा सुख मानही, राम कहे जरि जाय ॥१०॥
पाँव पुजावे बैठि के, भखे मांस मद दोय।
तिनकी दीच्छा मुक्ति नहीं, कोटि नरक फल होय ॥११॥
सकल बरन एकत्र ह्वै, सक्ति पूजि मिलि खाँहि।
हरि दासन की भ्रान्ति करि, केवल जमपुर जाँहि ॥१२॥
विष्टा का चौका दिया, हांडी सीझै हाड।
छूत बरावे चाम की, ताका गुरु है रांड ॥१३॥
जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय।
पाप सबन जो देखिया, पुन्न न देखा कोय ॥१४॥
जीव हनै हिंसा करै, प्रगट पाप सिर होय।
निगम सुनी अस पाप ते, भिस्त गया नहि कोय ॥१५॥
दुनिया सोई हंनसी, भावै जान बिज्ञान।
कर गहि चोटी तानसी, साहिब के दीवान ॥१६॥
तिल भर मछली खाय के, कोटि गऊ दे दान।
कासी करवत ले मरै, तौ भी नरक निदान ॥१७॥
काटा कूटी जो करै, ते पाखंड को भेप।
निश्चय राम न जानहीं, कहैं कबिर संदेस ॥१८॥
बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात है, तिनका कौन हवाल ॥१९॥

आठ बाट बकरी गई, मांस मुल्लाँ गय खाय।
अजहूं खाल खटीक के, भिस्त कहां ते जाय ॥२०॥
अंडा किन बिसमिल किया, घुन किन किया हलाल।
मछली किन जबहे करी, सब खाने का ख्याल ॥२१॥
अँडे किन बिसमिल किये, मछली किया हलाल।
जिभ्या के रस स्वाद में, यह नर भया बेहाल ॥२२॥
मुलना तुझे करीम का, कब आया फरमान।
दया भाव हिरदै नहीं, जबह करै हैवान ॥२३॥
काजी तुझे करीम का, कब आया फरमान।
घट फोडा घर घर किया, साहिब का नीसान ॥२४॥
काजी का बेटा मुआ, उरमें साले पीर।
वह साहेब सबका पिता, भला न मानै बीर ॥२५॥
पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाँहि।
अपना गला कटाय के, भिस्त बसै क्यों नाँहि ॥२६॥
मुरगी मुलना सो कहै, जबह करत है मोहि।
साहिब लेखा मांगसी, संकट पड़ि है तोहि ॥२७॥
कबीर काजी स्वाद बस, जीव हनत है सोय।
चढ़ि ममीन एकै कहै, दरगह सांचा होय ॥२८॥
काजी मुलना भरमिया, चले दुनी के साथ।
दिल सों दीन निवारिया, करद लई जब हाथ ॥२९॥

२९. करद-छुरी।

काला मुँह करि करद का, दिल सौं दुई निवार।
सबही रूह सुभान की, अहमक मुल्ला न मार ॥३०॥
जोर करी जिबहै करै, मुख सौं कहै हलाल।
साहिब लेखा मांगसी, होसी कौन हवाल ॥३१॥
जोर किये ते जुलुम है, मांगै ज्वाब खुदाय।
खालिक दर खूनी खड़ा, मार मुँही मुँह खाय ॥३२॥
गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल।
साहिब लेखा मागसी, तबही कौन हवाल ॥३३॥
गला काटि बिसमिल करै, ते काफिर बेबूझ।
औरन को काफिर कहै, अपना कुफर न सूझ ॥३४॥
गला गुसा को काटिये, मियाँ कहर को मार।
जो पांचौं बिसमिल करै, तब पावै दीदार ॥३५॥
यह सब झूठी बंदगी, बिरिया पाच निमाज।
साँच हि मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥३६॥
कबीर चाला जाय था, आगे मिले खुदाय।
मीरां तुझ सो कब कही, कब फरमाई गाय ॥३७॥
सेख सबूरी बाहिरा, हांका जम के जाय।
जिन का दिल साबुत नहीं, तिन को कहा खुदाय ॥३८॥

३०. सुभान–खुदा। रूह—जीव। ३२. खालिक–मालिक।
४३. कुफुर–अपराध।

कबीर तेई पीर हैं, जे जानै पर पीर ।
जे पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर ॥३९॥
खुश खाना है खीचड़ी, माँहि पड़ा टुक लौन ।
मास पराया खाय के, गला कटावै कौन ॥४०॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जु मान हमार ।
जाका गल तुम काटिहो, सो फिर काटि तुम्हार ॥४१॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरक के नाँहि ।
कहैं कबिर दोनौं गये, लख चौरासी माँहि ॥४२॥
मुसलिम मारै करद सों, हिन्दू मारै तरवार ।
कहै कबिर दोनौ मिली, जै हैं जम के द्वार ॥४३॥
अजामेध गोमेध जग, अश्वमेध नरमेध ।
कहैं कबीर अधर्म को, धर्म बतावै वेद ॥४४॥
अंकुर भखै सो मानवा, मांस भखे सो स्वान ।
जीव वधै सो काल है, सदा नरक परमान ॥४५॥
जीव जीव सब एक हैं, जिव का करो विचार ।
बिन सांसा का जीव है, ताका करो अहार ॥४६॥
जो जाको काटे, सो फिर ताहे बाटे ।
कहैं कबिर ना छूटे, साखा सापी साटे ॥४७॥

नशा को अंग।

कलियुग काल पठाइया, मांग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्हीं की सीम ॥ १ ॥
भांग तमाखू छूतरा, आफू और सराब ।
कौन करेगा बंदगी, ये तो भये खराब ॥ २ ॥
अमल मांहि औगुन कहा, कहो मोहि समुझाय ।
उत्तर प्रश्न हि में सुनो, मन की संसै जाय ॥ ३ ॥
भांग भखै बल बुद्धि को, आफू अहमक होय ।
दोय अमल औगुन कहा, ज्ञानवंत नर जोय ॥ ४ ॥
औगुन कहूं सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय ।
मानुष सों पसुवा करै, द्रव्य गांठि का देय ॥ ५ ॥
काम हरकत चल घटै, तृस्ना नाहीं ठौर ।
ढिग ह्वै बैठे दीन के, एक चिलम भर और ॥ ६ ॥
पानी पिरथी के हते, धूंवा सुनि के जीव ।
हूके में हिंसा घनी, क्यों करि पावै पीव ॥ ७ ॥
छाजन भोजन हक्क है, और अनाहक लेय ।
आपन दोजख जात है, औरों दोजख देय ॥ ८ ॥
गऊ जो विष्ठा मच्छई, विष तमाखू भंग ।
सत्तर बांधे दरसनी, यह कलियुग का रंग ॥ ९ ॥

---

९. दरसनी—साधु ब्राह्मण ।

अमल अहारी आतमा, कबहुं न पावै पार।
कहैं कबीर पुकारि के, त्यागो ताहि विचार ॥१०॥
मद तो बहुतक भांति का, ताहि न जानै कोय।
तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय ॥११॥
विद्या मद औ गुन हि मद, राज मद उन मद।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद ॥१२॥
मैं मतवाला नाम का, मद मतवाला नाँहि।
नाम पियाला जो पिये, सो मतवाला आहि ॥१३॥
भांग तमाखू छूतरा, जन कबीर जे खाँहि।
योग यज्ञ जप तप किये, सबै रसातल जाँहि ॥१४॥
भांग तमाखू छूतरा, सुरापान लै घूंट।
कहैं कबिर ता जीव का, धर्मराय सिर कूट ॥१५॥
भांग तमाखू छूतरा, इनसे करै पियार।
कहैं कबिर सो जीयरा, बहुत सहै सिर मार ॥१६॥
भांग तमाखू छूतरा, परनिंदा परनार।
कहैं कबिर इनको तजै, तब पावै दीदार ॥१७॥
भांग तमाखू फीम को, दौड दौड करि लेहि।
कहैं कबिर हरि नाम को, पीछे ही पग देहि ॥१८॥
भांग तमाखू गाडका, राम नाम के नाँहि।
कहैं कबिर जनमे मरे, लख चौरासी माँहि ॥१९

सुरापान अचवन करै, पिवै तमाखू भंग।
कहैं कबिरा राम जन, तामें ढंग कुढंग ॥२०॥

सुरापान अचवन करै, पिवै तमाखू भंग।
कहै कबीरा राम जन, ताको करो न संग ॥२१॥

राखैं वरत एकादसी, करै अन्न को त्याग।
भांग तमाखू ना तजै, कहैं कबीर अभाग ॥२२॥

हरिजन को सोहै नहीं, हूका हाथ के माँहि।
कहै कबीरा रामजन, हुक्का पीवै नाँहि ॥२३॥

हुक्का तो सोहै नहीं, हरिदासन के हाथ।
कहैं कबीर हुका गहै, ताको छोड़ो साथ ॥२४॥

अमली के बैठो मती, एक पलक हू पास।
संग दोष तोहि लागि है, कहै कबीरा दास ॥२५॥

अमली हो बहु पापसे, समुझत नाहीं अंध।
कहै कबीरा अमलि को, काल चढावै कंध ॥२६॥

जह लग अमल हराम सब, दोउ दीन के माँहि।
कहै कबीरा रामजन, अमली हूजै नाँहि ॥२७॥

मौंडी आवै बास मुख, हिरदा होय मलीन।
कहैं कबीरा रामजन, माँगि चिलम नहि लीन ॥२८॥

मुख में थूकन दे नहीं, मूहर कोइ जन देहि।
कहैं कबीर या चिलम को, जूठ जगत मुख लेहि ॥२९॥

आन अमल मद त्यागि के, राम अमल जब खाय।
जन कबीर माजै मरम, और न कछू सुहाय ॥३०॥

नाम अमल को छोडि के, और अमल जो खाय।
कहैं कबिर नेहि परिहरो, गुरु के सब्द समाय ॥३१॥

कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३२॥

विवेक को अंग।

फूटी आंख विवेक की, लखे न संत असंत।
जाके संग दस बीस हैं, ताका नाम महंत ॥ १ ॥

जबलग नही विवेक मन, तब लग लगे न तीर।
भौसागर नामी तिरै, सतगुरु कहैं कबीर ॥ २ ॥

प्रगटे प्रेम विवेक दल, अभय निसान बजाय।
उग्र ज्ञान उर आव ते, जग का मोह नसाय ॥ ३ ॥

गुरु पसु नरपसु नारि पसु, वेद पसू संसार।
मानुष ताको जानिये, जाको विमल विचार ॥ ४ ॥

२. नामी—कोई २।

कहैं कबीर पुकारि के, सन्त विवेकी होय।
जामें सब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय ॥ ५ ॥
जीव जन्तु जल हर बसै, गये विवेक जु भूल।
ताल के जलचर यों कहै, हम उडगन सम तूल ॥ ६ ॥
मान काल के जाल में, आय गये तिहि माँहि।
जल के जलचर यों कहै, उडगन पति जु नाँहि ॥ ७ ॥
हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक।
बाहर मिलता सौं मिलै, अन्तर सब सों एक ॥ ८ ॥
राम राम सब कोइ कहै, कहने माँहि विवेक।
एक अनेकै फिर मिलै, एक समाना एक ॥ ९ ॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सब्द विवेकी पारखी, सो माथे की मौर ॥१०॥

विचार को अंग।

कबीर सोच विचारिया, दूजा कोई नाँहि।
आपा पर जब चीन्हिया, उलटि समाना माँहि ॥ १ ॥
राम राम सब कोइ कहै, कहनें माँहि विचार।
सोइ राम जो सनि कहै, सोई कौतिकहार ॥ २ ॥

६. जलहर—नदी तालाब। ९. एक—वाचकज्ञानी। एक-तत्त्वज्ञानी।
२. कौतिकहार-तमाशा देखनेवाले।

आग कहै दाझै नहीं, पाँव न दीझै माँहि ।
जो पै भेद न जानहीं, राम कहा तो काहि ॥ ३ ॥

पानी केरा पुतला, राखा पवन सँचार ।
नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥ ४ ॥

आधी साखी सिर कटै, जोरे विचारी जाय ।
मन हि मतीत न ऊपजै, रात दिवस भर गाय ॥ ५ ॥

आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।
चंचल चित निश्चल करे, ज्ञान भक्ति फल पाय ॥ ६ ॥

कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
सतनाम जग झूठ है, सुरति सब्द पहिचान ॥ ७ ॥

सतनाम जाना नहीं, माना नहीं विचार ।
कहै कबिर यह क्या लहै, मोक्ष मुक्ति का द्वार ॥ ८ ॥

एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार ।
भजिये निस दिन नाम को, तजिये विषय विकार ॥ ९ ॥

कबीर भूला दगा में, लोग कहै यह भूल ।
करम हि बाट बतावहीं, भूलत भूला भूल ॥१०॥

नौ मन सूत अरुझिया, कबीर घर घर बार ।
तिन सुलझाया बापुरे, जानी मुक्ति मुरार ॥११॥

---

३. मुख की आगि की भांति मुख का राम झूठा और सची अग्नि की तरह हृदय का राम सच्चा होता है ।

ज्यों आवे त्यों ही कहै, बोलै नहीं विचार।
हते पराई आतमा, जीभ लेय तरवार ॥१२॥
सब काहू का लीजिये, सांचा सब्द निहार।
पक्षपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥१३॥
बोली हमरी पूरबिया, या तन याही देस।
खारी सों मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥१४॥
कबीर हम सब की कहैं, हमरी कही न जाय।
पूरब की बाता कहै, पच्छिम जाय समाय ॥१५॥
अपनी अपनी सब कहै, हमरी कहै न कोय।
हम अपनी आप हि कहै, करता करै सो होय ॥१६॥
आजा को घर अमर है, बेटा के सिर भार।
तीन लोक नाती ठगा, पंडित करो विचार ॥१७॥
जो कछु करै विचार के, पाप पुन्न ते न्यार।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार ॥१८॥
आचारी सब जग मिला, विचारी मिला न कोय।
कोटि आचारी वारिये, एक विचारी होय ॥१९॥
सोइ अच्छर सोई भनै, सोइ जन जावन।
अकिलमंद कोइ कोइ मिलै, अमि महारस हि पिवन ॥२०॥
मेरा तो कोइ है नहीं, अरु मैं किसका नाँहि।
अन्तर दृष्टि विचारतां, राम बसै मन माँहि ॥२१॥

१७. आजा-दादा, सतपुरुष। बेटा-निरंजन। नाती-त्रिदेव।

नरपसु गुरुपसु वेदपसु, त्रिया पसू संसार ।
कहै कबीर सो पसु नहीं, जाके विमल विचार ॥२२॥
मानुप सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ।
जाहि विवेक विचार नहीं, सो नर ढोर गँवार ॥२३॥
आधी साखि कबीर की, सीखो सुनी न जाय ।
रति इक घट में संचरै, अमर लोक ले जाय ॥२४॥

धीरज को अंग ।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय ।
माली सींचै केवड़ा, रितु आये फल जोय ॥ १ ॥
धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय ।
माली सींचै सौ घड़ा, रितु आये फल जोय ॥ २ ॥
धीरा है धमका सहै, ज्यों अहरन सिर घाव ।
मेघा परवत ह्वै रहो, इत उत कहूं न जाव ॥ ३ ॥
कबीर धीरज के धरे, हाथी मनभर खाय ।
टूक एक के कारनै, स्वान घरै घर जाय ॥ ४ ॥
कबीर तू काहे डरे, सिरपर सिरजन हार ।
हाथी चढ़ि नहिं डोलिये, कूकर भुसे हजार ॥ ५ ॥

कबीर भँवर में बैठिके, मौचक मना न जोय।
डूबन का भय छांडि दे, करता करै सो होय ॥ ६ ॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवेगी और।
जब यह निश्चल होयगा, तब पावेगा ठौर ॥ ७ ॥
बहुत गई थोरी रही, व्याकुल मन मत होय।
धीरज सब को मित्र है, करी कमाइ न खोय ॥ ८ ॥
धीरज बुधि तब जानिये, समुझे सब की रीत।
उनका अवगुन आप में, कबहु न लावै मीत ॥ ९ ॥
साहिब की गति अगम है, चल अपने अनुमान।
धीरे धीरे पांव धर, पहुँचेगा परमान ॥१०॥
फिकिर (तो)सब को खा गई, फिकिर ही सबका पीर।
फिकीर का फाका करै, ताका नाम फकीर ॥११॥

क्षमा को अंग।

खमा बडन को चाहिये, छोटन को उतपात।
कहा विस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ १ ॥
क्षमा क्रोधको छै करै, जो काहू पै होय।
कहै कबिर ता दास को, गंजि सकै नहि कोय ॥ २ ॥

भली भली सब कोइ कहै, रही क्षमा ठहराय।
कहै कबिर सीतल भया, गई जु अगन बुझाय ॥ ३ ॥
भली भली सब कोइ कहै, भली क्षमा का रूप।
जाके मन हि क्षमा नहीं, सो बूडै भव कूप ॥ ४ ॥
करगस सम दुर्जन बचन, रहै संतजन टार।
बिजुली पड़े समुद्र में, कहा सकेगी जार ॥ ५ ॥
काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग।
साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग ॥ ६ ॥
काचै को क्या ताइये, होत जतनमें भंग।
साधू कंचन ताइये, चढै सवाया रंग ॥ ७ ॥
बाद बिवादै बिष घना, बोलै बहुत उपाध।
मौन गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ८ ॥
सबल क्षमी निर्भर्व, धनी, कोमळ बिद्यावंत।
भव में भूषन तीन हैं, औरों सबै अनंत ॥ ९ ॥

शील को अंग।

सील क्षमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुंचै नहीं, लाख कथे जो कोय ॥ १ ॥

५. करगस—करवत।

सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरै जाग ।
बासन बासन के खिसै, चोर न सकई लाग ॥ २ ॥
सील मिलावै नाम को, जो कोइ जानै राख ।
कहै कबिर मैं क्या कहूं, शुकदेव बोलै साख ॥ ३ ॥
सील हि राखि विरक्त मै, हरि के मारग जाँहि ।
साखी गोरख नाथ जो, अमर भये काल माँहि ॥ ४ ॥
सीलवत सब सों बड़ा, सब रतनों की खान ।
तीन लोक की संपदा, रही सील में आन ॥ ५ ॥
सीलवंत निरमल दसा, पांव पड़े हैं चहुं खूंट ।
कहै कबिर ता दास की, आस करै बैकुंठ ॥ ६ ॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी, दाता सूर अनेक ।
जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवत कोइ एक ॥ ७ ॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटै त्यागी मोय ।
भर जोबन में सीलवंत, बिरला होय तो होय ॥ ८ ॥
सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह ।
सब्द बिना साधू नहीं, द्रव्य बिन नहिं साह ॥ ९ ॥
विषय पियारे प्रीति सों, सतगुरु अंतर नाँहि ।
जब अन्तर सतगुरु बसै, विषया सों रुचि नाँहि ॥१०॥
आव कहै सो औलिया, बैठे कहै सो पीर ।
जा घर आव न बैठ है, सो काफिर बेपीर ॥११॥

सन्तोष को अंग।

संतोष हि सदिदान है, सब्द हि भेद विचार।
सतगुरु के परताप ते, सहज सील मत सार ॥ १ ॥
गोधन गजधन वाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूलि समान॥ २ ॥
साधु संतोषी सर्वदा, जिन के निरमल बैन।
जिन के दरसन परस ते, जिय उपजै सुख चैन ॥ ३ ॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवा बे परवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सो साहन पति साह ॥ ४ ॥
निज आसन संतोष में, सहज रहनि की ठौर।
गुरु भजने आसा भई, ताते कछू न और॥ ५ ॥
जग सारा दरिद्र भया, धनवंता नहि कोय।
धनवंता सोइ जानिये, राम पदारथ होय ॥ ६ ॥
देनेहारा राम है, जाय जंगल में बैठ।
हरि को लेई उबरे, सात पताले पैठ॥ ७ ॥
कबहुंक मंदिर मालियां, कबहुंक जंगल वास।
सब ही ठौर सुहावना, जो हरि होवै पास ॥ ८ ॥

---

५. जिनका हृदय सन्तोष और सहज भाव में स्थिर हो गया वे गुरु भजन के अधिकारी हैं।

साहेब मेरे मुझ को- लूखी रोटी देय।
चुपड़ी मांगत मैं डरू, लुखी छीन नहि लेय॥ ९ ॥
सात गांठ कौपीन की, मन नहि माने संक।
नाम अमल माता रहै, गने इन्द्र को रंक ॥१०॥
चिंता मत कर निचिंत रह, पूरनहार समर्थ।
जल थल में जो जीव हैं, उनकी गांठि न अर्थ ॥११॥
चिंता ऐसी डाकिनी, काटि करेजा खाय।
बैद बिचारा क्या करै, कहांतक दवा लगाय ॥१२॥

साच को अंग।

साँच सब्द हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरै दास हजूर ॥ १ ॥
साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में पड़दा रहै, कंचन किहि बिधि होय ॥२॥
साँचै कोइ न पतीजई, झूठै जग पतियाय।
पांच टका की धोपटी, सात टक बिक जाय॥ ३ ॥
साँचै कोइ न पतीजई, झूठै जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥ ४ ॥

साँच कहै तो मारि है, यह तुरकानी जोर।
बात कहूं सतलोक की, कर गहि पकड़ै चोर ॥ ५ ॥
साँच कहूं तो मारि है, झूठे जग पतियाय।
यह जग काली कूनरी, जो छेड़ै तो खाय ॥ ६ ॥
साँचे को साँच मिलै, अधिका बढ़ै सनेह।
झूठे को साँचा मिलै, तड़ दे टूटै नेह ॥ ७ ॥
साँच कहै अरू सच सुनै, सतनाम की आस।
सतनाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥ ८ ॥
साँच हुआ तो क्या हुआ, नाम न साँचा जान।
साँचा है साँचै मिलै, साँचै माँहि समान ॥ ९ ॥
साँई सों साँचा रहो, साँई साँच सुहाय।
भावै लंबे केस रख, भावै घोट मुंडाय ॥१०॥
जाकी साची सुरति है, ताका साँचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घड़ी, है सांई सो मेल ॥११॥
जिन नर साँच पिछानिया, करता केवल सार।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥१२॥
कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साँच।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकड़ै काँच ॥१३॥
नरे अंदर साँच जो, बाहर नाहि जनाव।
जाननहारा जानि है, अन्तर गति का भाव ॥१४॥

अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साँच ॥१५॥
कबीर पूंजी साहु की, तू मति खोवै ख्वार।
खरी बिगुरचन होयगी, लेखा देती बार ॥१६॥
कंचन केवल गुरुभजन, दूजा काच कथीर।
झूठा आल जंजाल तजि, पकडा साँच कबीर ॥१७॥
झूठ बात नहि बोलिये, जबलग पार बसाय।
अहो कबीरा साँच गहु, आवागवन नसाय ॥१८॥
झूठ को झूठा मिलै, अधिका बढै सनेह।
झूठा को सीचा मिलै, तब ही टूटै नेह ॥१९॥
साहेब के दरबार में, साँचे को सिरपाव।
झूठ तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ॥२०॥
कबीर झूठ न बोलिये, जबलग पार बसाय।
ना जानो क्या होयगा, पलके चौथे भाय ॥२१॥
साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥ २२ ॥

दया को अंग।

दया भाव हिरदै नहीं, ज्ञान कथै बेहद।
ते नर नरक हि जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥ १ ॥

---

२०. सिरपाव—पगडी।

दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दय होय।
हमतो भये तमाशगी, नाटक बाजी जोय॥ २॥
दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय।
सांई के सब जीव हैं, कीडी कुंजर दोय॥ ३॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निर्दय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीडी कुंजर सोय॥ ४॥
भावै जाओ बादरी, भावै जाव हु गया।
कहै कबीर सुनो भाइ साधू, सब ते बड़ी दया॥ ५॥
दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोय।
को पुत्र को बान्धवा, को धनहीना होय॥ ६॥
दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखा कोय।
जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ धीरज होय॥ ७॥
बैरागी है घर तजा, पग पहिरे पैजार।
अन्तर दया न ऊपजै, धनी सहेगा मार॥ ८॥
बैरागी ह घर तजा, आपना रांधा खाय।
जीव हते जौहर करै, बांधा जमपुर जाय॥ ९॥
आग जलावै अँन दहै, मोटा आरंभ येह।
दीखै जम की जोट में, कीट पतंगा देह॥१०॥
पाकी ते डाकी भला, तिथि त्योंहारा लेय।
जीव सतावै राम का, नित उठि चौका देय॥११॥

८. पजार—जूता। ११. पाकी—स्वयपाकी। डाकी—मनुष्य को खानेवाला।

पाकी को मन पानरे, कै गोवर कै माग।
और जनम कहा पाइये, यह तो चाला' हार ॥१२॥
चौके चिऊंटी चूल्ह घुन, किरप बहुत जो नाश।
कहै कबिर आचार यह, जिव को होय अकाज ॥१३॥
आचारी सब जग मिला, बीचारी नहि कोय।
जाके हिरदै गुरु नहीं, जिया अकारथ सोय ॥१४॥
जहां दया वहँ धर्म है, जहां लोभ तहँ पाप।
जहां क्रोध वहँ काल है, जहां क्षमा वहँ आप ॥१५॥
कुंजर मुख से कन गिरा, खुटे न वाको (आ) हार।
कीडी कन लेकर चली, पोषन दे परिवार ॥१६॥
दाता दाता चलि गये, रहि गये मक्खी चूम।
दान मान समुझे नहीं, लड़ने को मजबूत ॥१७॥
दया का लच्छन भक्ति है, भक्ति में होवे ध्यान।
ध्यान से मिलना ज्ञान है, यह सिद्धांत उरान ॥१८॥
दया दया सब कोइ कहै, मर्म न जानै कोय।
जात जीव जानै नहीं, दया कहां से होय ॥१९॥
दया सब हि पर कीजिये, तू क्यों निर्दय होय।
जाको बुद्धि ब्रह्म में, सो क्यों खूनी होय ॥२०॥
कबीर सोई पीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥२१॥

१२. पानरे—जल के रखने की जगह।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप।
जहां क्षमा तहां धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ॥२२॥

दीनता को अंग।

दीन गरीबी बंदगी, साधुन सों आधीन
ताके संग में यों रहूं, ज्यों पानी संग मीन
दीन गरीबी बंदगी, सब सों आदर भाव
कहैं कबिर सोई बड़ा, जामें बड़ा सुभाव
दीन गरीबी दीन को, [१]दुंदर को अभिमान
दुंदर तो बिष सों भरा, दीन गरीबी जान
दीन लखै मुख सबन को, दीन हि लखै न कोय
भली बिचारी दीनता, नर हु देवता होय
इक बानी सो दीनता, सब कछु गुरु दरबार।
यही भेंट गुरु देव की, संतन कियो बिचार
जल थल जीव जिते तिते, रहे सकल भरपूर।
जो दिल आवै दीनता, सांई मिले हजूर ॥ ६ ॥
नहीं दीन नहि दीनता, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भया मसान ॥ ७ ॥

---

२. दुंदर—उपद्रवी। १. पा० दादुर।

कबिर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिये, नवै सो भारि होय ॥ ८ ॥
आपा मेटै पिव मिलै, पिव में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेमकी, कहै तो को पतियाय ॥ ९ ॥
नीचै नीचै सब तिरे, संत चरन लौ लीन।
जाति हि के अभिमान ते, बूडे सकल कुलीन ॥१०॥
नीचै नीचै सब तिरे, जिहि तिहि बहुत अधीन।
चढि बोहित अभिमान की, बूडे ऊंच कुलीन ॥११॥
बुरा जो देखन मै चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझ सा बुरा न होय ॥१२॥
कबीर सब ते हम बुरे, हम ते भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मीत हमारा सोय ॥१३॥
दरसन को तो साधु है, सुमिरन को गुरु नाम।
तरबे को आधीनता, डूबन को अभिमान ॥१४॥
नमन खमन अरु दीनता, सब कूं आदर भाव।
कहै कबिर सोई बड़े, जामें बड़ो सुभाव ॥१५॥
मिसरी बिखरी रेत में, हस्ती चुनी न जाय।
कीडी है करि सब चुनै, तब साहिब कूं पाय ॥१६॥

---

११. बोहित–नाव। १५. खमन–क्षमा करना।

विनती को अंग।

विनवत हूं करजोरि के, सुन गुरु कृपा निधान ।
संतन को सुख दीजिये, दया गरीवो ज्ञान ॥ १ ॥
क्या मुख ले विनती करूं, लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत औगुन किया, कैसे भाऊं तोहि ॥ २ ॥
वनजारी विनती करै, नरियर लाई हाथ ।
टांडा था सो लदि गया, नायक नाहीं साथ ॥ ३ ॥
औगुन किया तो वहु किया, करत न मानी हार ।
भावै वंदा वख्शिये, भावै गरदन मार ॥ ४ ॥
औगुन मेरे वापजी, वख्शो गरीव निवाज ।
मैं तो पूत कपूत हूं, तोहि पिता को लाज ॥ ५ ॥
मैं खोटा सांई खरा, मैं गाया मैं गार ।
मैं अपराधी आतमा, सांई सरन उवार ॥ ६ ॥

---

३. टांडा—बैलों का झुंड । दूसरे पक्ष में शरीर । वनजारी से अभिप्राय सुरति से है । और नरियर से मन का अर्थ लिया गया है । और नायक से जीवात्मा का भाव है । 'मन पतंग माने नहीं चले सुरती के साथ' इस वचन के अनुसार मन सुरति के पीछे दौडता है । मन को वश में करने का एक मात्र साधन सुरति को स्थिर करना है । चौका आरती में नरियर चलाने के समय गाया जाता है कि—'वनजारिन विनती करे सुनु साजना, नरियर लीन्हों हाथ सन्त सुनु साजना । इस शब्द में समाहित सुरति का वर्णन है जो कि सत्य लोक को ले जानेवाली है ।

मैं अपराधी जनमका, नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
सुरति करो मम सांइया, मैं हूं भौजल माँहि।
आपे हि मरि जाऊंगा, जो नहि पकड़ो बाँहि ॥ ८ ॥
और पतित तो कूप हैं, मैं हूं समुँद समान।
एक टेक गुरु नाम की, सुनियो कृपा निधान ॥ ९ ॥
औसर बीता अलपतन, पीव रहा परदेस।
कलंक उतारो सांइया, भानो भरम अंदेस ॥१०॥
सांई मेरा सावधान, मैं ही भया अचेत।
मन बच करम न गुरु भजा, ताते निष्फल खेत ॥११॥
अब की जो सांई मिले, सब दुख आखूं रोय।
चरनों ऊपर सिर धरूं, कहूं जो कहना होय ॥१२॥
कबीर सांई मिलहिंगे, पूछेंगे कुसलात।
आदि अन्त की सब कहूं, उर अन्तर की बात ॥१३॥
कर जोरे बिनती करूं, भौसागर हि अपार।
बंदा ऊपर मिहर करी, आवा गवन निवार ॥१४॥
मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर ॥१५॥
तेरा तुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सौंपते, दिल धड़कगा तोर ॥१६॥

दरस दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
और नहीं कछु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥१७॥
तुम गुरु दीन दयाल हो, दाता अपरम पार ।
मैं बूडूं मँझ धार में, पकड़ि लगावो पार ॥१८॥
अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय ।
अबरन बरनै बाहिरै, करि करि थका उपाय ॥१९॥
मुझ में इतनी शक्ति क्या, गावूं गला पसार ।
बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहूं दरबार ॥२०॥
जब का माई जनमिया, कितै न पाया सूख ।
डारी डारा मैं फिरूं, पात पात में दूख ॥२१॥
कबीर मैं तब ही डरूं, जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढापा आपदा, सब कहू को जोय ॥२२॥
कबीर करत है बीनति, सुनो संत चितलाय ।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहि बताय ॥२३॥
कबीर यह बिनती करै, चरनन चित्त बसाय ।
मारग सांचा संत का, गुरु मोहि देउ बताय ॥२४॥

जन कबीर बंदन करै,
किस विधि कीजै सेव ।
वार पार की गम नहीं,
नमो नमो निज देव ॥

चौरासी अंग

की

साखी।

॥ सम्पूर्ण ॥

प्रश्नोत्तर को अंग।

गुरु तुम्हारा कहा बसै, चेला कहां बसाय।
क्यों करिके मिलना भया, बिछुड़े आवै जाय ॥ १ ॥
गुरु हमारा गगन मे, चेला है चित माँहि।
सुरति सब्द मेला भया, बिछुड़त कबहू नाँहि ॥ २ ॥
कहा गुरु सायर मिला, किहि विधि कौन सनेह।
यह मन में संसै भया, समुझि अर्थ कहि देह ॥ ३ ॥
गगन गुरु सायर मिला, उत्तम परम सनेह।
मन का संसै दूर कर, समुझि अर्थ गहि येह ॥ ४ ॥
सब्द कहां ते उठत है, कहु कहाँ जाय समाय।
हाथ पाँव वाके नहीं, कैसे पकड़ा जाय ॥ ५ ॥
नाभि कमल ते उठत है, सुन्न में जाय समाय।
हाथ पाँव वाके नहीं, सुरति से पकड़ा जाय ॥ ६ ॥
सब्द कहां से आइया, कहां सब्द का भाव।
कहां सब्द का सीस है, कहां सब्द का पाँव ॥ ७ ॥

सब्द ब्रह्मंड ते आइया, मध्य सब्द का भाव।
ज्ञान सब्द का सीस है, अज्ञान सब्द का पाँव ॥ ८ ॥
कौन सब्द की नावरी, कौन सब्द असवार।
कौन सब्द की डोर है कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
सांच सब्द की नावरी, अकह सब्द असवार।
सुरति सब्द की डोर है, तुझै उतारै पार ॥१०॥
कौन सरोवर पानि बिन, कौन मीच बिन काल।
कौन सु परिमल वास बिन, कौन ब्रिच्छ बिन डाल ॥११॥
मान सरोवर पानि बिन, निंद मीच बिन काल।
सब्द सु परिमल वास बिन, सुरति ब्रिच्छ बिन डाल ॥१२॥
कौन कसै कमवान को, कौन जु लेय छुड़ाय।
यह संसै जिय है रहा, साधु कहो समुझाय ॥१३॥
काल कसै कसवाव करम, सतगुरु लिया छुड़ाय।
कहैं कबीर पुकारि के, सुनो संत चित लाय ॥१४॥
कबीर मन मैला भया, यामें बहुत बिकार।
यह मन कैसे धोइये, साधू करो बिचार ॥१५॥
गुरु धोबी सिप कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसे रंग अपार ॥१६॥
कबीर काया को झगो, सांई साबुन नाम।
राम हि, राम पुकारता, धोया पाँचों ठाम ॥१७॥

१७. झगो—एक प्रकार का जामा। पाँचों ठाम—पाच कपड़े।

इस नन में मन कहँ बसै, निकसि जाय किहि ठौर।
गुरुगम है तो परखि ले, नातर कर गुरु और ॥१८॥
नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥१९॥
दूध फाटि घृत कहँ गया, कांसा फूटी नाद।
तन छूटे मन कहाँ रहै, जानै बिरला साध ॥२०॥
दूध फाटि घृत दूध मिला, नाद मिली आकास।
तन छूटे मन तहँ गया, जहाँ धरी मन आस ॥२१॥
कौन पवन घर संचरै, कहां किया परकास।
नाद बिंद जब ना हता, तब कहँ किया निवास ॥२२॥
हुलस पवन घर संचरै, पंचम किय परकास।
नाद बिंद जब ना हता, तत्त हि किया निवास ॥२३॥
सकल पसारा पवन का, सात दीप नौ खंड।
कौन नाम उस पवन का, जो गरजै ब्रह्मंड ॥२४॥
सकल पसारा पवन का, सात दीप नौ खंड।
सोहं नाम उस पवन का, जो गरजै ब्रह्मंड ॥२५॥
कौन पवन धरती बसै, कौन पवन आकास।
कौन पवन मध्ये बसै, कौन पवन परकास ॥२६॥
धीर पवन धरती बसै, अगह पवन आकास।
मधुर पवन मध्ये बसै, अगर पवन परकास ॥२७॥

कौन पवन ले आवई, कौन पवन ले जाय।
कौन पवन भरमत फिरै, सो मोहि देहु बताय ॥२८॥
सहज पवन ले आवई, सुरति पवन ले जाय।
जीव पवन भरमत फिरै, कहैं कबिर समुझाय ॥२९॥
तन का मंजन नीर है, नीर हि मंजन पौन।
कहै कबिर सुन पंडिता, पौन का मंजन कौन ॥३०॥
तन का इन्द्री मैल है, मन पवना ले धोय।
ज्ञान जु गुरु सों पाइये, पौन का मंजन सोय ॥३१॥
कौन देस ते आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष को नाम ॥३२॥
अमर लोक ते आइया, सुखसागर है ठाम।
जाति अजाति मेरी है, सत्त पुरुष का नाम ॥३३॥
कौन तुम्हारी जाति है, कौन तुम्हारा नाँव।
कौन तुम्हारा इष्ट है, कौन तुम्हारा गाँव ॥३४॥
जाति हमारी आतमा, प्रान हमारा नाँव।
अलख हमारा इष्ट है, गगन हमारा गाँव ॥३५॥
कहां से आया जीव यह, किस में जाय समाय।
कौन डोर से चढ़ि चला, कहो मुझे समुझाय ॥३६॥
सुरगुन आया जीव यह, निरगुन जाय समाय।
सुरति डोरि ले चढ़ि चला, सतगुरु दिया बताय ॥३७॥

कौन सुरति ले आवई, कौन सुरति ले जाय।
कौन सुरति है अस्थिरी, सो गुरु देहु बताय ॥३८॥
स्वास सुरति ले आवई, सब्द सुरति ले जाय।
परिचय सुरति अस्थिरी, सो गुरु दिया बताय ॥३९॥
कौन राम दशरथ घर डोलै, कौन राम घट घट में बोलै।
कौन राम का सकल पसारा, कौन राम तिरगुन से न्यारा ४०
आकार राम दशरथ घर डोलै, निराकार घट घट में बोलै।
बुंद राम का सकल पसारा, निरालंब सब ही सो न्यारा ४१॥
धरती तो रोटी भई, कागा लीया जाय।
पूछो अपने गुरू को, कहाँ बैठि के खाय ॥४२॥
धीरज तो रोटी भई, कुबुधि काग लिय जाय।
कहे कबीरा बैठि के, वाद वृक्ष पर खाय ॥४३॥
कौन साधू का खेल है, कौन सुरति का दाव।
कौन अमी का रूप है, कौन वज्र का घाव ॥४४॥
पछिमा साधू का खेल है, सुमति सुरति का दाव।
सतगुरु अमृत कूप है, सब्द वज्र का घाव ॥४५॥
धरती अंबर जायंगे, बिनसैगा कैलास।
एकमेक है जायगे, तब कहँ रहेंगे दास ॥४६॥
एकामेकी होन दे, बिनसन दे कैलास।
धरती अंबर जान दे, मोमें मेरे दास ॥४७॥

कै रती भर सुरति है, कै रती भर काम ।
कै रती भर माया है, कै रती निज नाम ॥४८॥

सोरा रतिभर सुरति है, छत्तीस रति भर काम ।
माया मह्दय रती भरे, एक रती निज नाम ॥४९॥

कौन जगावे ब्रह्म को, कौन जगावे जीव ।
कौन जगावे सुरति को, कौन मिलावे पीव ॥५०॥

विरह जगावे ब्रह्म को, ब्रह्म जगावे जीव ।
जीव जगावे सुरति को, सुरति मिलावे पीव ॥५१॥

जीवत जीव कहँवाँ बसे, मुये बसे किहि ठौर ।
कै नो याको अर्थ कर, नातर गुरु कर और ॥५२॥

जीवत जीव हिरदै बसे, मुये पुरुष के पास ।
दया भई जब कबीर की, तब पायो धर्मदास ॥५३॥

कै मासे भर नाम है, कै मासे भर पान ।
कै मासे भर पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५४॥

अठ मासे भर नाम है, नौ मासे भर पान ।
सोरा मासे पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५५॥

---

५५ नामजप या जपयोग आठ मासा है अर्थात् आधे फल का देनेवाला है । और अमृत पान नव मासा अर्थात् उससे कुछ अधिक फलदायक है । और पुरुष साक्षात्कार तो सोरह मासा है अर्थात् पूर्णपद को देनेवाला है । "पुरुषान्न पर किंचित् सा काष्ठा सा परा गति"

श्रोता वक्ता कौन घर, जब नर आवै नींद ।
सब्द विराजै कौन घर, बूझौ कपिल मुनींद्र ॥८६॥
सब्द जाय दरबार में, ब्रह्म रन्ध्र के नीर।
श्रोता वक्ता सब्द संग, मुनि सों कहै कबीर ॥८७॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था, करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी, सब्द कहा ते आया ॥५८॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था, करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी, सब्द सुन्न ते आया ॥५९॥
बोलता कहु कहँ बसै, केतिक रूप सरूप ।
कै पखुरि की सुरति है, केतिक वस्तु अनूप ॥६०॥
बोलता मध्य हि में बसै, हरा बरन सरूप ।
सात पखुरि की सुरति है, किंचित् वस्तु अनूप ॥६१॥
साखी सब्दी कब कही, मौन रहै मन माँहि ।
बिछुरा था कब ब्रह्म सो, कहिबे को कछु नाँहि ॥६२॥
साखी सब्दी जब कही, तब कछु जाना नाँहि ।
बिछुरा था तब ही मिला, अब कछु कहना नाँहि ॥६३॥
हाथ पाँव मुख सीस धरि, बेगर बेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के, तोर नाम कहँ ठाम ॥६४॥
हाथ पाव मुख सीस धरि, बेगर बेगर नाम ।
कहै कबीर बिचारि के, मोर नाम सब ठाम ॥६५॥

६१ सुरति सात प्रकार की है। ६५ बेगर बेगर—भिन्न२।

सोई सीप समुद्र में, सोइ सीप नदी नाल।
मोती क्यों नहिं नीपजै, पंडित करो विचार ॥६६॥
सीप सीप सब एक है, सब जग बरसै स्वांति।
मोती यों नहिं नीपजै, कोइ कुबुधि बहु भाति ॥६७॥
सीप भई जो गरमसी, ढरकि जाय सब नीर।
स्वांति सनेही ना मिलै, यों कहै दास कबीर ॥६८॥
माटी में माटी मिली, मिला पवन सों पौन।
मैं तोहि पूछूं पंडिता, दो में मुआ कौन ॥६९॥
कुमति हती सो मिटि गई, मिटयो बाद हंकार।
दोनों का मेला मुआ, कहै कबीर विचार ॥७०॥
कुमति किसकी मिटि गई, किसका मिटा हँकार।
क्यों करिके मेला हुआ, सो मोहि कहो विचार ॥७१॥
कुमति चित की मिटी गई, मिट गया मन हंकार।
दोनों का झगड़ा मिटा, कहै कबीर विचार ॥७२॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
ये सूतक संग देह के, कहु कैसे करि जाय ॥७३॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥७४॥

॥ सत्यनाम ॥

श्री विचार साहेब

की

विरल टीका–टिप्पणी के सहित

सद्गुरु कबीर साहब

का

साखी-ग्रंथ ।

॥ समाप्त ॥

. अनुक्रमणिका ।

(अकारादिक्रमसे)

इ

ए

ओ

औ

कबीर

कबीर या संसार को, भर्मविध्वंस।
,, या संसार हं, घना मनुस मति हीन। चिता०।
,, ये जग आंधरा, पारख।
,, रन में आय के, सूरमा।
,, रसरी पाँव में, चितावनी।
,, राम रिझाय ले, जिभ्या के रस स्वाद। सुमिरन।
,, राम रिझाय ले, जिभ्या सों कर मीत। सुमिरन।
,, राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय। सुमिरन।
,, रामानंद को, सतगुरु।
,, रेख सींदूर अरु, पतिव्रता।
,, रेखा कर्म की, कर्म।
,, लहरि समुद्र की, कभी न निष्फल जाय। संगति।
,, लहरि समुद्र की, केती आवे जाँहि। मन।
,, लहरि समुद्र की, मोती बिखरे आय। निगुरा।
,, लोहा एक है, एकता।
,, लौंग इलायची, साधु।
,, लज्जा लोक की, सोच।
,, वह तो एक है, भेष।
,, वह मन फिर गया, मन।
,, वा दिन याद कर, चितावनी।
,, विष घर वहु मिले, संगति।
,, व्याभ कथा करें, चानक।
,, संजड़े ही जड़ा, कर्म।
,, सतगुरु सरन को, चितावनी।

क

ग

न

प

भ

र

ल

२

ह

२० श्रीमान् महंत श्री रामदासजी साहेब, कबीरकुटीर-ओरछा, सी पी. १
२१ „ „ „ गरीबदासजी साहेब, सरसपुर-अहमदाबाद १
२२ „ साधु श्री रूपदासजी साहेब, „ „ १
२३ श्रीयुत अमरचंद पोस्ट पेन्शनर, गुजवाडा-पंजाब १
२४ „ डाह्यालाल रामजी परमार हेडमास्तर, गोंड ग्रामगाम-काठि १
२५ „ पा. माधवलाल रणछोड, लांघणज-गुजरात १
२६ „ मोदी प्रभुदासजी रामजीभाइके चि. भगवानदास ओजवाला १
२७ श्रीमान् साधुश्री चेतनदासजी गुरु श्री गोपालदा. ग्रा. तवडी गु. १
२८ श्रीयुत भगत गंगाराम उंजमभाइ, तवडी-गुजरात १
२९ „ चक्री जेमंगभाइ ईश्वरभाइ कबीर पंथी, अविधा-गुजरात १
३० „ धनजीभाइ जीनाभाइ, दोहद-गुजरात १
३१ „ मगनलाल मोतीराम, सुरत-गुजरात १
३२ „ पुरुषोत्तम मीठाभाइ, पटेल पेन्शनर मास्तर कोथमडी-गुज. १
३३ „ भगत वापरभाइ गवाभाइ कबीर पंथी, तवडी-गुजरात १
३४ „ मीस्त्री जगजीवनदास नरोत्तमदास, वलसाड-गुजरात १
३५ श्रीमान् महंतश्री भगवानदास गुरुभवानदासजी, वडोदा-गुजरात १
३६ „ साधुश्री जेठोदास हरिदासजी, भुज-कच्छ १
३७ श्रीयुत भगत छीताभाइ बावलाभाइ, सुनारासुथारिया-गुजरात १
३८ „ गोवरभाइ कालीदास, अहमदाबाद-गुजरात १
३९ „ मीठाभाइ मोतीभाइ, „ „ १
४० „ इच्छाभाइ उकाभाइ, „ „ १
४१ „ भगत जीवाभाइ जोइतभाइ, हेलवी-गुजरात
४२ „ आतमदास ठेकेदार, लश्कर-ग्वालियरस्टेट
४३ „ दयालजीभाइ मोरारजीभाइ पटेल, आनिका